प्रकाशक—
श्री रामतीर्थ प्रतिष्ठान
लखनऊ

अनुवादक—दीनदयालु श्रीवास्त

मुद्रक—
भृगुराज भार्गव,
भार्गव-प्रिंटिंग-वर्क्स, लखनऊ.

राम बादशाह

और

रामभक्तों के चरणों में
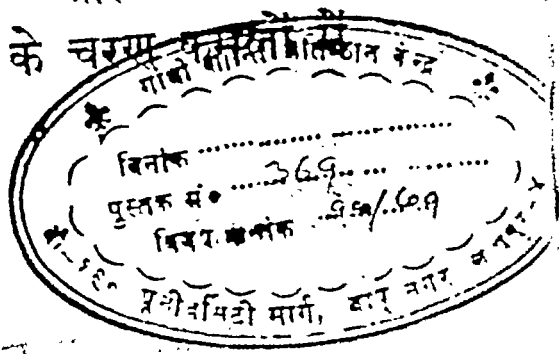
वक्तव्य

~~

स्वामी राम की जीवन-कथा अपने राम-प्रेमी भाइयों के हाथों में सौंपते हुए हमें परम हर्ष होता है। यह कथा श्री पूरन सिंह द्वारा रचित The Story of Swami Rama ('दी स्टोरी आफ स्वामी राम') का स्वच्छन्द अनुवाद है। श्री पूरन सिंह स्वामी रामतीर्थ के परम भक्त थे और उन्होंने अत्यन्त समीप से राम को देखा, सुना और अध्ययन किया था। अतः यह पुस्तक 'राम' को ठीक ठीक समझने में बड़ी सहायक हो सकती है, क्योंकि इसमें स्वामी राम के जीवन वृत्त के अतिरिक्त उनके संस्मरण एवं जीवन के प्रति उनका दृष्टिकोण—दोनों संगृहीत हैं।

पुस्तक का अनुवाद श्री दीनदयालु जी ने किया है और कविताओं का रूपान्तर काशी विद्यापीठ के अध्यापक श्री शम्भूनाथ सिंह जी ने कविताओं में किया है। ये दोनों हमारे धन्यवाद के पात्र हैं।

आशा है, राम-प्रेमी सज्जन राम के इस अमृत को पान करके राम की भाँति मस्त हो जायँगे।

शान्ति प्रकाश
सभापति

रामेश्वरसहाय सिंह
मंत्री, प्रतिष्ठान

विषयानुक्रमणिका

प्राक्कथन

उस कमल के समान जो किसी छोटे-मोटे अज्ञात सरोवर में जन्म लेकर अपने पूर्ण विकसित सौंदर्य से हमारे सामने प्रकट होता है, उस व्यक्ति के आत्मचरित के लिये भला क्या सामग्री जुटायी जा सकती है जिसने अपने आनन्दमय जीवन-रहस्य के विषय में मौन धारण किया हो ? ऐसे व्यक्ति का आत्मचरित हो सकता है तो केवल इतना ही कि जिस किसी को मनुष्यों में पुष्प-समान सुन्दर इस व्यक्ति को देखने का अवसर मिला, वह खड़ा-खड़ा थोड़ी देर तक इसे निहारता रहा एवं दृष्टि-भर देखने के अनन्तर मन ही मन इस पार्थिव जीवन से पृथक् उस दिव्य लोक की कल्पना करता चला गया, जिसकी एक गुप्त आभा सदा उसके सुस्मित वदन पर खेलती रहती थी। हमारे इस पूर्ण विकसित सरसिज ने बहुत आग्रह करने पर भी कभी अपनी जीवन-कथा खोलना स्वीकार नहीं किया। सचमुच जब देखो तब अपनी आत्मा का मधुमय सौरभ लुटाने के सिवा उसे अवकाश ही न था।

स्वामी राम, वास्तव में, आत्मा में श्वास लेने वाले देवदूत थे। उनका भोजन था, ईश्वर का नाम—ओरेम् ! जिन्होंने उन्हें देखा, वे जानते थे कि उन्होंने अपने आपको परमात्मा में तल्लीन कर दिया था। महा मंत्र 'ओरेम्-ओरेम्' की ध्वनि उनके मुख से इस प्रकार निःसृत हुआ करती है, जैसे संगीत का धारा-प्रवाह। यह हमारे धर्मग्रन्थों में भी लिखा है कि निरन्तर नाम-स्मरण आप्त पुरुष का लक्षण है। भगवद्-कृपा विना वह प्राप्त भी नहीं होता। निस्संदेह स्वामी राम ने

-769

संसार के मायाजाल से अपने को पूर्णतः मुक्त कर लिया था। वे पंछी की भांति उच्च लोकों में विचरण किया करते थे।

इसी आत्म-विभोर आत्मा की झलक, जिसे मैंने सब से पहले टोकियो में देखा था, इस पुस्तक में संस्मरणों के रूप में उपस्थित की जाती है, क्योंकि उनके मस्तिष्क, अन्तःकरण और अपने श्री कृष्ण के साथ गुप्त प्रेम के क्रमिक विकास का प्रामाणिक विवरण तो सदा हमारी आंखों से ओझल ही रहेगा। भगवद्प्रेम के उत्तरोत्तर विकास में भगवान् के साथ तदात्मीयता का भाव उनके लिये ऐसा स्वाभाविक हो गया था कि वे 'शिवोऽहम् शिवोऽहम्' कहे बिना रुक ही न सकते थे। अद्वैतवाद का दार्शनिक सिद्धान्त 'तत्त्वमसि' प्रारम्भ में उनके लिये शास्त्रीय की अपेक्षा भावात्मक ही अधिक था।

जो बारीकी से उनके लेखों और उपदेशों का अध्ययन करेंगे, वे सहज ही देख लेंगे कि वे 'वेदान्त' शब्द का प्रयोग अपने एक विशेष अर्थ में करते थे; वह उनके लिये निष्काम कर्म का बोधक भी था, और भक्ति के आत्मसमर्पण एवं आत्मज्ञान की ब्रह्मानुभूति का भी। इसी जीते-जागते वेदान्त के साक्षात्कार के लिये, आन्तरिक स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिये उन्होंने सारे संसार के—प्राच्य और पाश्चात्य साहित्यों का खूब ही अध्ययन किया था। लाहौर से उन्होंने उर्दू में 'अलिफ़' नामक एक सामयिक पत्र निकाला था। उसके मस्ती भरे लेखों में फ़ारसी, हिन्दुस्तानी, अँग्रेज़ी और संस्कृत के चुने हुए मोती-जैसे उद्धरणों का अपूर्व संग्रह है। उनसे सहज ही हमें उनके उर्वरा मस्तिष्क की व्यापकता, विशालता और गंभीरता का पता चल जाता है।

उनका एक एक वाक्य आँसुओं से भीगा है और एक-एक विचार आनन्द में कूकता है। आलोचना उनकी कौन करेगा, जब वे चुपके से आलोचक के हृदय में घर कर बैठते हैं? उनके प्रेम का गीत निराला है। वे अपने शत्रु को भी अपनी आत्मा के रूप में गले लगाने को तैयार

बैठे हैं। वे चिड़ियों जैसी चहचहाती वाणी से, चाहे उसे कहो कविता, चाहे संगीत; अपने आस-पास के वायुमण्डल में जादू भर देते थे। उनका शरीर उस झील के समान था, जिसके अन्तराल में सूर्य का प्रतिबिम्ब पड़ते ही कम्पन होने लगता है। उनकी दिव्य मस्ती के आगे तर्क के पैर लड़खड़ाते हैं। वे आत्मविभोर थे। जहाँ हमें सैकड़ों प्रकार का विरोध दिखाई देता है वहाँ वे आत्मा का दर्शन करते—यही उनका सिद्धान्त था, वही उनका धर्म था।

'शिवोहम्'—मैं ईश्वर हूँ, मैं ईश्वर हूँ—यही उनकी एकमात्र रट थी। जो इस सिद्धान्त के क़ायल नहीं, वे भी उनकी इस ध्वनि-विशेष से दंग रह जाते थे। एक वाक्य में वे हमें ईश्वर की भक्ति का आदेश देते हैं और दूसरे ही वाक्य में मानों मन्दिर के सिंहासन पर से भगवान् की मूर्ति फेंक कर स्वयं उस पर जा विराजते हैं। इस प्रकार सचमुच उन्हें समझना कठिन हो जाता है। वस्तुतः जब तक हमारे अन्तर में उन जैसी मस्ती, भगवान् के लिये उन जैसी तड़प और अनिवृत आत्मविह्वलता न जाग उठे तब तक उस उस अव्यक्त को अपनी व्यक्त वाणी के द्वारा कैसे समझा-बूझा जा सकता है!

वे कवि थे। उनका हृदय पवित्र था और भरा था लबालब उस पवित्रपावन के आवेश से। जब भावनायें किसी प्रकार भीतर न समातीं तो वे आनन्द के मारे कविता के शब्दों में नंगे ही नाच उठते। वे प्रकृति के कवि थे और प्रकृति ही से उनका सच्चा सौहार्द था। कपड़े उतार कर वे घंटों लेटे रहते थे—सूर्य रश्मियों में स्नान करने के लिये, अंग-प्रत्यंग में वायु स्पन्दन के हेतु। बस, ज्यों ही कोई भावना उठती, वे झट से उसे शब्दों का जामा पहना देते। स्वर्ण को लेकर धीरे-धीरे उसे गढ़ना, शनैः शनैः हीरे को चमकाना, कोई सांगोपांग कला गढ़ा करना उन्हें सुहाता न था। उनके विचार, उनकी भावनायें नग्नरूप में ही ऐसी मौलिक, ऐसी सौंदर्यमयी हैं! वे सदैव आत्मा की पूर्णता से भरे रहते

थे। वाह्य रूपों का वहाँ कोई मूल्य न था। उनकी कला सीधीसादी थी—और उसका एक ही उद्देश्य था, स्वयं अपने अन्तर में और दूसरों के भीतर आनन्द की सृष्टि करना। वे कविता बनाते नहीं थे, वे तो हाफ़िज़ और उमर खैयाम के साथ, अपने भगवान् के मस्त दीवानों के साथ कविता के पवित्र मन्दिर में प्रेमरस के प्याले पर प्याले उँडेला करते थे। मस्त और आत्मविभोर—उन्हें यत्र-तत्र-सर्वत्र अपने उसी इष्टदेव की खोज रहती थी।

विद्यार्थी-जीवन में उनमें एक विजेता का दृढ़ संकल्प था। एक सती साध्वी की लगन से उन्होंने विद्या संग्रह की और एक गुलाम की भाँति कठिन परिश्रम किया। भूखे रहने पर भी एक रोटी और लेना उन्होंने इसलिए अस्वीकार कर दिया ताकि अपने अर्द्धरात्रि के दीपक के लिये तैल जुटा सकें। वर्षों एक दिव्य ज्ञान-पिपासा की लौ उनके भीतर जलती रही। गुजरांवाला के उस धन्ना भगत के प्रति, जिसे वे अपना गुरु मानते थे और विद्यार्थी जीवन में जिसने उनकी कुछ सहायता भी की, उनकी भक्ति अगाध थी। वे सच्चे शिष्य थे। अनेकानेक शारीरिक और मानसिक कष्टों के बीच निर्द्वन्द्व और शान्त रहने का एक ही अव्यर्थ गुर उनके पास था—आत्म-समर्पण। निरन्तर भगवद्-चिन्तन और प्रत्येक वस्तु और प्रत्येक मनुष्य में उसके दर्शन करना ही उनकी पूजा, उनकी भक्ति, उनका आत्मज्ञान था।

'अलिफ़' में दिये हुए प्राच्य और पाश्चात्य साहित्य के सुन्दर चयन एवं धन्ना भगत के नाम उनके पत्र, जो इस पुस्तक में व्यापक रूप से उद्धृत किये गये हैं, उन जैसे व्यक्तियों के आत्मचरित की उपयोगी सामग्री हो सकती है। क्योंकि वस्तुतः उनका सच्चा जीवन तो उनकी मानसिक साधना में ही व्यतीत हुआ है।

स्वामी राम ने उस समय अपने आपको स्वतंत्रता में दीक्षित किया, जब कि हम अन्य सब अपने देश में गुलामी का पाठ पढ़ रहे थे।

भारतवर्ष के कालेज गुलाम ढालने की मशीनें थीं, जिनकी एकमात्र लालसा सरकारी नौकरी में नाम कमाने भर की होती थी। यौवन-सम्पन्न, और स्वतंत्र—हमारा चरित्रनायक ऐसा व्यक्ति था, जिसका जापान, अमरीका और जहां भी वह गया, वहां खुले हृदय से भाई के समान स्वागत हुआ। प्राचीन भारत के जीते जागते ऋषि-मुनियों की भांति हज़ारों मनुष्यों ने ध्यान से उन्हें सुना और सम्मान किया। वे उन इनेगिने भारतवासियों में से थे, जो वर्तमान संसार की दृष्टि में अपनी जाति के आदर्श का गौरव बढ़ाने के लिये सतत तुल्य प्रयत्न करते रहे। टोकियो के प्रोफेसर 'ताकाकुसु' उन्हें देखकर चकित रह गये। उन्हें स्वामी राम में बौद्धधर्म और वेदान्त—दोनों साकार रूप में दिखाई दिये। अमरीका के सुप्रसिद्ध प्रोफ़ेसर जेम्स ने उन्हें एक अद्वितीय आध्यात्मिक गुरु के रूप में देखा, जो अपने शरीर से बाहर आत्मा के केन्द्र में निवास करते हैं।

अपने तमोगुण-प्रेमी देश में, जहां मन सदा चंचल रहता है, और हाथ सदा काम में आगा-पीछा किया करता [illegible] जहां धर्म ने [illegible] विश्वास का रूप धारण किया है, [illegible] जातीय [illegible] गौरव अपने पुरातन पूर्वजों के आध्यात्मिक उत्थान में आत्मप्रशंसा क[illegible] मर माना जाता हो, जहां लोग भविष्य की अपेक्षा भूतकाल की ओर देखना अधिक पसन्द करते हों, वहां स्वामी राम ने मिथ्या स्वप्नों से उठकर और निरन्तर साधना-रत रहकर अपने देशवासियों को स्वतंत्रता प्राप्ति का जो अमर संदेश सुनाया है, वह क्या किसी प्रकार भुलाया जा सकता है? वे कहते हैं स्वतंत्रता दूसरों को जीतने से नहीं मिलती—मिलती है, स्वयं अपनी विजय से, अपने मन की विजय से।

पूरन सिंह

ग्वालियर,
मई १९२४.

स्वामी राम

स्वामी राम

प्रथम परिच्छेद

साधु के वेष में

सबसे पहले हम उनसे साधु के वेष में मिले, इसलिए उनके प्रारम्भिक जीवन की कहानी से घनिष्ट परिचय कराने के पहले अपने पाठकों को साधु वेष में ही उनके दर्शन कराना हमें अधिक उपयुक्त मालूम होता है। यहाँ इतना बतलाना ही पर्याप्त होगा कि वे १८७३ में पैदा हुए थे, १९०१ में साधु हुए, १९०२ में उन्होंने जापान और अमरीका के लिए प्रस्थान किया, १९०४ में वहाँ से लौटे और १९०६ में, तैंतीस वर्ष की अल्पायु में ही, वे इस संसार से विदा हो गये।

जब वे सन फ्रांसिस्को पहुँचे तब वहाँ के स्थानीय समाचार-पत्रों ने जनता पर स्वामी राम का सर्व प्रथम प्रभाव निम्न रूप से वर्णन किया था। वे हिमालय के एकान्त से निकल कर सीधे वहाँ पहुँचे थे—गेरुए वर्ण के संन्यासी वेष में, जिससे होकर उनके अन्तर में प्रज्ज्वलित होने वाला आध्यात्मिक तेज फूट-फूट कर निकल रहा था।

"अब दुनिया के प्राचीन विधान को उलट देना होगा। उत्तर-भारत

के जंगलों से एक मनुष्य अद्वितीय विद्वान्, पैग़म्बर, दार्शनिक, वैज्ञानिक और महात्मा यहाँ आया हुआ है। यह परिव्राजक संयुक्तराष्ट्र में उपदेशक के रूप में प्रचार करना चाहता है। वह यहाँ के लोगों को, जो शक्तिशाली 'डालर' की देवता के समान पूजा करते हैं, एक आध्यात्मिक शक्ति, एक निस्वार्थ परमार्थ भाव की नयी शिक्षा देगा। वह भारत की सर्वश्रेष्ठ जाति ब्राह्मणों में भी श्रेष्ठ गोस्वामी ब्राह्मण है, वह अपने देशवासियों में 'स्वामी राम' के नाम से प्रसिद्ध है।

"हिमालय का यह उल्लेखनीय ऋषि दुबला-पतला नवयुवक विद्वान् है, जिसके शरीर में महात्माओं जैसी तपश्चर्या की दमक और जिसके वर्ण में उच्च जाति के ब्राह्मणों जैसी हलकी चमक है। उसका माथा चौड़ा और ऊँचा, सिर पूर्ण विकसित और नाक पतली एवं स्त्री-सुलभ कोमल है। मुस्कराहट के समय जब उसका चौड़ा, दयालु और सुकोमल मुख तेजोमय शुभ्र एवं पूर्ण दन्तपंक्ति के ऊपर उन्मुक्त होकर खुलता है तब आस-पास के सारे वायुमण्डल में एक दीप्ति सी छा जाती है, जो उस चमक के घेरे में आने वालों को तुरन्त ही श्रद्धा और प्रेम के वशीभूत कर देती है। 'मैं कैसे रहता हूँ?' स्वामी राम कल कह रहे थे 'यह बहुत ही सीधी बात है, मैं कोई प्रयास नहीं करता। मुझमें आत्मविश्वास है। मेरी आत्मा सदा मनुष्यमात्र के लिए प्रेमसागर में गोते लगाती रहती है। इसी कारण सभी मुझे प्यार करते हैं, क्योंकि जहाँ प्रेम होता है, वहाँ कभी कोई कमी, कभी कोई यातना हो ही नहीं सकती। मन की दशा और आत्म विश्वास ने मुझे ऐसा प्रभाव दिया है कि मेरी आवश्यकतायें बिना माँगे पूरी हो जाती हैं। जब मैं भूखा होता हूँ तभी कोई न कोई मेरे लिये भोजन लिये मिलता है। मुझे रुपया-पैसा अथवा और कोई चीज़ माँगने का निषेध किया गया है फिर भी मेरे पास सब कुछ है और बहुतों से बहुत अधिक, क्योंकि मैं ऐसे जगत् में रहता हूँ जहाँ सबकी गति नहीं होती।'

'एक हिन्दू देवदूत' शीर्षक के अन्तर्गत पोर्टलैण्ड के एक समाचार-पत्र ने लिखा था—

"छोटा और क्षीण शरीर, काली तेजपूर्ण उत्सुक आँखें, श्यामल वर्ण, एक काला सूट और हर समय सिर पर एक चमकदार लाल पगड़ी, बस यही स्वामी राम की रूप-रेखा है। भारतवर्ष का यही आदमी आजकल पोर्टलैण्ड में आया हुआ है। यह एक भारतवासी नहीं है, यह भारतवर्ष का प्रतिनिधि है।

"इस बन्दरगाह में भारतवर्ष से प्रायः यात्री आया करते हैं, किन्तु ऐसा विद्वान्, ऐसा विशाल-हृदय, ऐसा उदार और निःस्वार्थ भावापन्न व्यक्ति शायद ही कभी यहाँ आया हो।"

जापान और अमरीका जाने से पहले भारतवर्ष में दो बार स्वामी शिवगणाचार्य ने शान्ति-आश्रम, मथुरा में छोटे रूप में सर्व-धर्म-सम्मेलन बुलाये थे और दोनों बार स्वामी राम व्यास-गद्दी पर आसीन किये गये थे। उस समय लोगों पर उनका कैसा प्रभाव पड़ा था—यह लाहौर के 'फ्री थिन्कर' पत्र ने इस प्रकार व्यक्त किया है—

'...... किन्तु सबके प्रिय, विचारशील और गम्भीर, समय समय पर हँसमुख और कठोर, सर्वथा विभिन्न विचारधारा रखने वाले श्रोता-समाज को लगातार घंटों—यहाँ तक कि सायंकाल के अँधेरे में भी जादू के समान मंत्रमुग्ध रखने वाले वहाँ एक ही व्यक्ति थे—स्वामी राम। वे एक शान्त, नम्र, भरी जवानी में भोले-भाले नवयुवक थे, जिन्होंने प्राचीन और अर्वाचीन दर्शन-शास्त्रों एवं वर्तमान विज्ञानों का गम्भीर ज्ञान संचय किया था। वे वास्तव में उस तत्व के बने हुए थे जिससे सभी सत्यनिष्ठाशील व्यक्ति बनते हैं। नम्र और प्रसन्नचित्त, बच्चों जैसे सरल, बोलचाल और व्यवहार में निर्दोष होने पर भी उनके रेशमी अंगों के भीतर वज्र जैसी कठोर संकल्प-शक्ति थी। यही कारण था कि दूसरों की

भावनाओं का बड़ी सावधानी से आदर करते हुए वे अपने विचारों को निर्भीकतापूर्वक व्यक्त करने में सबसे आगे थे.......'

उनकी उपस्थिति का प्रभाव वहां अद्भुत दिखायी देता था। उनकी प्रफुल्लता संक्रामक थी। उनके विचार शीघ्र ही श्रोताओं के हृदय में घर करते थे और उनकी ओम्-ध्वनि का कहना ही क्या—उसमें जादू था! प्रत्येक धार्मिक जिज्ञासु जो उनके पास आया, ओम् ओम् ध्वनि रटे विना न रहा। उनके दर्शन करने का अर्थ होता था अपने जीवन को नये सिरे से प्रारम्भ करना। हृदय की क्षुद्रता और नीचता न जाने कहाँ लोप हो जाती थी। दर्शक अपने आप ऊपर उठ जाता था। ऐसा मालूम होता था कि एक नूतन—जीवन विषयक एक सर्वथा अलौकिक दृष्टिकोण उनकी आँखों से निकलकर उन लोगों की आँखों में प्रवेश करता था, जो उनके आनन्द और माया से मंत्रमुग्ध से रह जाते थे।

वन के पंछी की भाँति वे चहचहाते थे, हिरनी के बच्चे की भाँति फुदकते थे—सच तो यह था कि वे साधारण मनुष्यों की धीमी और आलस्य भरी चाल से चलते कभी देखे ही नहीं गये। उनकी मंत्री, जो उस समय शायद मिस टायलर थीं, जब उन्हें ग्रेट पैसीफ़िक रेल रोड कम्पनी, सन फ्रांसिस्को के मैनेजर के पास ले गयीं और कहा कि न्यूयार्क जाने के लिए उन्हें रियायती मूल्य पर टिकट दे दिया जाय तो उन्हें देखकर मैनेजर बोला—इन्हें? इनको तो मैं पुलमैन कार यों ही देता हूँ। इनकी मुस्कराहट में ऐसा जादू है!

जब मैं उन्हें टोकियो में बेरन नायबो कंडू के घर ले गया तब बातचीत के बीच ही में बेरन उठे, भीतर गये, और अपने स्त्री-बच्चों को ले आये और क्षमा-याचना के स्वर में कहा—

मैं ऐसा असाधारण आनन्द अकेले नहीं भोग सकता था; इसीलिए उसे मिल-बांट कर लेने के लिए अपनी स्त्री और बच्चों को ले आया। जब नायबो कंडू ने उनसे पूछा-आपने अपना परिवार क्यों छोड़ दिया तो स्वामी जी ने उत्तर दिया—एक वृहत्तर परिवार खोजने के लिए, जिससे अपने आनन्द को सारे विश्व के साथ मिल-जुल कर भोगूं। सेंट लुई की प्रदर्शिनी में धार्मिक लीग की एक बड़ी भारी सभा हुयी था—उसके विषय में स्थानीय पत्रों ने लिखा था—इस समूची श्रोतृ मण्डली में एक ही चमकता हुआ केन्द्र था—स्वामी राम। साधारण बातचीत में कभी-कभी वे किसी दार्शनिक अथवा धार्मिक प्रश्न के उत्तर में हंस देते थे और कई मिनिट तक बराबर हंसते रहते थे। इस प्रकार हंस हंस कर मौन रह जाना—मानो वे कहते थे कि मनुष्य और ईश्वर विषयक ऐसे मनचले प्रश्नों के उत्तर के लिए तो इस चमकती और उमड़ती हुई हंसी को देखना ही काफी है।

एक बार मैं उन्हें हरिद्वार में मिस्टर, अब डाक्टर, खुदा-दाद (पंजाब विश्वविद्यालय के ग्रेजुएट) के पास ले गया था। जब मैंने स्वामी जी से उनका परिचय कराया तो वे बोले—ऐसे व्यक्तियों से राम के परिचय का मतलब? वे तो पहले ही राम के ढंग पर बने हुए हैं, राम उन्हें क्या सिखाये? और राम जब तक वहां रहे बराबर अपनी प्रकाश फैलानेवाली मुस्कराहटों से मुग्ध करते रहे।

राम ने कहा—राम को तुम्हारा नाम अच्छा नहीं लगता। खुदा का अर्थ है ईश्वर; दाद दिया हुआ। नाम तो केवल खुदा होना चाहिए था। डाक्टर खुदादाद ने उत्तर दिया—जिनके आंखें हैं, उनके लिए यह—जिनके नहीं हैं, उनके लिए यह। इस उत्तर से राम बेहद खुश हुए। महीनों बाद, जब मैं डाक्टर खुदादाद से

फिर मिला तो उन्होंने एक शैर सुनायी जिसमें उन्होंने राम का सारा जीवन भर दिया था:—

ओ स्वामी राम —तेरी मुस्कराहट है कैसी भेदभरी !
जीवन का रहस्य उसमें समाया हुआ है !

उन्हें शब्दों के साथ खेलने में वड़ा मजा आता था, जैसे वच्चे खिलौनों से खेलकर प्रसन्न होते हैं।

उदाहरण के लिए वे अपने ही नाम के साथ खेला करते थे। टोकियों में जव पहले पहल मैं यकायक उनका अपने-आप को अन्य पुरुप में 'राम' के नाम से पुकारना न भाँप सका तो उन्होंने कहा—देखो, जैसे जीवन का क्रम गृहस्थ से संन्यासी, संसार से ईश्वर में वदल गया है, उसी तरह इस शरीर (उसकी ओर इशारा करते हुए) के नाम का क्रम भी वदल गया है। साधु जीवन से पूर्ववर्ती दिनों में वह तीर्थराम था, अव वह रामतीर्थ हो गया है। कुछ दिनों वाद अंग्रेजी में अपने नाम Rama Tirtha में से उन्होंने 'i' निकाल दिया और अपना हस्ताक्षर 'Rama Truth' के रूप में करने लगे, जिसका अर्थ होता है—राम सत्य। अंग्रेजी में एक शब्द है Disease, रोग का पर्यायवाची। उसके दो टुकड़े Dis और ease करने पर उसका अर्थ होता है शान्ति का अभाव। राम का विचार था कि इसी एक शब्द में मानसिक-चिकित्सा-विज्ञान का रहस्य भरा हुआ है। ईश्वर के साथ, अपनी ही आत्मा के साथ शान्ति धारण करो, तुम पूर्ण पवित्र हो जाओगे, फिर तुम्हें कोई रोग नहीं हो सकता। मेल-मिलाप के पर्यायवाचक अंग्रेजी शब्द atonement को वे सदा टुकड़े-टुकड़े करके at-one-ment—एक रस हो जाना कहकर ही पुकारते और लिखते थे। इसी प्रकार समझने-वूझने के पर्याय Understanding को वे Standing-under—नीचे खड़ा होना,

अपनी ही वास्तविक आत्मा में गोते लगाने के रूप में पढ़ा करते थे। संन्यास लेने पर वे स्वामी कहलाते थे। इस संस्कृत शब्द का अर्थ है 'प्रभु' जिससे दूसरों की अपेक्षा कुछ श्रेष्ठता सूचित होती है। अंग्रेजी में वे Swami को शब्दानुसार न लिखकर So-am-I वही मैं हूँ अर्थात् तत्त्वमसि के रूप में लिखते थे। इस प्रकार किसी पत्र के अन्त में उनके हस्ताक्षर होते थे—

So- am-I वही हूँ मैं
Rama Truth राम सत्य

इसी प्रकार वे अपने प्यारे मंत्र के साथ भी खेला करते थे, जिसकी निरन्तर ध्वनि, एक स्वतंत्र पंछी की स्वाभाविक चहचहाहट में वे सदा मस्त रहते थे। ओम् को वह कभी कभी ओ-अम् कहते थे। फारसी में ओ का अर्थ है 'वह' और अम् का अर्थ होता है 'मैं हूँ'। इस प्रकार ओ-अम् को वे 'मैं वह हूँ' 'मैं ईश्वर हूँ' के रूप में समझते थे।

एक बार उन्होंने कहा था कि ईश्वर मिस्टर, मिसेज या मिस अर्थात् पुरुष, स्त्री या कन्या कुछ भी नहीं है, वह तो मिस्ट्री यानी रहस्य है। उनको H 'ह' की कड़ी आवाज पसंद न थी, वे हिन्दू को सदैव 'इन्दू' चन्द्रमा—कह कर पुकारते थे।

उर्दू भाषा के 'मतलब' शब्द को वे बड़ा महत्त्व देते थे। उसका अर्थ है प्राप्तव्य उद्देश्य; और उसके टुकड़े करने पर 'मत' का अर्थ होता है नहीं और 'लब' का ढूंढो। अतः मतलब का मतलब हुआ 'मत ढूंढो'।

ईद के मुसलमानी त्योहार में, जो रोजों के महीने रमजान के बाद आता है, उन्हें पैगम्बर की ईश्वर-चेतना, समभाव का परमानन्द दिखायी देता था। वे कहा करते थे—मुहम्मद ने ईद के दिन भीतरी ईद का चाँद देखा था, आनपल्ल हील का चाँद

देखना उसका वाह्य संकेत मात्र है। जो अपना ही भीतरी ईद का चांद नहीं देख सकता, उसे इस वाह्याडंबर से लाभ ?

लाहौर में वे जब प्रोफेसर थे, प्रायः अपनी घड़ी से खेला करते थे। चाहे प्रातः काल हो या मध्याह्न, सायंकाल हो या अर्द्ध-रात्रि, यदि कोई उनसे पूछता कि इस समय क्या बजा है तो वे बड़े धैर्य से अपनी घड़ी निकालते और ध्यान से उसे देखते और फिर पूछने वाले के चेहरे की ओर ताकते। सहसा उनके मुंह से निकलता – प्यारे, इस समय ठीक एक बजा है और उसे घड़ी दिखाने लगते। जिन्होंने भिन्न-भिन्न अवसरों पर उनसे समय पूछा था, कहते "गोस्वामी जी, बड़ी विचित्र बात है, जब भी हम आपसे समय पूछते हैं तब आप एक बतलाते हैं"। उत्तर मिलता— "प्यारे, राम की घड़ी ही ऐसी है, उसमें सदा एक ही बजता है।" यह कह कर वे हँस देते और चुप हो जाते।

डेनवर में उन्होंने अपने व्याख्यान का विषय बतलाया— हर एक दिन नये वर्ष का नया दिन है और हर एक रात्रि बड़े दिन की रात्रि है। विषय सुनते ही श्रोतागण भौचक्क रह गये, बड़ी देर तक तालियां पिटती रहीं। ऐसा मालूम होता था कि अपने व्याख्यानों के शीर्षक चुनने के बहाने ही वे अपना आनन्द मधुर सौरभ की भाँति चारों ओर बिखेर देते थे।

जीवन के विषय में अपनी बुद्धि से जो विचार स्थिर कर लिए थे, एक प्रकार से उन्हीं को उन्होंने सारे जीवन पर आच्छादित कर दिया था। अच्छा लगे या न लगे, वे श्रोतागण का सदैव अभिनन्दन करते थे—महिलाओं और भद्र पुरुषों के रूप में मेरे ही आत्मन! आत्म-साक्षात्कार की मस्ती और आनन्द की बाढ़ में वे अपने को राम-बादशाह कहा करते थे। कहते

ही नहीं थे, खिलाड़ी लड़कों की भाँति उसके लिए ज़िद भी करते थे। एक बार पोर्ट सईद में लार्ड कर्जन के साथ एक ही जहाज में भारतवर्ष जाने से यह कह कर इन्कार कर दिया कि दो बादशाह एक साथ एक नाव में नहीं जा सकते। उन्होंने अपनी यात्रा रद्द कर दी और फिर सचमुच दूसरे जहाज से आये। वे प्रायः बड़े गंभीर भाव से अपनी चुनी हुई उर्दू और फारसी की शेरें गाया करते थे। आंखें बन्द रहतीं, और गुलाबी गालों पर आनन्दाश्रु बहते रहते। ऐसा मालूम होता जैसे वे सचमुच पार्थिव रूप से उन गीतों का स्वाद ले रहे हों, वे ऊपर के ओंठ को नीचे ओंठ पर दबाकर चुसकियां सी भरते। वे सचमुच उनमें ऐसे भावमग्न हो जाते कि उनका सारा बदन प्रेमानन्द से झनझना उठता, यकायक अपने काँपते हुए हाथों को ऊपर उठा लेते, जैसे सम्पूर्ण विश्व को अपने अङ्क में भर लेना चाहते हों। इस प्रकार वे कभी-कभी काव्य-रस सागर में घंटों डूबे रहते। कभी-कभी जनता के सामने भाषण करते समय बीच ही में अपने को भूल जाते और अपने पवित्र मंत्र ओम् की ध्वनि लगाने लगते - ओम् ही उनका ईश्वर और सब कुछ था -जिन अमरीकन सज्जनों ने उन्हें इस प्रकार प्रेमानन्द में बेसुध होते देखा है, वे उनकी प्रशंसा करते थकते नहीं, कहते—राम प्रायः हर समय शरीर से बाहर रहते थे। वास्तव में वे सचमुच अपने आपको—अपने व्यक्तित्व को—भूल सा गये थे। जैसा पहले कह चुके हैं, वे सदा अपने लिए अन्य पुरुष का प्रयोग करते थे; उत्तम पुरुष—मैं—से उन्हें ईश्वर का बोध होता था। उनके मुँह से इस अन्य पुरुष की चर्चा इतनी स्वाभाविक मालूम होती थी कि जो उन्हें पहले पहल देखता, वह पहले यही समझता कि वे सचमुच अपने बारे में नहीं, वरन किसी तीसरे मनुष्य की बातें कर रहे हैं। जब मेरी पहली भेंट हुई

तो मैं घंटों नहीं समझ सका कि इस प्रकार अन्य पुरुष में वे अपनी ही बातें कर रहे हैं। फिर बाद में उन्होंने वे बातें खोल खोल कर समझायीं।

वे मनुष्य का सारा भीतरी प्रेम अपनी ओर खींच लेते थे। उनका स्पर्श सूखे से सूखे हृदय में भी कवि की भावनायें भर देता था। पूर्वीय साहित्य में प्रेम को देवी माना गया है, और उसे अद्भुत शक्ति से मण्डित किया गया है। उसके दर्शनमात्र से सूखे पौधों में एकदम नई कलियां खिल उठती हैं और सूखे कुंज लहलहाने लगते हैं। राम में यही प्रेम साकार हुआ था।

जापान में प्रवेश करते ही उन्होंने कहा—

राम इन लोगों को क्या सिखलाये ! ये तो सब के सब वेदान्ती हैं। ये सब के सब राम हैं, कितने प्रसन्नवदन, कितने सुखी, कितने शान्त, कितने परिश्रमी ! इसी को राम जीवन—सच्चा जीवन कहता है !

द्वितीय परिच्छेद

साधु के वेष में (क्रमानुगत)

जहाज पर स्वामी राम को अमरीकन यात्रियों ने अमरीकन समझा, जापानियों ने उनको अपने देशवासी की भांति प्यार किया। जापान से प्रस्थान करने के बाद श्री के. हिराई ने कहा था—मुझे अब भी कदम्ब पुष्पों की भांति उनकी मुस्कराहट हवा में नाचती दिखायी देती है। एक दूसरे कलाकार थे, जिन्होंने अंग्रेजी न जानते हुए भी टोकियो में 'सफलता के रहस्य' पर राम का व्याख्यान सुना था। उन्होंने कहा—स्वामी राम मुझे एक विशाल अग्निपुंज के समान दिखायी देते थे, और उनके शब्द छोटी छोटी सजीव चिनगारियों की भांति इधर-उधर उड़ते थे।

मिश्र में मिश्रवासियों ने उनका अभिनन्दन किया था और वहां फारसी भाषा में राम ने उन्हीं की मसजिद में व्याख्यान दिया था। दूसरे दिन समाचार पत्रों ने एक हिन्दू महात्मा के रूप में स्वामी राम का स्वागत किया; जिनका दर्शन करना वे अपना अहोभाग्य समझते थे।

अमरीका से लौटने पर मथुरा में एक दिन प्रातःकाल समीपवर्त्ती पुराणपंथियों ने प्रार्थना की—स्वामीजी, अपने विचारों के अनुसार राष्ट्र-निर्माण का कार्य करने के लिए भारतवर्ष में एक नया संगठन बना दीजिये। प्रेमानन्द से विभोर होकर उन्होंने

अपने नेत्र मूंद लिये और प्रेम पूर्ण आलिंगन के बहाने प्रेम से काँपती हुयी बाहों को फलाकर वे कहने लगे—

प्रेम-सागर की वर्षा करके
मैं संसार को आनन्द से नहला दूंगा,
जो विरोध करेगा, उसका भी स्वागत, उसे गले लगाऊँगा
सभी सभायें और समाज मेरे हैं, मैं सब का स्वागत करता हूं।
क्यों, क्योंकि मैं प्रेम-सागर की वर्षा करता हूं।

राम ने उस समय कहा था—

उनसे कहो–मैं उनका हूं। मैं सब को गले लगाता हूं। मेरे आलिंगन से कोई भी बाहर नहीं। मैं प्रेम हूं, प्रेम प्रकाश की भांति हर एक वस्तु को आनन्दमयी प्रतिभा से सराबोर कर देता है। सच, सचमुच मैं प्रेम की बाढ़ और प्रतिभा के सिवा कुछ भी नहीं। मैं सब को समान रूप से प्रेम करता हूं।

जब राम ईश्वर या मनुष्य की चर्चा करते थे तब उनका सारा शरीर ठीक उस प्रकार काँपने लगता था जैसे गायक की उंगली के नीचे सितार के तार झनझना उठते हैं। यदि रूपक की भाषा में राम का चित्र खींचा जाय तो हमें किसी गुप्त घाव की यंत्रणा से फड़ फड़ाते हुए श्वेत हंस का चित्र बनाना होगा।

कभी कभी राम विचित्र भावों में डूब जाते थे, जैसे कोई पुरातन कवि या दार्शनिक उनके सामने खड़ा हो और वे उनसे प्रेमपूर्ण वार्तालाप कर रहे हों। इस मानसिक संपर्क में राम सदैव एक खिलाड़ी बालक की भांति आनन्द में डूबे रहते थे, न उन्हें स्वयं अपने नाम की परवाह थी और न किसी उत्तरदायित्व के

भार की। उनकी साहित्यिक आलोचनायें इसीलिए सदैव प्यारभरी और सरल होती थीं। जैसे वे आलोच्य कलाकार से एकान्त में बातें कर रहे हों, उनमें विद्वत्ता और दुरूहता का नाम निशान नहीं होता था। वे कहा करते थे—शंकर ने यह क्या किया, अपने प्रकाश को बर्तन के नीचे छिपाकर रखा। सदैव दूसरों के ही प्रमाण देते रहे। मुहम्मद ने अपने ही निजी अनुभव के आधार पर सत्य की घोषणा करके अच्छा ही किया—

'अल्लाह अकबर मुहम्मद रसूल अल्लाह'

वे पर्वतों और उनके एकान्त के प्रेमी थे। वे देवदार और चीड़ के सघनतम जंगलों में रहते थे। आधी रात के समय वे मार्गहीन खाइयों की सैर के लिए निकल पड़ते थे, और सीधे खड़े पर्वतों पर प्रकृति के अल्हड़ बालक की भाँति चढ़ जाते थे। वे वस्तु-मात्र के अन्तस्तल में वैसे ही प्रवेश करते थे जैसे पंछी हवा में विचरते हैं। उस छवि का क्या कहना, जब वे अर्द्ध-निमीलित आँखों से हिमालय के घने जंगलों में घूमते थे, उस समय संसार के महान् से महान् सम्राट भी उनके सामने हेय थे।

अमरीका में रहते हुए भी वे प्रायः अपने निर्धारित सामाजिक कार्यक्रम से भाग खड़े होते थे, जैसे समाज के तङ्ग वायु-मण्डल में उनका दम घुटता हो। वहाँ वे शास्ता पर्वतों पर रहने के लिए चले गये थे। शारीरिक कठिन परिश्रम के वे इतने अधिक प्रेमी थे कि अपने सहृदय मेज़बान डाक्टर हिलर के लिए प्रायः जङ्गलों से ईंधन काटकर लाया करते थे।

अपनी बुद्धिजन्य महान् आवश्यकता की पूर्ति के लिये उन्होंने उस अद्वैत वेदान्त का अनुसरण स्वीकार किया था जिसकी शंकराचार्य ने विस्तृत व्याख्या की थी, किन्तु उसका प्रचार वे अपने स्वाभाविक वैष्णव भावापन्न हृदय से करते थे। वे अपने

को ब्रह्म कहते थे और आजीवन उसी ब्रह्मत्व के अनुभव के लिये चेष्टा करते रहे। उसका साक्षात्कार होने पर वे क्षण-क्षण पर उस ब्रह्मवृत्ति को उसी उच्चस्तर पर स्थिर रखने के लिये सतर्क रहते थे। ईश्वर की याद क्षण भर के लिये भी उनके चित्त से नहीं उतरती थी। वे सदैव अपनी ब्रह्मवृत्ति पर वाह्य-जगत् के मनुष्यों और वस्तुओं का प्रभाव वड़े ध्यान से देखा करते थे। थोड़ी सी भी असावधानी होने पर वे कह उठते थे—देखो, देखो, मैं स्वयं अपना विरोध कर रहा हूँ। वे वास्तविक सच्ची आत्मा को ही ईश्वर मानते थे। ईसामसीह के शब्दों में उन्होंने भी घोपणा की थी कि मनुष्य को एक ही साथ दो वस्तुओं की प्राप्ति नहीं हो सकती—या तो मनुष्य माया को वटोर ले, जिसे वे मनुष्य की निम्न या क्षुद्र आत्मा कहते थे, या ईश्वर का साक्षात् कर ले जिसे वे मनुष्य की उच्च आत्मा मानते थे। उनके चरित्र में उनके इस सिद्धान्त और व्यवहार में कहीं कोई विरोधाभास न रह सकता था, क्योंकि उनकी साधना वड़ी कड़ी थी, वे अपनी सभी इंद्रियों से निरन्तर ईश्वर का संचय किया करते थे, उनका हृदय सदा उस शब्दातीत अचिन्त्य रहस्य के आनन्द से परिपूर्ण रहता था।

भगवा वस्त्र पहने यह चित्त आकर्पित करनेवाली कवित्वशील आकृति सन् १९०६ में पंजाव से उठ गयी। विद्वत्ता की गर्द को कण-कण झाड़कर एकदम नंगे हो उन्होंने हिमालय के हिमाच्छादित घने जंगलों में सफलतापूर्वक ईश्वर का दर्शन किया था। हिमालय के एकान्त में वे हृदयाग्नि की लौ इसलिये जलाये हुए थे कि देखें—हिमालय का घनघोर हिम कहीं उसे शान्त तो नहीं कर देता। इस प्रकार प्रकृति-माता की मीठी और प्यारभरी गोद में इस दिव्य मनुष्य का जीवन चल रहा था। जव वे एक दिन गंगोत्री के शाश्वत हिम-निर्झर पर समाधिस्थ होकर जा

बैठे—आह्लाद से तुषारवृष्टि को आज्ञा दी—बस, बन्द करो अपनी वर्षा को; उनकी मुस्कराहट से भूरे बादल फट गये और फिर सूर्य-मण्डल में उन्हीं की मुस्कराहट खेल रही थी। वे बोल उठे—प्रकृति और मैं दो नहीं—एक हैं; प्रकृति मेरा शरीर है; उसकी आत्मा की नस नाड़ियां मैं उसी प्रकार हिला सकता हूँ, जैसे अपने हाथ पैर।

अद्वैत के पूर्ण अनुभव से भरे हुए वे एक सच्चे वैदिक कवि थे किन्तु स्वभाव और परम्परा से वे एक आदर्श वैष्णव थे, जिनकी साधना सुसंस्कृत होकर सर्वोच्च शिखर पर पहुँची हुयी थी। अपने स्वाभाविक सहज उद्गारों में वे सचमुच हिन्दू की अपेक्षा फारसी कहे जा सकते थे और अन्तिम दिनों में तो वे एक प्रकार से पूर्णतः शंकर के 'माया' सिद्धान्त के वशीभूत हो गये थे। उस समय वे कहा करते थे—यदि कोई सचमुच सत्य का साक्षात् कर ले तो स्थूल शरीर का भी पतन नहीं हो सकता। वह निस्संदेह चिरन्तन हो जायगा। शंकराचार्य भी पूर्ण आत्मज्ञानी नहीं थे किन्तु उस दृष्टि से तो अखिल विश्व ही माया और भ्रम है, वह हुआ ही कब ? एक, केवल सत्य के सिवा कहीं कुछ नहीं है !

उनका समीपवर्ती वायुमण्डल सदा उनके योगानन्द से परिपूर्ण रहता था। ऐसा मालूम होता था कि भूत-भविष्य और वर्तमान तीनों एक साथ उनमें मूर्तिमान हो उठे हैं। वे प्रायः अन्य व्यक्तियों के गीत लेते और उन्हें थोड़ा बहुत अदल-बदल कर अपने नाम से गाने लगते। यह भी एक मौलिकता थी, गूंगी किन्तु सजीव और हार्दिक भावों के उद्गारों से भरी हुयी—जिसकी गंभीर शान्ति में प्रकृति की प्रत्येक मीठी ध्वनि अपनी निजी हो जाती है। 'सघन जंगल के शान्त एकान्त में क्या तुमने पक्षी फाख्ते तीतुर को बोलते सुना है ? सुभाने-अल्लाह—ईश्वर, तेरी जय

हो।' ठीक ऐसा प्रतीत होता है जैसे श्रोता का ही शब्द पुनरावृत्त होकर उसके कानों से टकराया हो !

ग्रीष्म ऋतु में जब राम लाहौर की जलती हुयी सड़क की फ़र्श पर घूमकर वापस आते थे तो वे, जो उनके चरणों का स्पर्श करते थे, बिलकुल ठंठा पाते थे। 'मैं कभी गरम लाहौर में नहीं घूमता, मैं तो सदा गंगा की पीयूष-धारा में विचरता हूँ जिसकी रजत लहरियाँ मेरे पैरों को स्पर्श करती रहती हैं और मुझे आनन्द से सराबोर कर देती हैं।' वे प्रश्नकर्त्ता से पूछते थे—'क्या गंगा की धार सर्वत्र प्रवाहित नहीं हो रही है?' सदा भाव-निमग्न, भोजन वस्त्र से लापरवाह, निर्मल अश्रु-प्रवाह के साथ स्वामी जो लाहौर में रहते हुये भी सदा नक्षत्रों के पालने में झूला करते थे और नील वर्ण आकाश में उन्हें वही पुरातन कदम्ब वृक्ष दिखायी देता था जिस की शाखाओं पर बैठकर द्वापर में कृष्ण ने वंशी बजाई थी। हरद्वार में गंगास्नान करते हुए वे ऐसे ध्यानमग्न हो जाते थे कि उन्हें देश काल की कोई सुध न रहती थी—आँखें मूद कर और कान बंद कर वे उसी कदम्ब वृक्ष पर भगवान् कृष्ण को अपने सामने देखते और उनकी वंशी का चिरंतन संगीत सुनने लगते। वे उस संगीत से आत्मविभोर हो जाते जो गंगा के हिम सदृश शीतल स्वच्छ जल में स्नान करने वाले हजारों यात्रियों में से कभी एक के भी कान में न पड़ता।

आत्मानन्द की एक एक लहर से वे पागल हो उठते, दिन के बाद दिन बीतते चले जाते और वे उसी में डूबे रहते। जब राम संसार-यात्रा के समय जापान से अमरीका गये तब सन फ्रांसिस्को बन्दर पर वे जहाज के डेकों पर बारी-बारी से आने-जाने लगे, जैसे उन्हीं डेकों में उन्हें निवास करना हो। एक अमरीकन उनको इस विचित्र मस्ती से चकित होकर उनके पास पहुँचा और उनसे

लेखक सरदार पूरनसिंह

पूछने लगा कि वे अन्य सब की भांति उतरने की जल्दी क्यों नहीं कर रहे हैं।

उस उत्सुक अमरीकन ने पूछा—क्यों साहब, आपका सामान कहां है? स्वामी जी ने उत्तर दिया - जो कुछ मेरे शरीर पर है, इसके सिवा मैं और कोई सामान नहीं रखता।

"आपका रुपया-पैसा कहां है?"

"मैं रुपया अपने पास नहीं रखता।"

"फिर आपका जीवन कैसे चलता है?"

"मैं सबसे प्रेम करके ही जीवित रहता हूं। जब प्यासा होता हूं तो कोई न कोई सदा पानी का प्याला लिये मिल जाता है और जब भूखा होता हूं तो सदा कोई न कोई रोटी का टुकड़ा लिये तैयार रहता है।"

"किन्तु क्या अमरीका में भी आपके कोई ऐसे मित्र हैं?"

"हां, हैं क्यों नहीं, मैं केवल एक ही अमरीकन को जानता हूं और वह हो तुम!" यह कहते हुए स्वामी जी ने उसके कंधे को छू दिया। उनके स्पर्श से उस अमरीकन पर जादू जैसा प्रभाव हुआ, जैसे उसे स्वामी जी के साथ अपनी पुरातन भूली हुई मित्रता का स्मरण हो आया हो। वह उनका अनन्य भक्त बन गया। इस भद्र पुरुष ने लिखा है - स्वामीजी हिमालय की गुफाओं से उदय होने वाले ज्ञानसूर्य के समान हैं, न अग्नि उनको जला सकती है और न अस्त्र-शस्त्र उनको काट सकते हैं। आनन्दाश्रु सदा उनके नेत्रों से छलकते रहते हैं, उनकी उपस्थिति मात्र से हमें नवजीवन मिलता है।

एक वयोवृद्ध अमरीकन महिला* एकान्त में स्वामी राम से भेंट

---

* मिसेज़ वेलमेन—इन महिला से मेरी भेंट हुई और इन्होंने मुझे अपना सारा वृत्तान्त सुनाया।

करने आयी और स्वामी जी के सामने अपना घरू दुखड़ा रोने बैठ गयी। स्वामी जी आंखें मूंदे पद्मासन से बैठे थे और वह घंटों उनके सामने रोती-झींकती रही। अन्त में उसने मन में सोचा—यह तो पूरा गंवार है, एक स्त्री इसके सामने बिलख-बिलख कर रो-धो रही है किन्तु न तो इसके मुंह से सहानुभूति का एक भी शब्द निकला और न इसने करुण दृष्टि से उसकी ओर देखा ही। स्वामी जी उसके सामने उसकी बातें सुनते हुए, फिर भी प्रस्तर की प्रतिमा की भाँति अचल बैठे थे। "ये भारतीय सचमुच बड़े अभद्र और गर्विष्ट होते हैं।" कहते हुए जब वह महिला अपनी दुख-गाथा समाप्त कर चुकी तब स्वामी जी ने अपनी रक्तवर्ण उद्भ्रान्त जैसी आंखों से उसकी ओर देखा और कहा—"मां!" बस, फिर तुरन्त ही अपना प्यारा वैदिक मंत्र ओम्-ओम् गाने लगे। उसने मुझसे कहा था कि उस समय मानो उनकी आंखों से एक नूतन चेतना का अचिन्त्य प्रभात मेरे सामने फूट पड़ा हो। वह कहने लगी—उस समय मुझे ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे मैं पृथ्वी से ऊंचे उठकर और प्रकाश का जामा पहनकर हवा में उड़ने लगी हूं। मुझे ऐसा भान हुआ, जैसे मैं सचमुच इस विश्व की मां हूँ। सारे देश मेरे होगये, सारे राष्ट्र मेरी सन्तान बन गये। मुझे ऐसा आनन्द प्राप्त हुआ कि मैंने भारतवर्ष जाकर उन स्थानों का दर्शन करने का निश्चय किया; जहां स्वामी जी ने जन्म लिया और जहां उनका पालन-पोषण हुआ था। मुझे लगता था कि मुझे जाना ही होगा और इसीलिए मैं आयी हूं। अब मेरा धैर्य और आनन्द अटूट है—ओह, राम का वह प्यारा शब्द ओम् मेरी हड्डियों में गूंज रहा है। उनका वह शब्द 'मां', उसने मुझे सचमुच देवी बना दिया। मैं उनके चरणों का स्पर्श करके धन्य हुई हूं—जो आनन्द उन्होंने मुझे प्रदान किया है, मेरा हृदय बारबार उस पर न्योछावर

होना चाहता है। मेरे हृदय में स्थित किसी अमृत-स्रोत का द्वार उन्होंने सदा के लिए उन्मुक्त कर दिया है, ऊपरी खोल फट गया है और मैं पवित्र हो गयी हूं।

अमरीका में किसी झील के निवास-स्थल पर (इस समय मुझे ठीक नाम स्मरण नहीं आता) स्वामी जी ॐ ॐ की ध्वनि उच्चारण करते निवास करते थे। यहां प्राकृतिक चिकित्सा के उद्देश्य से बहुत से थके-मांदे और निराश रोगी आया करते थे। राम की उपस्थिति से वहां बहुत से रोगियों को ढाढ़स हुआ और बहुत से उनके द्वारा निरोग हो गये। वे उन्हें स्वास्थ्यदाता कहा करते थे।

उनके पत्र कवितारूप हैं और उनमें उनकी आत्मा की सुगंधि भरी हुई है। निस्संदेह वे राम के नाम से प्रकाशित सम्पूर्ण साहित्य के सर्वोत्तम और सर्वापेक्षा मनोहर अंश हैं। नीचे एक पत्र दिया जाता है, जो उन्होंने ११ जून १६०३ को केसल स्प्रिंग, कैलिफार्निया से भारतवर्ष के एक मित्र के नाम लिखा था। यह पत्र नहीं, उनके अपने विशेष आनन्द को व्यक्त करने वाला सजीव दूत जैसा है। वे लिखते हैं—

१६ मई—राम नदी के किनारे एक चट्टान पर पैर पसारे लेटा हुआ था, उसी समय डा० हिलर-भवन के मैनेजर ने उसे एक बहुत ही सुन्दर झूला लाकर दिया, जो स्याटल के किसी मित्र ने बिना मांगे ही भेज दिया था। तुरन्त ही वह एक हरे-भरे देवदार और लाल फर वृक्ष के बीच में खूब ऊंचे हवा में लटका दिया गया। राम उमड़ते हुए आह्लाद और घुमड़ते हुए अट्टहास के साथ उस झूलते हुए बिस्तर पर जा लेटा। सुगंध युक्त मीठी-मीठी हवायें राम को इधर-उधर झुलाने लगीं और नदी ने ओम् ध्वनि का राग प्रारम्भ किया। राम को हंसी सूझी। वह हंसा, हंसा और हंसता ही गया। तुम उसे उस समय हंसते हुए देखते! एक चहचहाती हुई गौरैया ऊपर बैठी राम के झूलने का

करने आयी और स्वामी जी के सामने अपना घरू दुखड़ा रोने बैठ गयी। स्वामी जी आंखें मूंदे पद्मासन से बैठे थे और वह घंटों उनके सामने रोती-झींकती रही। अन्त में उसने मन में सोचा—यह तो पूरा गंवार है, एक स्त्री इसके सामने बिलख-बिलख कर रो-धो रही है किन्तु न तो इसके मुंह से सहानुभूति का एक भी शब्द निकला और न इसने करुण दृष्टि से उसकी ओर देखा ही। स्वामी जी उसके सामने उसकी बातें सुनते हुए, फिर भी प्रस्तर की प्रतिमा की भाँति अचल बैठे थे। "ये भारतीय सचमुच बड़े अभद्र और गर्विष्ट होते हैं।" कहते हुए जब वह महिला अपनी दुख-गाथा समाप्त कर चुकी तब स्वामी जी ने अपनी रक्तवर्ण उद्भ्रान्त जैसी आंखों से उसकी ओर देखा और कहा—"मां!" बस, फिर तुरन्त ही अपना प्यारा वैदिक मंत्र ओम्-ओम् गाने लगे। उसने मुझसे कहा था कि उस समय मानो उनकी आंखों से एक नूतन चेतना का अचिन्त्य प्रभात मेरे सामने फूट पड़ा हो। वह कहने लगी—उस समय मुझे ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे मैं पृथ्वी से ऊंचे उठकर और प्रकाश का जामा पहनकर हवा में उड़ने लगी हूं। मुझे ऐसा भान हुआ, जैसे मैं सचमुच इस विश्व की मां हूँ। सारे देश मेरे होगये, सारे राष्ट्र मेरी सन्तान बन गये। मुझे ऐसा आनन्द प्राप्त हुआ कि मैंने भारतवर्ष जाकर उन स्थानों का दर्शन करने का निश्चय किया, जहां स्वामी जी ने जन्म लिया और जहां उनका पालन-पोषण हुआ था। मुझे लगता था कि मुझे जाना ही होगा और इसीलिए मैं आयी हूं। अब मेरा धैर्य और आनन्द अटूट है—ओह, राम का वह प्यारा शब्द ओम् मेरी हड्डियों में गूंज रहा है। उनका वह शब्द 'मां', उसने मुझे सचमुच देवी बना दिया। मैं उनके चरणों का स्पर्श करके धन्य हुई हूं—जो आनन्द उन्होंने मुझे प्रदान किया है, मेरा हृदय बारबार उस पर न्योछावर

होना चाहता है। मेरे हृदय में स्थित किसी अमृत-स्रोत का द्वार उन्होंने सदा के लिए उन्मुक्त कर दिया है, ऊपरी खोल फट गया है और मैं पवित्र हो गयी हूं।

अमरीका में किसी झील के निवास-स्थल पर (इस समय मुझे ठीक नाम स्मरण नहीं आता) स्वामी जी ॐ ॐ की ध्वनि उच्चारण करते निवास करते थे। वहां प्राकृतिक चिकित्सा के उद्देश्य से बहुत से थके-मांदे और निराश रोगी आया करते थे। राम की उपस्थिति से वहां बहुत से रोगियों को ढाढ़स हुआ और बहुत से उनके द्वारा निरोग हो गये। वे उन्हें स्वास्थ्यदाता कहा करते थे।

उनके पत्र कवितारूप हैं और उनमें उनकी आत्मा की सुगंधि भरी हुई है। निस्संदेह वे राम के नाम से प्रकाशित सम्पूर्ण साहित्य के सर्वोत्तम और सर्वापेक्षा मनोहर अंश हैं। नीचे एक पत्र दिया जाता है, जो उन्होंने ११ जून १६०३ को केसल स्प्रिंग, कैलिफार्निया से भारतवर्ष के एक मित्र के नाम लिखा था। वह पत्र नहीं, उनके अपने विशेष आनन्द को व्यक्त करने वाला सजीव दूत जैसा है। वे लिखते हैं—

१६ मई—राम नदी के किनारे एक चट्टान पर पैर पसारे लेटा हुआ था, उसी समय डा० हिलर-भवन के मैनेजर ने उसे एक बहुत ही सुन्दर झूला लाकर दिया, जो स्याटल के किसी मित्र ने बिना मांगे ही भेज दिया था। तुरन्त ही वह एक हरे-भरे देवदार और लाल फर वृक्ष के बीच में खूब ऊंचे हवा में लटका दिया गया। राम उमड़ते हुए आह्लाद और घुमड़ते हुए अट्टहास के साथ उस झूलते हुए बिस्तर पर जा लेटा। सुगंध युक्त मीठी-मीठी हवायें राम को इधर-उधर झुलाने लगीं और नदी ने ओम् ध्वनि का राग प्रारम्भ किया। राम को हंसी सूझी। वह हंसा, हंसा और हंसता ही गया। तुम उसे उस समय हंसते हुए देखते ! एक चहचहाती हुई गौरैया ऊपर बैठी राम के झूलने का

मज़ा ले रही थी। शायद उसे राम से ईर्ष्या हो रही हो ! क्या सच-मुच ? नहीं, राम से ईर्ष्या करने का कोई कारण नहीं हो सकता। हर एक गौरैया, हर एक फाख्ता और हर एक कोयल तो राम का अपना आप है। फिर भी जब भीतर न समाने वाले हार्दिक उल्लास को खेलने कूदने और इधर-उधर नाचने में खपा देने के लिये राम झूले से नीचे उतरा तो वह सुन्दर गौरैया चुपचाप झूला झूलने का मज़ा लेने के लिये उसमें जा बैठी। देखो, राम की छोटी छोटी चिड़ियां, छोटे छोटे फूल उसी तरह खिलाड़ी, प्रसन्न और स्वतंत्र हैं, जैसे राम !

२० मई, मध्याह्न। संयुक्त राष्ट्र के प्रेसीडेन्ट उत्तर की ओर जाते हुए थोड़ी देर के लिये स्प्रिंग्स (निर्झर) पर ठहरे थे। स्प्रिंग कम्पनी की प्रति-निधि महिला ने उन्हें सुन्दर फूलों से भरी हुई एक टोकरी भेंट की और ठीक उसी के अनन्तर उन्होंने राम के हाथों 'भारतवासियों के हितार्थ अपील' नामक पुस्तिका बड़े प्रेम, बड़ी प्रसन्नता और बड़ी शिष्टता से स्वीकार की। वे बराबर उस पुस्तिका को अपने दाहने हाथ में लिये रहे और उसी दाहने हाथ से जनसमूह के अभिवादनों का उत्तर देते समय वह पुस्तिका स्वतः सैकड़ों बार अपने आप उनके मस्तक को छूती रही। जब गाड़ी चल दी, तब वे उसी पुस्तिका को ध्यान से पढ़ते हुए दिखायी दिये और चलती हुई गाड़ी से एक बार पुनः राम को धन्यवाद सूचक प्रणाम किया।

किन्तु सुनो तो, राम ने उस राष्ट्रपति को उस रसपूर्ण झूले में झूलने और इस प्रकार अतीव आह्लाद लूटने का निमंत्रण देना ठीक नहीं समझा। क्या तुम कल्पना कर सकते हो, क्यों राम ने ऐसा नहीं किया ? प्यारे, कुछ सोचो तो। प॰ ओहो, तुम बोल नहीं सकते, इस-लिये राम ही तुम्हें बतलाता है। कारण बहुत ही स्पष्ट है। स्वतंत्र कहलाने वाले अमरीकनों का अधिपति सहस्रांश में भी उतना स्वतंत्र न है जितनी राम की चिड़ियां और हवाएं !

पर राष्ट्रपति की चर्चा छोड़ो। तुम स्वतंत्र हो सकते हो, ठीक राम जैसे स्वतंत्र और हवा एवं प्रकाश को अपना आज्ञाकारी अनुचर बना सकते हो। बस, राम हो जाओ और राम तुमको सब कुछ—सूरज, चांद, तारे, हवा, बादल, सागर, पर्वत जंगल क्या क्या नहीं भेंट करेगा ? सब चीज़ें तुम्हारी हो जायेंगी। कितना बढ़िया सौदा है। प्यारे ! क्या तुम इसे पसन्द नहीं करते ? लो प्यारे, इस अनुपम भेंट को लेकर देखो तो सही !

प्रातः काल चार बजे उषा के चुम्बनों से जगकर और उन्मुक्त मन्द-मन्द समीर की गुदगुदी को साथ लेकर राम कलकल कलरव-शील चिड़ियों के मधुर संगीत के स्वागतार्थ पर्वतों की चोटियों पर या नदी के किनारे टहलने के लिये निकल जाता है।

आओ, प्यारे तुम भी आओ और राम के साथ हंसो, खूब हंसो, जी खोलकर हंसो। मेरे बच्चे जल्दी आओ और राम की निर्भीक मुस्कराहट भरी आँखों में देखो। बस, तुम प्रकृति के समीप और राम के समीप निवास करने लगोगे। मैं तो शिव और आनन्द रूप हूँ।

स्वामी राम प्रकृति के अनन्य प्रेमी थे। ज्योंही अवसर मिलता वे झट पहाड़ों और जंगलों में दौड़ जाते—जैसे बाज़ अपने पर्वतीय घोंसले की ओर दौड़ता है। वहां वे ध्यान करते और प्रकृति के अगाध एकान्त से स्वास्थ्य एवं ज्ञान-स्फूर्ति प्राप्त करते। प्रकृति में स्वास्थ्यदायिनी शक्ति है, जब कि मनुष्य एकाग्र मन से निश्चिन्त होकर पूर्णतः उसके प्रभावों के प्रति आत्मसमर्पण कर देता है, तभी उससे सबसे अधिक लाभ होता है। स्वामीजी ने एक निम्नांकित पत्र मुझे दार्जिलिंग के जंगलों से लिखा था—

दिन रात बन जाता है और रात्रि पुनः दिवस में परिणत होती है और तमाशा देखो कि तुम्हारे राम को यहां कोई काम करने के लिये समय ही नहीं मिलता, रात-दिन कुछ भी न करने में जुटा रहता है।

आंसू निरन्तर झरते हैं, मानो इस सबसे अधिक वर्षा वाले जिले की अजस्त्र वर्षा से स्पर्द्धा करते हों। रोंगटे खड़े रहते हैं, आंखें खुली रहती हैं किन्तु सामने की चीजों में से कुछ भी दिखायी नहीं देता। बातचीत रुक गयी, काम रुक गया, अभाग्यवश (?) नहीं, सर्वाधिक सौभाग्यवश ! ओह, मुझे एकदम अकेला रहने दो।

इस शब्दहीन आनन्दोत्सव की लहरों का एक के बाद एक बराबर आते रहना - ओ प्रेम ! इस उत्सव को चलने दो, ओ सर्वाधिक स्वादिष्ट पीड़ा —इस आनन्द-स्रोत को बहने दो।

लिखना-पढ़ना दूर—
व्याख्यान—भाषण परे हटो !
नाम-धाम से क्या मतलब ?
आदर – व्यर्थ का आडम्बर।
निरादर—कोई माने नहीं रखता !
क्या ये खिलौने जीवन-लक्ष्य हो सकते हैं !

तर्क, न्याय और विज्ञान—लूले लंगड़े बेचारे ! यदि मेरी ओर देखें तो उनका अंधापन मिट जाय।

स्वप्नों से वह निकली एक पवित्र, पवित्रतम धारा
जाग्रत में जो बढ़ती गयी, बढ़ती गयी
और कभी कभी किनारों के, इन इन्द्रियों और इस पार्थिव
शरीर के किनारों को पार करके आगे बढ़ गयी
और लो ! यह तो सारे संसार में फैल गयी, फैल गयी—
सारे विश्व को प्लावित कर दिया, कैसा अंधड़, कैसी शांति !
इसी के लिये तो सूर्य, प्रतिदिन सूर्य निकलता है
और यह समूचा विश्व सूर्य का चक्कर लगाता है
ओ हो, जन्म और मृत्यु सब इसी के कारण से तो हैं।
वही धारा धड़धड़ाती आती अद्भुत दृश्य दिखाती है

और आनन्द की कैसी बाढ़ आ जाती है ।
यह कैसा अट्टहास ! कैसी शान्ति !

और उनका यह अमरीका से भेजा हुआ पत्र देखिए—

१० अगस्त १६०३

नक्षत्रखचित आकाश-मण्डल के नीचे
एक नैसर्गिक आराम में
एक पर्वतीय निर्झर के किनारे
प्यारे कल्याणस्वरूप आत्मन्,

तुम्हारा पत्र दूसरी डाक के साथ अभी अभी मिला, जब कि राम शास्ता पर्वत (१४,४४४ फ़ीट ऊँचा) की चोटी के एक अत्यन्त सुखद दौर से वापस लौटा है ।

प्यारे तुझे क्या करना है, तू कुछ भी मत कर। बस, अपने घर को संभाल कर ठीक कर ले, उसके किवाड़ खोल दे और उन्हें सब के—हर एक के आने के लिए खुला रहने दे—अपनी धन-सम्पत्ति को ग़रीबों में, धनहीनों में बांट दे और बस, तैयार होकर उस जगह आ जा, जहां राम तेरी बाट जोहता है ।

ओ प्रसन्नता ! बहो, उत्सुक होकर बहो और बहते बहते समानता के समुद्र को पार कर जाओ। एक झटके से तोड़ डालो, सारे बन्धनों और कर्त्तव्यों को टुकड़े टुकड़े कर डालो और अपने ब्रह्मभाव के प्रताप से प्रतापी हो जाओ।

भीतर देखो, भीतर ढूंढ़ो, तुम्हें सदा उत्तर मिलता रहेगा। तुम स्वयं राम हो।

स्वामी राम के समग्र ग्रन्थ के अंग्रेजी संस्करण की भूमिका में जो रामतीर्थ प्रतिष्ठान, लखनऊ, द्वारा "In Woods of God-

Realization'' के नाम से प्रकाशित हुए हैं, राम के व्यक्तित्व का वर्णन करते हुए श्री सी० एफ० एण्ड्रूज लिखते हैं—

स्वामी राम के लेखों में बच्चों जैसी सरलता है। उनके भीतर उमड़ता हुआ आनन्द और आह्लाद फूटा पड़ता है, जो उन्होंने आत्म-साधन और कठोर यातना से प्राप्त किया है। उनके भीतर हमें उस आत्मा के दर्शन होते हैं, जो स्वयं सन्तुष्ट है। उनमें अपनी इस अमूल्य निधि को दूसरों को भेंट करने की इच्छा स्पष्ट दिखायी देती है। इसके साथ ही राम के लेखों में हमें उन निम्न वासनाओं को जाग्रत करने का कोई संकेत नहीं मिलता, जो साधारणतः जीवन में सफलता प्राप्त करने के हेतु उत्तेजित की जाती हैं। नहीं, वे इनका विरोध करते हैं और सभी वाह्य परिस्थितियों की उपेक्षा करके केवल उस आत्मा के साक्षात् का अनुरोध करते हैं, जो सच्चे और शाश्वत आनन्द का भण्डार है।

वे रंचमात्र भी उन उदासियों में परिगणित नहीं किये जा सकते, जो वैराग्य के पथ का अनुसरण करके संसार के हर्ष और प्रसन्नता से सदा के लिए मुंह मोड़ लेते हैं। उन्होंने स्वयं उन शारीरिक कष्टों और तितिक्षाओं को सहन किया था, जिसका अनुभव हम में से बहुत कम लोगों को प्राप्त होता है। किन्तु इसके फलस्वरूप न उनमें कोई कटुता आयी, न रूक्षता, वरन् उनका संदेश नम्रता और आनन्द से भरा हुआ है। उदाहरण के लिये उनके व्याख्यानों के शीर्षक ही हमें उनके अन्तःकरण के अन्तर्गठन की झांकी दिखाने के लिये पर्याप्त हैं —एक शीर्षक है—"आनन्द तुम्हारे भीतर है"। दूसरा, "अपने घरों को सुखी कैसे बना सकते हो ?" उनको सदा ऐसे ही विषय आकर्षित करते हैं। ऐसा मालूम होता है कि अपना संदेश स्पष्ट करते हुए वे अपने हर एक शब्द में, एक एक शब्द में. अपना हृदय खोल कर रखने की चेष्टा करते हैं। अपना संदेश उन्होंने स्वयं अपने अनुभव से प्राप्त किया है, वे दूसरे के अनुभवों पर भरोसा नहीं करते। वे स्वयं आकण्ठ आनन्द से भरे हुए हैं

और संसार को वही आनन्द प्रदान करने के लिये लालायित हैं। उनका आनन्द उस समय पराकाष्ठा को पहुंच जाता है, जब वे इसी आनन्द की व्याख्या करने लगे हैं।

एक स्थल पर उन्होंने स्वयं अपना चित्र खींचा है। वे कहीं अमरीका में बैठे हुए थे—

देवदार और चीड़ के वृक्षों तले आराम से लेटा हूं, एक शीतल पत्थर तकिये का काम दे रहा है, कोमल बालू ही मेरा बिस्तर है। एक टांग मौज से दूसरी टांग पर रखे हुए मैं सम्पूर्ण हृदय से सद्य और ताजी वायु की चुसकियां ले रहा हूं। ओह, उस तेज-पूर्ण प्रकाश का चुम्बन लेने में कैसा मजा आता है। एक ओर ओम् का मधुरतम संगीत है और दूसरी ओर कल-कल नाद करता हुआ निर्झर राम के स्वर में स्वर मिलाने के लिये तैयार खड़ा है।—उनके 'अरण्य-संवाद' से

श्री सी० एफ० एण्ड्रूज़ अपनी 'भारतवर्ष में नवयुग' नामक पुस्तक में पुनः राम की चर्चा करते हैं—

.........एक दूसरे व्यक्ति, जिनका व्यक्तित्व कई बातों में विवेकानन्द के व्यक्तित्व से भी अधिक चित्ताकर्षक है, और जिन्होंने उत्तर भारत में उसी नव वेदान्त के प्रचार का शंखनाद किया है, हैं स्वामी रामतीर्थ। वे ब्राह्मण थे और लाहौर में हद दर्जे की गरीबी में उनका लालन-पालन हुआ था। वहीं फोरमेन क्रिश्चियन कालेज में उनकी शिक्षा-दीक्षा हुई थी और विश्वविद्यालय में एक अत्यन्त उज्ज्वल अध्ययन पूर्ण करने के अनन्तर वे वहीं गणित के प्रोफेसर हो गये। किन्तु उनका हृदय पूर्णतः धर्म के समर्पण हो चुका था, अतः परिव्राजक और प्रचारक बनने के लिये उन्होंने कालेज के अध्यापन-कार्य से सदा के लिये छुट्टी ले ली। वे हिमालय के सघनतम जंगलों में चले गये और वहां एकान्त में प्रकृति के साथ रहने-सहने लगे। उनके चरित्र में हमें यथार्थतः काव्यरस की धारा प्रवाहित होती स्पष्ट दिखायी देती है। उनके स्वभाव में हमें एक

उमड़ता हुआ, क्षण-क्षण पर बाहर फूट पड़ने वाला ऐसा आह्लाद दृष्टि-गोचर होता है कि कठिन से कठिन कष्ट और घोर से घोर अभाव भी उन्हें छू नहीं पाते। उनके शिष्य नारायण स्वामी ने मुझ से राम के सार्वजनिक भाषणों के लिये प्राक्कथन लिखने को कहा था और मुझे उसे तत्परता से पूर्ण करने में प्रसन्नता हुई थी—क्योंकि उनके लेखों में मुझे विवेकानन्द के लेखों की अपेक्षा ईसाई धर्म की ध्वनि अधिक स्पष्ट सुनायी पड़ती है। उदाहरण के लिये प्रभु-प्रार्थना विषयक निम्नलिखित-आलोचना की तुलना कीजिये। 'वह जो स्वर्ग में है' इन शब्दों के अर्थ के विषय में जो भूल की गयी है, वह मैं विवेकानन्द के लेखों से पहले ही दिखा चुका हूं।

'प्रभु की प्रार्थना' में स्वामी रामतीर्थ लिखते हैं, "हम कहते हैं—हे प्रभु! हमें आज का भोजन दीजिये और एक दूसरे स्थल पर कहा गया है कि मनुष्य केवल रोटी के सहारे जीवित न रहेगा। इन दोनों कथनों पर फिर से विचार कीजिये। उनको ठीक ढंग से पूरी तरह समझिए। प्रभु की प्रार्थना का यह अर्थ नहीं है कि तुम मांगते-जांचते रहो, तरह तरह की इच्छाएँ करो, कदापि नहीं। प्रार्थना का तात्पर्य ऐसा होना चाहिए कि एक राजा भी, एक सम्राट भी, जिसे अपने दैनिक भोजन न मिलने की कोई आशंका ही नहीं हो सकती भगवान् के सामने ऐसी प्रार्थना करे। यदि यह ठीक है तो स्पष्ट ही 'आज हमको हमारी रोटी दीजिये'—इसका यह अभिप्राय नहीं हो सकता कि हम एक भिखारी बन जायें अथवा हम भौतिक समृद्धियों के लिए भगवान् से याचना करें—कदापि नहीं! प्रार्थना का अर्थ यह है कि हर एक मनुष्य—चाहे वह राजकुमार हो, राजा हो या साधु—अपने चारों ओर की वस्तुओं को अपनी सम्पत्ति और वैभव को अपना न समझे, वरन् ईश्वर का समझे, अपना नहीं, अपना नहीं। इसे हम भिखारीपन नहीं कह सकते—यह तो पूर्ण त्याग और सन्यास है, ईश्वर को अपना सब कुछ सौंप देना। राजा जब

साधु के वेष में (क्रमानुगत)

ऐसी प्रार्थना करता है, तब अपने आपको उस मनोदशा में पहुंचा देता है, जहां उसके धनागार के सारे रत्न, उसके महत्त्व की सारी सम्पत्ति, स्वयं राजभवन उसका नहीं रहता, वह उन्हें छोड़ देता है, त्याग देता है, उन पर से अपना अधिकार हटा लेता है। वह मानो प्रार्थना करते समय साधुओं का साधु—परम साधु—बन जाता है। वह कहता है—यह ईश्वर का है, यह मेज़ ईश्वर की है, मेज़ पर की सभी चीज़ें उसकी हैं, मेरा तो कुछ भी नहीं, जो कुछ मेरे पास आता है, वह सब उसी प्यारे के हाथों प्राप्त होता है।

तीसरा परिच्छेद

उनकी झोली के फल :

उनके मौलिक विचार

प्रत्येक व्यक्ति जो जीवन, उसके परिश्रम, उसके प्रेम की सत्यता को खोजता है; अपनी झोली में जीवन के कुछ पके हुए फल इकट्ठा कर लेता है और यदि उदार हृदय हुआ तो उन्हें सड़क के किनारे बैठकर अपने पास से आने-जाने वालों में मुफ्त वितरण करता रहता है। कभी-कभी तो वह स्वेच्छा से उन लोगों की खोज भी करता है, जिन्हें उन फलों की आवश्यकता होती है। किन्तु ज्यों-ज्यों वह उन्हें बाँटता रहता है त्यों-त्यों उसकी झोली फलों से सदा हरी-भरी रहती है। चाहे उस सन्त का किस्सा सच हो या न हो, जो केवल रोटी के एक टुकड़े से सैकड़ों अतिथियों को भोजन करा देता था और फिर भी उसके पास दूसरों को खिलाने के लिये यथेष्ट बचा रहता था, किन्तु इसमें संदेह नहीं कि जीवन के अर्थ और सच्चे उद्देश्य को समझने की चेष्टा करने वाले प्रेमी और सत्यनिष्ठ जिज्ञासु की झोली के फल कभी चुकते नहीं।

हम संन्यासी वेष में भगवा वस्त्र पहने स्वामी राम के दर्शन कर चुके। अब इस परिच्छेद में राम उस प्रसन्नवदन फल-विक्रेता के रूप में चित्रित किए जाएंगे, जो फलों से पूर्ण अपनी अक्षय झोली लटकाए सड़क के किनारे बैठा है और एक हाथ उस

झोली में डालकर जो भी सामने आता है, उसे फल निकाल-निकाल कर यों ही देता जाता है।

सब से पहले उन्होंने हमें सिखाया कि शरीर और मन से ऊपर जीवन की एक स्थिति होती है जो ज्ञान (दिव्य स्फूर्ति), आनन्द की अवस्था है, जहाँ मनुष्य अलौकिक समाधि में समा जाता है। यह वह अवस्था है, जहां मनुष्य ईश्वर से एकता प्राप्त करता है, एक हो जाता है, स्वयं ब्रह्म होता है। जो मनुष्य निरंतर उस समाधि की स्थिति में रहने लगता है, कभी उससे नीचे नहीं उतरता, वह वास्तव में, यथार्थतः ईश्वर, ब्रह्म है। इस सुन्दर स्थिति में कई अदृश्य शक्तियां प्राप्त होती हैं; और हम उनका उपयोग कर सकते हैं—स्वामी राम उनकी कोई चर्चा नहीं करते कि ऐसा होता है या नहीं। वे तो जब 'समाधि' साधन के विषय पर बोलते हैं तो स्पष्टतः एक आध्यात्मिक रहस्यवादी के रूप में ही हमारे सामने प्रकट होते हैं, मानो अन्तःकरण के इस टूटे-फूटे दीपक से परे वे उस पूर्ण प्रकाश की ज्योति से नहा रहे हों। राम कहते हैं—एकाग्रता का अर्थ है शरीर और मन से ऊपर उठ जाना, जहां हमें शरीर और मन दोनों का ध्यान नहीं रहता, वह आनंद और शान्ति-समाधि की अवस्था है, संसार के सभी बड़े बड़े विचार वहीं से निकले हैं, कवियों की कविता वहीं से बहती है और वैज्ञानिकों के प्रकृति सम्बन्धी गुप्त रहस्यों को बतलाने वाले आश्चर्यजनक अविष्कार भी वहीं जन्म लेते हैं। मानसिक अथवा शारीरिक कष्ट की अत्यन्त तीव्र स्थिति में भी कभी कभी मनुष्य इस समाधि-एकाग्रता की पराकाष्ठा को पहुंच जाता है। "बस, इसी समाधि स्थिति में निवास करो और फिर किसी झँझट की आवश्यकता नहीं। इस स्थिति में प्रवेश करते ही सारा संसार तुम्हारा अनुचर हो जाता है। न्यायाधीश को तो केवल अपने

सिंहासन पर बैठना भर है, फिर तो उसके काम-काज की सारी वस्तुएं अपने आप ठीक हो जाएंगी ।" इसी बात को स्वामी राम ने दूसरे स्थल पर यों कहा है –

ज्योंही राजा राजसिंहासन पर विराजमान होता है त्योंही दरबार में व्यवस्था छा जाती है । ठीक इसी प्रकार ज्योंही मनुष्य अपने ब्रह्मत्व, सहज, स्वाभाविक प्रताप को स्वायत्त करता है, त्यों ही सम्पूर्ण समाज में व्यवस्था और जीवन उमड़ने लगता है ।

राजकुमार पाठशाला जाते समय अथवा लड़कों के साथ खेलते समय बराबर यह जानता रहता है कि वह तो राजकुमार है । इसी प्रकार हर एक मनुष्य को एक ईश्वरीय राजकुमार की भांति अपने सारे काम-काज करना चाहिए ।

जब कभी हमारे शरीर का कोई अंग गड़बड़ होता है, तभी वह हमें सालता है । स्वस्थ पुरुष को कभी अपने शरीर का ध्यान नहीं रहता – वह मानो अनजान में ही उससे काम-काज किया करता है । इसी प्रकार आत्मिक स्वास्थ्य प्राप्त होने पर मनुष्य सदा शरीर की चेतना से ऊपर बर्तने लगता है ।

स्वामी जी पूर्णतः निर्गुण अद्वैत के भक्त थे । वे कहते हैं— केवल एक तथ्य, एक आत्मा, एक वस्तु है और वह हो तुम । इस के सिवा और कोई दर्शन शास्त्र उन्हें संतुष्ट न करता था ।

राम कहते हैं—ऐ मनुष्य, तू ईश्वर है; केवल शरीर के केन्द्र में रहना भर छोड़ दे । जब शरीर-चेतना, चर्म-दृष्टि छूट जाती है तब ईश्वर-चेतना, दिव्य दृष्टि अपने आप प्राप्त हो जाती है । संसार और उसका अंधकार तो शरीर-चेतना की छाया है, वैसे तो ईश्वर-चेतना सदा मानवी आत्मा में अपने प्रकाश से चमकती ही रहती है ।

वस्तु-सत्ता में अपने अनिश्चित विश्वास के चश्मे को अपनी

आंखों से उतार कर दूर फेंक दो और सब दिव्य रूप हो जाएगा। दूसरे शब्दों में, जिन्होंने एक बार भी उस दिव्य रूप (ब्रह्म) के दर्शन कर लिए हैं, उनके लिये दुखी या रोगी होना उसी प्रकार कठिन है जिस प्रकार दूसरों के लिये सुखी होना दुस्तर है।

त्याग, समर्पण, बलिदान जीवन का नियम है। इधर शरीर की बलि चढ़ा दो, उधर शुद्ध आत्मा के रूप में उदय हो। दूसरे शब्दों में सदाचार और समाज-सेवा का मुख्य आधार यही है कि यदि दूसरों को सुखी करना है तो स्वयं दुख उठाओ। वे कहते थे - जो चाहते हैं कि उनकी देवता के समान पूजा होने लगे, उन्हें अपनी क्षुद्र आत्मा का बलिदान करना होगा, क्षुद्र आत्मा माया है, शेष, आत्मा ब्रह्म। जिस मनुष्य के रोम-रोम से ईश्वर की ध्वनि निकलती है, उसकी ईश्वर-चेतना ही मनुष्य की वास्तविक आत्मा है। जो ईश्वर में रहता-सहता, और निवास करता है, वह स्वयं ईश्वर है।

एकाग्रता ही जीवन का गुह्यतम रहस्य है। जो मनुष्य, वे कहते थे, पूर्ण एकाग्रचित्त है, सच्चा त्याग उसे अपने आप प्राप्त हो जाता है।

ओम् के पवित्र मंत्र के जाप से हमें क्षुद्र आत्मा के बन्धन से छुटकारा मिल सकता है।

गुरु नानक का भी वचन है - सिमरन - हरिस्मरण के बिना जीवन एक दाह-क्रिया के समान है, सिमरन स्वयं ईश्वर है।

मुझे अब यह ज्ञात हुआ है कि यह जाप केवल तभी ठीक बनता है, जब साधक किसी उन्नत हृदय महात्मा की शरण में, उसकी दीक्षा के अनुसार अभ्यास करता हो। गुरु ही शिष्य को आत्मानुभव के पथ पर अग्रसर कर सकता है। 'इमर्सन' के शब्दों में किसी के संगीतमय कृपाकटाक्ष से ही आध्यात्मिक उन्नति का श्रीगणेश होता है!

स्वामी राम के उपर्युक्त विचारों में महत्ता और सजीवता की दृष्टि से उनका अन्तिम विचार ही प्रथम और अन्तिम कोटि का है। वास्तव में वही उनका एक मात्र विचार, उनका सम्पूर्ण विचार, उनकी जीवनमुक्ति के रहस्य की विशद व्याख्या है। वर्तमान पंजाब के निर्माता गुरु गोविन्द सिंह ने भी लिखा है—जो प्रेम करते हैं, वही जीवित हैं, इतर सब जीवन शून्य मुर्दा जैसे हैं।

इन्हीं मुख्य मौलिक विचारों को समझाने के लिये राम ने जीवन के कार्य-क्षेत्र में से अनेक सुन्दर उपमाओं और अलंकारों को चुन लिया था, जिनके संकेत से बहुत से रहस्य सहज ही में खुल जाते हैं। उन के व्याख्यान ऐसी अनेक छोटी-छोटी कथाओं से भरे हुए हैं—उनमें कुछ तो सर्वथा मौलिक और कुछ दूसरे स्थानों से ली हुई हैं किन्तु उन सबको उन्होंने अपनी विशेष दुष्प्राप्य कला से सजा दिया है।

एक पिंजड़ा था, जिसमें चारों ओर शीशे ही शीशे जड़े हुए थे और पिंजड़े के बीचोंबीच एक पूर्ण विकसित गुलाब का फूल रखा हुआ था। उस पिंजड़े में एक मैना छोड़ दी गयी। उसने शीशों में चारों ओर पुष्प का प्रतिबिम्ब देखा। जिधर भी मैना की दृष्टि जाती थी, उसी ओर फूल दिखायी देता था। जितनी बार वह शीशे के फूल को पकड़ने के लिये झपटी, उतनी बार उसकी चोंच शीशे से टकराई और वह घायल होकर नीचे गिर पड़ी। हताश ज्योंही उसने शीशे से मुंह मोड़कर नीचे की ओर देखा त्योंही पिंजड़े के केन्द्र में रखा हुआ गुलाब का पुष्प मिल गया। ऐ मनुष्य! संसार ही वह पिंजड़ा है, जिस सुख को तू अपने से बाहर ढूँढ़ता है, वह स्वयं तेरे भीतर है।

ज्यों-ज्यों हम अपनी परछाईं को पकड़ने के लिये आगे दौड़ते हैं, त्यों-त्यों परछाईं दूर भागती जाती है। किन्तु जब हम सूर्याभिमुख होकर दौड़ते हैं तो परछाईं हमारा पीछा करने लगती है। यही हमारी

इच्छाओं का स्वभाव है। हम जितनी अधिक इच्छा करते हैं, उनकी पूर्ति उतनी ही अधिक दुस्तर होती जाती है। जब हम ईश्वर की ओर मुँह करके इच्छा करना छोड़ बैठते हैं, त्योंही वे सब की सब पूरी होकर पीछा करने लगती हैं।

किसी फकीर के पास एक ही कम्बल था। उसे किसी ने चुरा लिया। फकीर उठा और पास के थाने में जाकर चोरी गयी चीज़ों की एक लम्बी सूची लिखाने लगा। उसने लिखवाया—उसकी तकिया, उसका गद्दा, उसका छाता, उसका पायजामा, उसका कोट और उसी तरह की बहुत सी चीज़ें चोरी चली गयी हैं। सूची की इतनी लम्बी-चौड़ी रूप-रेखा सुनकर चोर क्रोध के मारे प्रकट हो गया और थानेदार के सामने कम्बल फेंककर बोला—बस, यही एक कम्बल था, इसी सड़े-गले कम्बल के बदले इसने दुनिया भर की चीज़ें लिखा डाली हैं। फकीर ने झट से अपना कम्बल उठा लिया और बाहर जाने को उद्यत हुआ ही था कि थानेदार ने झूठी रिपोर्ट लिखाने के कारण फकीर को ताड़ना देनी चाही। फकीर ने कहा—हां, साहब, मेरी रिपोर्ट झूठी नहीं है। देखिये, यही कम्बल मेरे लिये सब कुछ है, यही मेरी तकिया है, यही गद्दा, यही छाता, यही पायजामा, यही कोट; फिर तरह-तरह से उस कम्बल का प्रयोग करके सिद्ध कर दिखा दिया कि बेशक उसकी बात ठीक थी।

फकीरों और महात्माओं के लिये उनका एक ही ईश्वर उनके लिये सब कुछ होता है।

* * *

जो ईंट दीवाल के योग्य होगी, वह चाहे जहाँ पड़ी हो, एक न एक दिन अवश्य उठा ली जायेगी।

* * *

तीर को, धनुष से छोड़ने के पूर्व भीतर की ओर खींचना पड़ता

है और फिर एकदम छोड़ दिया जाता है। ठीक उसी प्रकार तुम्हारी इच्छाएँ और वासनाएँ तुम्हारे मन से छूटने वाले तीर हैं। जब तक उनसे ऊपर न उठोगे तब तक वे पूरी नहीं हो सकतीं।

* * *

मनुष्य अन्तःकरणों के विस्तार के अनुसार 'धातु मनुष्य', 'वनस्पति या पशु मनुष्य' होते हैं। दिव्य मनुष्य उन वृत्तों के समान हैं, जिनके केन्द्र हर स्थल पर होते हैं और जो विस्तार में एकदम सीधी रेखाएँ बन जाते हैं। धातु मनुष्य वनस्पति मनुष्य की तुलना में मृतक है। वनस्पति मनुष्य पशु मनुष्य की तुलना में मृतक है। इसी प्रकार पशु मनुष्य मानवी और दिव्य मनुष्यों की तुलना में मृतक हैं। कहने का तात्पर्य यह कि नैतिक जीवन एक उत्तरोत्तर विकसित होने वाला मार्ग है, जो अन्त में पूर्ण असंग निःस्वार्थ भाव की सिद्धि में समाप्त होता है और वही सबकी वास्तविक आत्मा है।

* * *

प्रार्थना को राम 'जीते जी मृत्यु' कहा करते थे, जहाँ मनुष्य भावमग्नता की तीव्रता में शरीर के बन्दीगृह से निकलकर शरीर और मन से परे जा पहुंचता है। यदि चोर को भी यह 'जीते जी अमर' होने की कला हाथ लग जावे तो सफलता उसके आगे भी हाथ जोड़े खड़ी रहेगी। प्रार्थना शक्ति है। 'जीते जी मरने' की कला ही उनकी दृष्टि से व्यवहारात्मक धर्म है।

संक्षेप में, राम का संदेश है—आनन्द, शान्ति, समाधि का धर्म। स्वयं अपने अनुभवों के बल पर वे कहा करते थे कि जो कोई उस चेतनान्तक अवस्था को पहुँच भर जाय, उसे आध्यात्मिक और सांसारिक, दोनों प्रकार की सफलता अनायास प्राप्त हो जाती है। इसके साथ ही वे बतलाते हैं कि ज्ञान-समाधि की यह अवस्था बराबर स्थिर रखी जा सकती है। वास्तव में उन्होंने साधारण

मनुष्य को इसी अवस्था की गति-विधि और रहस्य समझाने का बड़ा प्रयत्न किया है। उन्होंने उसे प्राप्त किया था। यथार्थ में उनकी शिक्षा अपने ही आन्तरिक संघर्ष के वर्णन के अतिरिक्त और कुछ नहीं। इसलिये एक प्रकार से हम कह सकते हैं कि जो कुछ उन्होंने लिखा अथवा कहा है वही यथार्थतः उनका आत्म-चरित है।

स्वामी राम तपोधन थे। उनका तप पराकाष्ठा को पहुँचा हुआ था। विचार-स्वतंत्रता भी उनमें कूट कूट कर भरी थी। किसी गुरु या उपदेशक की सहायता से हम क्या और कितना सीख सकते हैं—इस पर उनका विशेष ध्यान न था। यह विचार कभी उनके हृदय में उठा ही नहीं कि जीवात्मा और परमात्मा की आत्मीयता की सिद्धि के लिये कभी किसी दूसरे की मध्यस्थता की आवश्यकता हो सकती है, क्योंकि वे तो दो नहीं, सर्वथा एक हैं।

चौथा परिच्छेद

उनके हृदय को बल देने वाली सुमधुर सुवास

अपने जीवन के मौलिक विचारों की व्याख्या के लिये उन्होंने 'अलिफ' के नाम से उर्दू में एक सामयिक पत्र निकाला, जो उर्दू फारसी, संस्कृत, और अंग्रेजी भाषा के कवियों और पैगम्बरों के सुन्दर-सुन्दर वचनों के अपूर्व संग्रह से भरा रहता था। उन्होंने अमरीका में सैकड़ों व्याख्यान और सम्भाषण दिये, किन्तु वे थे क्या, उनकी इन्हीं मौलिक सचाईयों का भारतीय पुराणों और जीवन की असंख्य गाथाओं और दृष्टान्तों के रूप में सैकड़ों प्रकार से भाषान्तर मात्र। वास्तव में एक प्रकार से उनके अमरीका के अंग्रेजी व्याख्यान इसी "अलिफ़" मासिक पत्र के सिद्धान्तों की सुविस्तृत आलोचना मात्र कहे जा सकते हैं। उनका सम्पूर्ण जीवन इसी ब्रह्मज्ञान की दीपशिखा को दिन-प्रति-दिन प्रज्ज्वलित रखने में व्यय हुआ था। निम्नलिखित उद्धरण जो उनके इसी अलिफ़ नामक उर्दू मासिक पत्र के पन्ने उलटते समय यों ही बिना क्रम के छांटे गये हैं और जिनका सरल हिन्दी में भावार्थ दिया जा रहा है, इस बात को दिखाने के लिये सर्वथा पर्याप्त होंगे कि उनका हृदय कितना अगाध था, उसमें कौन-कौन

से कितने रत्न भरे पड़े थे, उनके विचार कितने सूक्ष्म और वाराक थे और उनका मस्तिष्क कितना प्रौढ़ और युक्ति-संगत था।

निम्नलिखित दाने तो उस गल्ले की बानगी मात्र हैं, जिसे उस आचार्य ने घोर परिश्रम के द्वारा अपने जीवनक्षेत्र में उपजाकर अपने अन्नागार में संग्रहीत किया था।

जिसे मैं अन्धा बन कर चारों दिशाओं में ढूंढता था,
वह मेरी ही आँखों में छिपा बैठा था,
और मुझे पता न था !

—उर्दू से

हीर अपने दूल्हा राँझा की खोज में पंजाब के जंगलों की खाक छान रही थी और लो, वह उसी की छाती में बैठा गीत गा रहा था !

—पंजाबी से

बच्चे ने आँखें खोलीं, धरती और आकाश उसके लिये नये थे। उसका कोमल हाथ उसके वक्षस्थल पर जा पड़ा, उसे पता न था कि यही 'मैं' हूँ।

—टेनीसन

तू ही स्त्री, अपनी प्रियतमा है।
तू ही फूल है और तू ही भ्रमर……

—यजुर्वेद

एन्थोनी ने प्रेम में आनन्द की खोज की, ब्रूटस ने वैभव में, सीज़र ने साम्राज्य में। पहले को मिला अपयश, दूसरे को घृणा और तीसरे को कृतघ्नता। और सब के सब अन्त में नष्ट हो गये।

—एनोन

मैं अपने नाखूनों से छाती फाड़ूंगा, ताकि मार्ग खुले और

यहाँ रहने वाले भाग खड़े हों। तभी तो मेरे प्रियतम के साथ मेरा अकेला रहना हो सकेगा।

—फ़ारसी से

लैला को नश्तर लगाया गया।

उसके प्यारे की नसों से खून बहने लगा।

यही प्रेम है। किन्तु इसके लिये आवश्यकता होती है इश्क में हजार बार डूबने की।

—उर्दू से

यदि मैं उस बिचारे खुदा से अपनी नास्तिकता की बात कहूँ तो वह मारे हर्ष के उछल पड़ेगा और कहेगा—इस्लाम वासी हो चुका।

—उर्दू से

कीमियागर को पारस जैसी आँखें चाहिए,

जिसे देखे, वही सोना हो जाय।

—उर्दू से

एक बार जब चिड़िया चिड़ीमार के जाल से निकल गयी फिर डर किस बात का?

उसके लिये जल और धारा, धरती और आकाश सभी कुछ पवित्र और कल्याणकर बन गये।

—फ़ारसी से

मेरे नेत्रों में और मेरे हृदय में—

ऐ प्यारे! तू केवल तू, ही सदा इतना अधिक छाया रहता है कि जब मैं किसी को दूर से आता देखता हूँ तो ऐसा लगता है कि तू ही मिलने आ रहा है।

—फ़ारसी से

बूंद रोने लगी और बोली—हम लोग समुद्र से कितने भिन्न हैं!

समुद्र उसकी बात पर हँसने लगा और बोला—हम सब पानी हैं !

—फारसी से

मैं हूं मोती—ऐसा विचित्र जैसा किसी ने देखा न हो।
समुद्र भी इतना बड़ा नहीं, जो मुझे अपने भीतर रख सके।
मैं हूँ हरिण—ऐसा विचित्र जैसा किसी ने देखा न हो।
जंगल भी इतना बड़ा नहीं, जो मुझे रख सके।

—फारसी से

तेरा सौंदर्य, ऐ शिकारी, इतना महान् है !

और मेरी आँखों की पुतली इतनी छोटी कि वह उसमें समा नहीं सकता।

तेरे सौंदर्य के वसन्त का माली भी उलाहना देता था कि तू उसकी झोली में अटता नहीं !

—फारसी से

वायु आया और फूल को एक तमाचा जड़ दिया और लो, वही फिर रोने लगा।

—उर्दू से

वह तो है एक छोटी सी दीपशिखा—अंगुष्ठ के बराबर, मनुष्य के अन्तः करण में निवास करनेवाली !

—यजुर्वेद से

वह स्वतंत्र है और स्वच्छन्द भी,
तभी तो बांटता है अपनी शक्ति-सुरा
सबको, सब जातियों को और सब कालों को,
प्रत्येक जाति को, प्रत्येक देश को,
मदिरा बांटने का है वह बड़ा प्रेमी—
तभी तो कोई प्रसाद से खाली रहता नहीं।
बनाने वाला और नित्य नूतन निर्माण करनेवाला !

संसार है उसका खेल, उसके जादू का मण्डल,
और जादू दिखाने की नाट्यशाला !
तू ढूंढता है उसे भूमण्डल में और नक्षत्रखचित आकाश में,
वह छिपा बैठा है शुद्ध पारदर्शिता में।
तू ढूँढता है उसे निर्झरों और अग्निशिखाओं में
वह तेरी शोध का शोध बना हुआ है।
वह है नक्षत्रों की धुरी,
वही है हीरे की चमक,
वह हर एक जीव का हृदय है।
और है हर एक मुखाकृति का भावार्थ !
उसका हृदय आकाश जैसा है—
ऊँचा और गम्भीर—सब को अपने भीतर समेटने वाला।

—इमरसन

काश, देख ले कोई चिड़िया मुझे बाग में-
तो भूल जाय अपने गुलाब को।
और भूल जाय ब्राह्मण अपने भगवान् को !
हो जायँ जो उसे दर्शन मेरे।
मैं छिपा बैठा हूँ अपने शब्द में जैसे सुवास गुलाब में—
जो देखना चाहे देखे मुझे मेरे काव्य में !

फारसी—जेबुननिशा

जो चीज़ कभी अपनी हो सकती नहीं,
वह कभी सुख दे सकती नहीं !

—वर्डसवर्थ

कीमियागर ने खुदी को नहीं मारा,
तो और फिर क्या मारा !
पारा·········वत्

खुदी को मारने पर ही कीमियागरी सिद्ध होती है।

—उर्दू से

तू है चाँद बादलों में छिपा हुआ,
इस शरीर के बादल से निकल, बाहर आ—
तू तो चाँद है चमकीला और सुन्दर!

फारसी से

झूठ मिट जाता है, सत्य चलता रहता है।

—गुरु नानक

स्वतन्त्रते!

चन्द्रमा से भी तेज़ शिकार करनेवाली! दुनिया के भेड़ियों से भी विकराल रूप, उस तरकश को धारण करनेवाली जिसके तीर चुपचाप तूफानी दौड़ दौड़नेवाली भूल का हृदय बेध देते हैं, कैसे? जैसे विद्युत बादलों का हृदय छेदकर उन्हें पूर्वीय दिवस के शान्त दिगन्त में छिन्न-भिन्न कर देता है।

तेरे भाटों और तेरे ऋषियों की गम्भीर वाणी भूतकालीन गुफाओं से निकल कर सोती हुई दुनिया को बुलाती, जगाती और हिलाती है। तेरे सामने धर्म अपनी आंखों पर परदा डाल लेता है, अत्याचार सिकुड़कर स्तम्भित हो जाता है और हर्ष, प्रेम और आश्चर्य का एक तीव्र नाद गगन में भर जाता है, जहां पहुंच की भी पहुंच नहीं होती। देश और काल की घूँघट सदा के लिये उतर जाता है।

—शैली

प्यारे ने मुझे अपनी प्यार भरी छाती से लगाया,
मैंने अपनी छाती उघाड़ दी और उसे अपने बाहुपाश में कस लिया,
ओह, वह तो मेरी छाती में समाया हुआ था!

—पंजाबी से

वह प्रेमी है,
वह प्रेम का आनन्द है,
वह प्रियतम है,
और सौंदर्य का सुन्दर परिधान—
वही है आमोद-प्रमोद का परम आश्चर्य।
वही मछली,
वही मछुवा,
वही जाल और वही जलाशय,
वही जीवन,
और वही मृत्यु—सब की !

—गुरु ग्रन्थ से

प्रेम-सुरा का प्याला पीने के लिये ;
पहले जीवन को भेंट चढ़ानी होगा।
लोभी अपने को देना तो चाहता नहीं,
और बातें करता है प्रेम की।

—हिन्दी से

यदि कभी प्यारे के केशों को छूने की इच्छा हो—
तो पहले अपने को लकड़ी की भांति उसके आरे के नीचे रख दे,
जिसे चीर-चीरकर वह तुझको कंघी बना दे !
जब तक स्वेच्छा से सुरमे की भांति पीसे न जाओगे—
तब तक उसकी आंखों का स्पर्श कैसे हो सकेगा !
जब तक सुरा पिलानेवाला तुम्हारी मिट्टी के प्याले न बनायेगा,
तब तक तुम उसके ओठों तक कैसे पहुँचोगे !
जब तक मोती की भांति धागे में पिरोये न जाओगे,
जब तक उसके नयनबाणों से हृदय छिद न जायगा,
तब तक उसके कान में शोभा न पाओगे।

यदि खुशी खुशी मेंहदी की पत्तियों की भांति पिसने के लिए तैयार नहीं—तो उसकी हथेलियों को रचने की तुम्हारी आशा झूठी है—स्वप्न मात्र।

—उर्दू से

जो अपने प्राणों की रक्षा करेगा, वह उनसे हाथ धो बैठेगा, जो प्राणों का उत्सर्ग करेगा, वह अमर हो जायगा।

—नई इंजील से

ऐ भोले भाले ब्राह्मण! मेरे मिलन की तैयारी कर! आ, झट-पट मेरा विवाह रचा दे। आ, मेरे हृदय के आंगन में बैठ और मेरे विवाह की तिथि और घड़ी निश्चित कर दे। ओहो, उसके साथ मेरा सम्मिलन होनेवाला है।

ऐ ब्राह्मण! मैं तो उसकी मुंह-बोली हूँ,
मेरा और उसका विवाह रचा दे—
मैं तो उसकी हूँ।
मेरा पाणिग्रहण करा दे।
आज मेरे विवाह का उत्सव है!

—हिन्दी से

जो पूर्णतः निष्पाप नहीं हुआ, जो आत्मस्थित नहीं है, जो आत्मसन्तुष्ट नहीं, जो शान्त नहीं, जो परमेश्वर का अपना आप नहीं, वह भला उस आनन्द को क्या जाने! और उसके मिलने का कोई दूसरा मार्ग भी नहीं।

—सर एडविन अरनोल्ड के गीता-अनुवाद से

(प्रेम का मारा) मैं दवा के लिए वैद्य के पास पहुंचा,
मैंने उसे अपना छिपा हुआ दर्द कह सुनाया।
उसने कहा—
मुँह बन्द कर और अपने प्यारे के नाम के सिवा कुछ मत बोल।

मैंने पूछा—पथ्य बताओ।
उसने उत्तर दिया—अपने आप को खाया कर।
मैंने पूछा—कुपथ्य बताइये।
उत्तर मिला—दोनों लोक, इहलोक और परलोक!

—उर्दू से

जब तक मनुष्य चिन्ताओं और आमोद-प्रमोद की भावनाओं से उद्विग्न रहता है, इच्छाओं और कामनाओं का भूत उसे चैन नहीं लेने देता, तब तक बुद्धि का चमत्कार प्रकट नहीं होता, वह सांकल से जकड़ी हुई हिल-डुल नहीं सकती। चिन्ताओं और कामनाओं के शान्त होने पर ही उस स्वतंत्र वायुमण्डल का जन्म होता है, जिसमें बुद्धि को खिलने का अवसर मिलता है। पंचभौतिक बन्धन कट जाते हैं और शुद्ध आत्मा, शुद्ध साक्षी आत्मा अपने प्रकाश में चमकने लगती है।

—शोपेनहोअर से

समुद्र जैसे नदियों को अपने भीतर समेट लेता है, वैसे ही जब मनुष्य अपनी इच्छाओं को अपने भीतर समेटता है, तभी वह शान्त हो जाता है। उसके सिवा और सब रहते हैं अशान्त।

—उपनिषद् से

तुम से मिलने की आशा में, तुम्हारा स्वागत करने के लिये,
क्या कहीं सीढ़ियों पर तुम्हारी पद-ध्वनि सुनकर,
किसी हृदय की गति तीव्र से तीव्रतर हो उठती है?
क्या कोई मुखमण्डल खिल उठता है?
क्या कोई तुम्हारे मुख से निकले शब्दों को सुनकर—
नूतन प्रसन्नता का अनुभव करता है?
ऐसे जीवन से क्या लाभ—
जिससे मिलकर, अनायास मिलकर—
किसी को अच्छा न लगे,

यदि किसी को तुम्हारे सहवास की ज्योति का पता ही न चले।

परमात्मा कैसा है ? वही सूक्ष्म तत्वों में जान डालता है !
वही अग्नि में जलता है !
वही सूर्य और चन्द्र में चमकता है,
तारों और नक्षत्रों को प्रकाश देता है।
जो हवा के साथ बहता है, लहरों के साथ खेलता है,
वही लोक-लोकान्तरों को भरने वाला प्रजापति है।

—वेद से

मैंने प्यारी से कहा—मैं तुमसे मिलना चाहता हूँ।
उत्तर मिला—यदि ऐसी इच्छा है, तो अपने आपसे मिल।
मैंने उससे कहा—मैं तेरे पास बैठना चाहता हूँ;
उत्तर मिला—यदि ऐसी इच्छा है, तो अपने पास बैठ।
मैंने उससे पूछा—मैं हूं तू और तू ही सब कुछ है।
वह मुस्करायी और बोली—तेरे ज्ञान का कल्याण हो,
यही सत्य है !

—फारसी से

साधु के विषय में, अपने हृदय के निकटतम विषय के संबन्ध में उन्होंने अपने उर्दू के अन्तिम निबन्ध "तरक्की के तमस्सुक" में इस प्रकार लिखा है :—

क्या भगवे कपड़े पहनने से कोई साधु बन जाता है ? हाँ, कहीं-कहीं भगवा वस्त्रों के नीचे प्रेम में रंगा दिल भी पाया जाता है। कभी-कभी इनके भीतर राम का दीवाना, मस्ताना भी झलक मार जाता है। किन्तु हर एक मनुष्य यह जानता है कि उसके सौंदर्य से जगमग चेतना साधु के वस्त्रों में सीमाबद्ध नहीं। सच्ची स्वतंत्रता तो अच्छी चाल-ढाल, रंग-ढंग, कपड़ों के फैशन और रंगों की दासता पर अवलम्बित नहीं रहती। उस ऊंचाई पर जहां चढ़ने की कल्पना से पैर कंपने लगते हैं, सर चकराने लगता है, वह ज्योति जगमगाती है, जिसके प्रकाश में योगी आगे

रहता है। यह सूर्य हिमालय के हिम-प्रदेश में चमकता है और हमारे शहरों की सड़कों पर भी। ज्योतिर्मय चेतना का महापुरुष बन्दीखाने में भी मिल सकता है और शरीर के घोरतम कारागृह में भी, जहां स्वयं अपने हाथों से बन्द होकर बैठता है। पर लो, कैदखाने की हथकड़ियां और बेड़ियां जहां की तहां पड़ी रह जाती हैं और वह उन्मुक्त होकर अनन्त में विचरण करता है। अन्धकारमय काली कोठरियों में ईश्वर का प्यारा ईश्वर के हाथ में हाथ डालकर बन्दी रहने पर भी सदा मुक्त रहता है। छहों लोकों में बराबर उसका संचरण होता है। भीड़-भाड़ के भव्वड़ में—अपनी पुस्तकों पर आंखें गड़ाने वाला विद्यार्थी सहसा एक ऐसे शब्द पर लक्ष करता है, जो लिखा नहीं जा सकता। बस, वह इधर सीमा के बन्धन से मुक्त होता है और उधर उसकी पुस्तक उसके कृपाकटाक्ष के लिये तपस्या करती है।"

सैर को निकले। भाग्य से कोई परिचित साथ न था। चन्द्रिका छिटक रही थी, सांध्य वायु सरसराने लगी। सड़क पर टहलते हुए लो—यह कौन सहसा हमारे साथ हो लिया—वही एक अद्वितीय सबसे निराला, सब का प्यारा। उधर संध्या की लाली आकाश में छाई और इधर निराली मस्ती रोम-रोम में समाई।

रेलगाड़ी में बैठे थे। पहियों की खटखटाहट का खटराग ज़ोर-शोर से चल रहा था। डिब्बे में और कोई था नहीं! खिड़की का परदा जो गिराया तो झट से हृदय-मण्डल में वह दूल्हों का दूल्हा उतर आया। यात्री ने एक स्थान विशेष का टिकिट लिया था, पर रेल में बैठे बैठे मन और प्राण, आत्मा और अनात्मा न जाने कहां का टिकिट ले गये। आनन्दमय त्याग ने—आध्यात्मिक त्याग ने, समाधि की मस्ती ने मनुष्य को चारों ओर से बेखबर कर दिया। यही सच्ची साधुता की कुञ्जी है।

भारतवर्ष के साधु इस देश की एक ऐसी अद्भुत विचित्रता है जो अन्यत्र कहीं नहीं पायी जाती। जैसे बंधे हुए पानी पर हरी काई छा जाती

है; उसी प्रकार पूरे बावन लाख साधु अभी तक भारतवर्ष की छाती पर इकट्ठा हो चुके हैं। निस्संदेह उनमें से कुछ सुन्दरतम कमल पुष्प हैं, झील की शोभा बढ़ाने वाले। किन्तु अधिकांश—एक विशाल समूह तो अस्वास्थ्यकर काई रूप हैं। पानी तो बहने दीजिये, जन-समूह में गतिशील जीवन का संचार होने दीजिये; काई अपने-आप बह कर विलीन हो जायगी। ये गतिहीन साधु तो भारतीय इतिहास के अन्धकारमय अतीत के स्वाभाविक परिणाम हैं। किन्तु आजकल सर्वत्र सुधार की एक लहर दौड़ रही है, गृहस्थों की भावनाओं और रुचियों में एक उन्नतिशील परिवर्तन दृष्टिगोचर हो रहा है; फिर उससे साधु कैसे अछूते बच सकते हैं। ऐसे साधुओं का जन्म हो रहा है, जो जोंक की भांति राष्ट्रीयता के वृक्ष का रस चूसने के स्थान में और नहीं तो कम से कम अपने शरीर और मन को उस वृक्ष का उपयोगी खाद बनाने के लिये आतुर हो रहे हैं।

सच्ची साधुता का रहस्य बताने के बाद और अपने देश को ५२,००,००० भगवा वस्त्रधारी साधुओं के भरण-पोषण की गौरव-हीनता समझाने के बाद वे कहते हैं—

यदि कोई सच्चे साधु, फकीर महात्मा के विरुद्ध मुँह खोलने का साहस करे, तो निस्संदेह उसकी वाणी कुंठित हो जायगी।

जो हाथ किसी साधु को चोट पहुंचायगा, उसके टुकड़े टुकड़े हो जायंगे।

जो साधु के विरुद्ध सोचेगा, वह पागल हुए बिना नहीं रह सकता।

सच्चे साधु के विरुद्ध एक शब्द भी मुँह से निकालना राम के लिये असंभव है। सच्चा साधु और उसके विरुद्ध राम के मस्तिष्क में किसी विचार का पनपना—हरि! हरि! यह तो राम से स्वप्न में भी संभव नहीं।

* * *

शिवजी समाधिस्थ बैठे हैं, संसार की धन और सम्पत्ति, विजय और श्री, नाम और रूप के श्मशान में शिवजी के निरन्तर साहचर्य में रहने वाले भूत और पिशाच नृत्य कर रहे हैं। शिवजी का दरबार जगमग हो रहा है (शिवजी=साहब, दिल=परमात्मा)।

ओ दण्ड की भीति से डरने वाले अभियुक्त ! यदि तू उस समय भी जब न्यायाधीश अपने आसन से तुझे दण्डित करने वाला है, केवल एक क्षण के लिये उस परमानन्द में डूब जाय, तो न्यायाधीश अपना निर्णय भूले बिना नहीं रह सकता, फिर लिखेगा वही जो परमात्मा के साथ तेरी इस नूतन स्थिति के अनुकूल होगा।

मेरे प्यारे ! एक मात्र अपराध है, ईश्वर को भूल जाना, अपनी सच्ची आत्मा, प्राणों के प्राण, परमात्मा का विस्मरण करना !

कथा में बताया गया है कि भृगु, ब्राह्मण भृगु ने विष्णु के बायें पार्श्व में लात में मारी, किसको ? धन और ऐश्वर्य की देवी लक्ष्मी को ! विष्णु उठे और अपने अश्रु-वारि से भृगु के चरण-कमल धोने लगे ! जो अहंकार त्याग देता है, उसे भगवान् मिलते हैं।

जो अपने क्षुद्र अहम् के पीछे पागल रहता है, वह चाहे राजा ही क्यों न हो—भिखारी की भांति दर-दर ठोकरें खाता फिरता है। यही नियति है। इस नियम का व्यवहार करना केवल भगवा वस्त्र धारी साधुओं का एक छत्र अधिकार नहीं है। वह तो प्रकाश है, सब के लिये है। मुसलमान, ईसाई, यहूदी, सिख, पारसी, स्त्री-पुरुष, बालक-वृद्ध, ऊंच-नीच—सब को अपने सौंदर्य के लिये सत्य के इस प्रकाश की आवश्यकता है। इस सूर्य-प्रभा के बिना शीत से ठिठुरना और कांपना दूर नहीं हो सकता।

सब के लिये शिक्षित होना परमावश्यक है किन्तु सबका प्रोफेसर-आचार्य बनना आवश्यक नहीं। सच्ची आत्मा को जानना, परमात्मा को पहचानना, सुखी बनना सबके लिये परमावश्यक है किन्तु रात और

दिन इस आत्मानंद में डूबे रहना कुछ थोड़े से साधुओं, सच्चे फकीरों का अधिकार है।

जिसके हृदय में चिरन्तन वसन्त की बहार छिटक रही है, उसको इन बाट दिखाने वाली ऋतुओं के परिवर्तन से क्या! भागता है वह अपने आप से, और खड़ा होता है उस सूर्य में, जहां देखता है सम्यक् दृष्टि से सारी सृष्टि, सारे ब्रह्माण्ड को। सब को प्रेम करता है और सब को आशीर्वाद देता है—यही है पुण्य की पराकाष्ठा!

—कोलरिज

"अलिफ" के अन्तिम अंक में हम देखते हैं कि उन्होंने उर्दू में मुक्त छंद का प्रवेश करने की चेष्टा की थी। उन्होंने अपनी कविताओं के शीर्षक भी 'वाल्ट ह्विटमैन' के ढंग पर रखे थे। उदाहरण के लिये उन्होंने एक लम्बी कविता लिखी थी—'*तुम को*'। उसमें वे कहते हैं—

तुम्हीं मेरे कृष्ण हो, तुम्हीं हो मेरे राम,
जब ईश्वर को देखने की इच्छा होती है,
तब मैं देखता हूँ तुम्हें।
मैं तुम्हें देखता हूं, तुम मेरे भगवान् हो।
तू और मैं के ये परदे अब तो हटा दो,
नाम-रूप के इन रंगीन परदों को फेंक दो परे,
आशा और निराशाओं से क्या प्रयोजन ?
जब ये परदे उतार-उतार कर तुझे नंगा करता हूं,
तब अपने ईश्वर के दर्शन होते हैं,
यदि ईश्वर की इच्छा होती है, तो मैं देखता हूं तुझे।

दूसरी कविता है *बुढ़ापा*—

वृद्धावस्था का जामा पहन मैं मनुष्यों की भीड़ में निर्द्वन्द्व और निडर हो घूमता हूं।

यह बुढ़ापा मेरी टोपी है, जिसे पहन मैं अदृश्य हो जाता हूँ।
इस वेष में कोई मुझे पहचानता नहीं।

उनकी एक और कविता है, जिसका शीर्षक है—*अंधे की आंखें*
जिस चोट ने मुझे मार डाला होता, उसी ने मुझे चंगा कर दिया,
मैं था बन्दी, गुलाम; पर हो गया स्वतंत्र, मुक्त, स्वच्छन्द।

साधु ईश्वर की खोज में इधर-उधर दौड़ता है और तरह तरह के उपाय करता है किन्तु मुझे तो वह मिल गया अपने घर आराम से बैठे बिठाये ही।

उन्होंने एक बड़ी सुन्दर कविता लिखी है—

चन्द्रमा का भ्रष्टाचरण

यों ही निरुद्देश सैर-सपाटे के बीच,
एक संध्या को, झील के किनारे,
मुझे एक जुलाहे की झोपड़ी दिखाई पड़ी।
और उसके पास खड़ी थी एक नवयुवती कन्या,
उसी जुलाहे की बेटी!
वायु के मन्द-मन्द झोंके आ रहे थे,
चांदी जैसी चांदनी चारों ओर छिटकी थी,
मैंने देखा—कन्या पत्थर की मूर्ति जैसे अचल खड़ी हुई,
उसका मुख खुला हुआ,
और आंखों से चन्द्रमा के घूंट के घूंट पी रही।
चन्द्रमा उसके नेत्र-वातायनों से जो कूदा तो,
प्रवेश कर गया उसके शुद्ध पवित्र यौवन-मन्दिर में—
और वहीं उसके हृदय के स्फटिक सरोवर में हो गया विलीन!
ऐ चन्द्र, ठहर, ठहर, चोर क्यों बनता है?
दूसरों के घर में बिना आज्ञा प्रवेश करना तुझे शोभा देगा क्या?
ऐसी चोरी! ऐ चोर, तेरा ऐसा साहस!

जलाशय में केवल तेरी छाया का निवास रहता है किन्तु कन्या के हृदय को तूने अपना घर ही बना लिया।

अरे, यह कौन सा रहस्य है जिसे वैज्ञानिक नहीं जान पाते? जो भेद उसकी दूरबीन से नहीं खुल सकता, जिसका हल गणितज्ञ के पास भी नहीं, जिस गुत्थी को ज्योतिर्विद भी नहीं सुलझा पाते, लो, उसी रहस्य को तू एक गरीब जुलाहे की झोपड़ी में खोले बैठा है।

ऐ चन्द्र, इस तरह तेरा विना उद्देश इधर-उधर घूमना तो ठीक नहीं।

तू उस छोटे से हृदय को अपना एकान्त क्रीड़ा-स्थल क्यों बनाता है?

गरीब और निराश्रयों की झोपड़ी में इस तरह डेरा डालना क्या शोभा देता है तुझे!

यहां तक उनके जिन प्रिय वचनों और भावनाओं का उल्लेख किया गया है, उससे स्पष्ट हो जाता है कि यद्यपि आत्मा, ब्रह्म और ईश्वर—इन तीन शब्दों को वे एक ही अर्थ और भाव में प्रयुक्त करते थे—यही उनका मुख्य विषय था और यद्यपि उसका रूप-रंग हिन्दू वेदान्त विचारधारा के अनुसार ही निर्दिष्ट हुआ था फिर भी उन्होंने अपनी साधना के स्रोतों को स्वयं पंजाब के जीते-जागते सुमधुर जीवन-रस से सींचा था। वे पंजाब के ईश्वरानुभूति-सम्पन्न महात्माओं, बुल्लाशाह आदि और उन जैसे दूसरे कवियों के अत्यन्त भावात्मक साहित्य में डूबे रहते थे। शम्स तबरेज़ और मौलाना जलालुद्दीन रूमी जैसे फारसी मनीषियों की विद्युतमयी स्फूर्ति से वे प्रेरणा प्राप्त किया करते थे और इसके साथ ही, उससे भी अधिक अपने मस्तिष्क को पाश्चात्य जगत् के 'शैली' 'इमरसन' 'गेटे' और 'थोरो' आदि कवियों और विद्वानों की जीवनदायिनी और उल्लासमयी विचार-धारा से परिपुष्ट किया था। उनका मस्तिष्क मुख्यतः उस वेदान्त दर्शन की शैली में संवर्द्धित और विकसित हुआ था, जो पाश्चात्य आलोचना

के प्रकाश में हमारे सामने प्रकट हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने मुख्यतः 'कांट' के दर्शन को सामने रखकर वेदान्त का अध्ययन किया था। वे दोनों के आचार्य थे। उन्होंने 'हीगल' और 'स्पीनोज़ा' को भी पढ़ा था। अपने वेदान्त को व्यावहारिक दैनिक साधारण जीवन के क्षेत्र में उतारने की वैज्ञानिक प्रवृत्ति और कला का मुख्य आधार उन्हें 'डारविन' और 'हेकल' के विकासवादी साहित्य के मनन से प्राप्त हुआ था। एक हरे-भरे वृक्ष की भांति एक प्रकार से यद्यपि उन्होंने सारे संसार के साहित्य से जीवन-रस खींचा था, तथापि वे अन्ततः भारतीय दार्शनिक जगद्गुरु शंकराचार्य के मायावाद के ही परम भक्त थे। उनके द्वारा व्यक्त किये हुए वचनों में हमें जो ऊपरी विरोधाभास दिखाई देता है, वह केवल ऊपरी है, उससे उनकी आध्यात्मिक प्रतिभा और भी चमत्कृत हो उठती है। सच पूछो तो ऐसा विरोधाभास तो हमारे जीवन के मूल में ही विद्यमान है।

जीवन स्वयं अपनी अनन्त आत्मविरोधी धाराओं में होकर परम सत्य और उसके आत्मसाक्षात्कार की व्याख्या करता है। हमारी परिभाषायें—सबकी सब अपूर्ण होती हैं, क्योंकि हम एक स्थल-विशेष पर खड़े होकर, जो संपूर्ण जीवन की सम्पूर्णता के संपर्क में तो आ नहीं सकता, छूता है उसे केवल एक अत्यन्त स्वल्प किसी अज्ञात बिन्दु पर—जीवन को केवल बुद्धि के सहारे समझना और सिद्ध करना चाहते हैं। अतः राम जैसे महान् कवियों के वचनों में जो विरोधाभास-सा दिखाई देता है, वह दर्शनशास्त्र के तर्क की कसौटी पर नहीं कसा जा सकता। वास्तव में कोई भी यथार्थ दर्शनशास्त्र इन परस्पर विपरीत विरोधाभासों को सामंजस्य में लाने का दावा नहीं कर सकता। ऐसे महात्माओं की आत्म-विरोधी विचारधारायें स्वयं इस बात का प्रमाण हैं कि उनका

आत्मसाक्षात्कार हम लोगों से कहीं ऊंचे स्तर पर चलता है। मिस ई० अण्डरहिल के शब्दों में "यही तो उनके आध्यात्मिक अनुभव की गम्भीरता और मनोहर सामंजस्य का प्रबल प्रमाण है।"

पांचवाँ परिच्छेद

उन्होंने क्या कहा ?

उनकी रचनाओं में से संकलित निम्नलिखित रत्नकण, जिनमें से कुछ उनके अंग्रेजी लेखों से लिये गये हैं और कुछ उनकी उर्दू कृतियों में से भावार्थ के रूप में उद्धृत किये गये हैं और कुछ उनके अमरीकन भाषणों से चुने गये हैं, हमें उनके मस्तिष्क के हरे-भरे उद्यान की सुमधुर सुगंधि से पूर्णरूपेण परिचित कराने के लिये पर्याप्त हैं। ये सचमुच उनकी दिव्य ज्ञानमयी फुलवारी के सर्वोत्तम विचार-कुसुम सिद्ध हो सकते हैं—

हृदयस्थ ईश्वर को पाने का पथ क्या है ? अपनी ही आत्मा में ईश्वर के दर्शन का एक ही उपाय है समस्त इच्छाओं का परित्याग। अपनी सारी इच्छाओं को तिलांजलि दो और ओम्-ओम् की ध्वनि में निवास करो।

*   *   *   *

आसक्तियों का त्याग ही पवित्रता है मूल्य चुकाये बिना तुम ईश्वर को प्राप्त नहीं कर सकते, तुम्हें कदापि अपना जन्मसिद्ध अधिकार नहीं मिल सकता। "जिनका हृदय शुद्ध है, वे सचमुच धन्य हैं,

उन्हें ईश्वर के दर्शन होंगे।" हृदय की इस पवित्रता का अर्थ क्या है? संसार के सभी पदार्थों के मोह से पूर्णतया मुक्त हो जाना। पूर्ण त्याग—उससे रंचमात्र भी कम नहीं। इस शुद्धता को धारण करो, तुम्हें ईश्वर के दर्शन होंगे।

अपनी स्त्री से जितना प्रेम करते हो, यदि उससे आधा ही प्रेम ईश्वर से करते तो तुम्हें इसी क्षण उस परम सत्य के दर्शन हो जाते।

तुम्हें बन्धन में कौन डाले हुए है? किसने तुम्हें गुलाम बना रखा है? तुम्हारी ही इच्छाओं ने—इसमें किसी और का हाथ नहीं!

ज्योंही, जिस क्षण तुम अपनी इन इच्छाओं, वासनाओं, मोह, और रागद्वेष को परे फेंक, यहां तक कि हृदय से प्रकाश और ज्ञान की इच्छा को भी उतार कर शांति से क्षण भर के लिये ओम् का जाप करो; बस; उसी क्षण तुम सारे बंधनों से मुक्त हो जाओगे। तुम्हारे हृदय में अचल और अटल शान्ति विराजेगी, न तुम्हें अपने व्यक्तित्व का, न अपने शरीर का और न संसार के किसी पदार्थ का ध्यान रहेगा...... बस, शांति से बैठो, ओम् का जाप करो और सोचो—तुम्हारे हृदय का आधार कौन है?

उसी का अनुभव करो और अपने ही ईश्वर-भाव में आनन्द मनाओ, अपने ही अन्तर के आनन्द का स्वाद लो, अपनी ही आत्मा के आनन्द में मग्न रहो। सब प्रकार की असाधारण इच्छाओं और अनावश्यक वासनाओं को परे फेंक दो।

सारे धर्मों का तात्पर्य केवल इतना है कि अपने आप को खोलने की चेष्टा करो, और स्वयं अपने स्वरूप की व्याख्या करो।

सभी धर्मों के अनुयायी, जब परमात्मा के सम्पर्क और सहवास में रहते हैं, तब कभी-कभी परमात्म-भाव में लीन होकर अपने आपको बिल्कुल भूल जाते हैं। ऐसे क्षणों में उनके हृदय से माया का परदा चाहे मोटा हो या पतला, क्षण भर के लिये उनकी आंखों से हट जाता है।

संसार के धर्म—'मैं उसका हूँ' 'मैं तेरा हूँ', और 'मैं ही तू और तू ही मैं हूँ'—इन तीन श्रेणियों में विभक्त रहते हैं। परमात्मा के साथ ऐसी एकता का नाम ही धर्म है। मेरा शरीर उसका शरीर हो जाय और उसकी आत्मा मेरी आत्मा हो जाय।

※ ※ ※

अपने आपको कृष्ण की वंशी बना डालो एक बात समझ लो और तुम्हें किसी चीज़ की आवश्यकता नहीं। तुम इच्छाओं और आवश्यकताओं से ऊपर हो। इसका अनुभव करो और सम्पूर्ण विश्व तुम्हारा है।

ओम् जपो, ओम् की ध्वनि में मग्न हो जाओ।

कृष्ण क्यों वंशी को प्यार करते और चूमते थे, उसे क्यों उन्होंने इतना महत्व दिया था ?

वंशी का सीधा सादा उत्तर था—मुझमें एक विशेषता है। मैंने अपने अन्तर से सारा द्रव्य निकाल कर अपने को शून्य बना लिया है।

बस, अपनी स्वार्थपूर्ण भावनाओं, स्वार्थपूर्ण सम्बन्धों—मेरे-तेरे के विचारों को तिलांजलि दे दो, उनसे ऊपर उठो, ईश्वर से प्रेम करो, उससे उसी भांति प्रेम करो, उससे भी अधिक प्रेम करो जैसा दुनियां के लोग अपनी प्रियतमा से प्रेम करते हैं। अपनी सच्ची आत्मा के साक्षात्-कार के लिये तड़पो, व्याकुल हो उठो।

हृदय की ऐसी अवस्था में, एक मात्र आत्मा की शांति से पूर्ण हृदय में महामंत्र ओम् का जाप करो—पवित्रतम शब्द ओम् का उच्चारण करो।

※ ※ ※

कोई गलती करो, कोई शैतानी करो, अपने मन में किसी भी बुरे विचार को स्थान दो, कोई भी बुरा काम करो, इन पापों को एक ऐसे स्थान में करो, जहां तुम्हें पूरा पूरा निश्चय हो कि कोई तुम्हें पकड़ नहीं

सकता, कोई तुम्हारा पता नहीं पा सकता......तुम्हें अवश्य दुःख और यातना भोगना पड़ेगी, अवश्यमेव दण्ड मिलेगा।

पाप का परिणाम है मृत्यु एकान्त से एकान्त गुफा में कोई पाप करो और दूसरे ही क्षण तुम यह देखकर चकित होगे कि तुम्हारे ही पैरों तले की घास खड़ी होकर तुम्हारे विरुद्ध साक्षी देती है। तुम्हारे देखते ही देखते, आस-पास की दीवालें और पेड़ तुम्हारे विरुद्ध वाचाल हो उठेंगे। धर्म का विधान है कि तुम्हें पवित्र रहना होगा। किसी अपवित्रता को मन में पालोगे तो उसका बुरा परिणाम भोगने से बच नहीं सकते, त्रिकाल में भी नहीं बच सकते।

स्वर्ग का साम्राज्य तुम्हारे भीतर है।

* * *

ओम् ओम् उनका मंत्र यूरोप और अमरीका वासी तब तक किसी ऐसी बात को स्वीकार नहीं करना चाहते जब तक उनकी बुद्धि उसे ग्रहण नहीं कर लेती। हम चाहे संसार के तर्क-शास्त्र के द्वारा इस मंत्र के गुणों को सिद्ध न कर सकें, फिर भी हम उसके उस अमोघ प्रभाव को अस्वीकार नहीं कर सकते, जो इसके यथोचित गायन के द्वारा मनुष्य के चरित्र पर पड़ता है।

हिन्दुओं के धर्म ग्रंथों का सम्पूर्ण ज्ञान उनके रचयिताओं ने उस समय प्राप्त किया था, जब वे इस मंत्र के मधुर गुञ्जन के द्वारा आनन्द-सागर में डूबे हुए थे।

वेदान्तमात्र, नहीं नहीं, हिंदुओं के सभी दर्शन शास्त्र केवल इसी महामंत्र ओ३म् की व्याख्या मात्र हैं।

ओम् में जादू है, प्रभाव है, एक ऐसा गुण है, जो उसका जाप करने वाले साधक का मन तुरन्त एकाग्र और वश में कर देता है। उसके गायन से हमारी भावनायें, हमारे विचार एक सामंजस्य-पूर्ण स्थिति में पहुँच जाते हैं, उसके द्वारा आत्मा को शांति और विश्रान्ति

मिलती है, हृदय उस दशा में पहुँच जाता है, जहाँ ईश्वर के साथ तदात्मीयता होती है....विज्ञान भले ही इस रहस्य का पता न लगा सके किन्तु यह एक तथ्य है जो प्रयोग के द्वारा सिद्ध हो सकता है। वह विज्ञान नरक में पड़ेगा जो इस महामंत्र ओम् के प्रभाव की सचाई का विरोध करता है।

स्वामी राम

'मैं' के लोप होने पर दिव्य प्रेरणा के दर्शन होते हैं जब मन से द्वैत उड़ जाता है, जब दृश्य-चेतना शान्त होती है, तब दिव्य प्रेरणा की घड़ी आ पहुंचती है। जब टेनीशन लार्ड टेनीशन की चेतना और भावना से ऊपर उठ जाता है, तब उस समय वह बन जाता है कवि टेनीशन। जब बार्कले से अध्यक्ष बनने का भाव, बिशप की पदवी पर बैठने का भाव दूर होता था, तभी वह दार्शनिक बार्कले बनता था। जब हमसे कोई महत्वपूर्ण और अद्भुत काम बन पड़ता है तो उसके कर्त्ता बनने का यश लेना मूर्खता है क्योंकि जिस समय कार्य का सम्पादन होता है उस समय इस यश-लोलुप अहंभाव का कहीं पता नहीं रहता। उसकी उपस्थिति से तो सदैव कार्य का सौंदर्य नष्ट होता है।

वास्तविक आत्मा पूर्ण ज्ञान, पूर्ण शक्ति है। वही एकमात्र अटल तथ्य है। उसके सामने दुनियां की इस दिखावटी सचाई का कहीं पता नहीं चलता।

ओ३म् इसी सत् का नाम है।

* * *

ओम् की महिमा ओ३म् का भावार्थ ग्रहण करो और उसे भावना की भाषा में गाओ, उसे अपनी क्रियाओं में से उतारो, अपने शरीर के रोम-रोम से उसे गाओ। वह तुम्हारी धमनियों में दौड़ने लगे। तुम्हारे शरीर के प्रत्येक अंग से, तुम्हारे रक्त के हर एक बिन्दु से सत्य की यह

झंकार उठे कि तुम प्रकाशों के प्रकाश, सूर्यों के सूर्य, ब्रह्माण्ड के शासक, स्वामियों के स्वामी, स्वयं सत्यस्वरूप हो।

ओ३म् के अ उ म् को व्यक्त करता है—तत्त्वमसि। ओ३म् आत्मा के सत्स्वरूप को व्यक्त करता है।

जो मनुष्य इन तीन प्रकारों से ओम् की आराधना करता है, पहले होठों से गाता है, फिर हृदय से उसका रस लेता है, और अन्त में अपने कार्यों में भी उसी की ध्वनि गुंजाता है—तो उसका जीवन एक चिरन्तन संगीत बन जाता है। वह तो सबके लिये ईश्वर रूप बन जाता है। किन्तु यदि तुम उसे हृदय से नहीं गा सकते, यदि उसे अपनी क्रिया से नहीं गा सकते, तो उसे छोड़ो मत—उसे होठों से बराबर गाते रहो। यह भी किसी प्रकार व्यर्थ नहीं जायगा। यदि तुम निरन्तर होठों से ही उसे गाते रहोगे तो स्वभावतः धीरे-धीरे भावनाओं और क्रियाओं से भी उसका गीत प्रारम्भ हो जायगा।

मन को उन दिव्य लोकों के स्तर पर उठाने का उपाय क्या है? आत्मा को भगवान् के सिंहासन तक ऊंचे उठाने का साधन क्या है? जब प्रातःकालीन अथवा सांध्यकालीन सूर्य का मधुर प्रकाश अर्द्ध-निमीलित नेत्रों के पारदर्शक पलकों पर पड़ने लगे तब हमें ओम् मंत्र का गान प्रारम्भ करना चाहिए, फिर धीरे-धीरे हृदय की भाषा में भी उसका गायन होने लगेगा।

मैं हूँ वह अज्ञात आत्मा, जो लोक-लोकान्तरों की निर्माता है।
मैं अग्नि में हूँ, मैं ही सूर्य-चन्द्र, नक्षत्रों और ग्रहों में चमकता हूँ।
मैं हवा में बहता और लहरों में ढुलकता हूँ।
मैं ही पुरुष, मैं ही स्त्री, मैं ही युवक और मैं ही युवती,
नवजात शिशु मैं हूँ और डंडे के बल पर चलने
वाला झुर्रियों भरा बुड्ढा भी हूँ मैं।
जो कुछ है, वह सब हूँ मैं—
कृष्ण भ्रमर, सिंह और मत्स्य!

लाल आंखों वाली हरी चिड़िया और हरियाली के बीच में हरा-भरा पेड़ !

बिजली को गर्भ में धारण करनेवाला बादल, ऋतुयें और समुद्र !

मुझ में, मुझ में, मुझ में वे हैं, थे और रहेंगे ।

—सर एडविन अरनोल्ड के गीता-अनुवाद से ।

माया और मायापति में से एक ही मिलेगा

ऐ अमरीका के और सारे संसार के रहने वालो ! सचाई तो यह है कि तुम माया और माया-पति, दोनों की सेवा नहीं कर सकते । तुम एक साथ दो स्वामियों की सेवा नहीं कर सकते । तुम दुनिया का मज़ा भी लूटो और आत्मसाक्षात्कार भी करो, यह नहीं हो सकता ।

तुम इधर सांसारिक सुखों का भी उपयोग करो, छोटी-छोटी सांसारिक विषयवासनाओं, विषयानन्द और भोग-विलास के चक्कर में पड़े रहो और उधर अपने ब्रह्मत्व का भी दावा करो—यह हो नहीं सकता, यह हो नहीं सकता ।

प्यारे सज्जन ! जब तक तुम्हें किसी वस्तु में भद्दापन दिखाई देता रहेगा, तब तक तुम उसे प्यार नहीं कर सकते । प्रेम का अर्थ है सौंदर्य की अनुभूति ।

अंधकार से लड़कर अंधेरा दूर नहीं होगा । प्रकाश लाओ, अंधकार काफ़ूर हो जायगा ।

उलाहना व्यर्थ है

इस प्रकार की निन्दनीय आलोचना, नैराश्यपूर्ण और उत्साह भंग करने वाली पद्धति से काम नहीं बनेगा । जो बात आवश्यक है, वह तो है सुधारात्मक, आह्लादकारक, आशाजनक, प्रेम एवं उत्साह-भरे स्वभाव की । सब से श्रेष्ठ आलोचना वह होती है जो मनुष्य को भीतर से उस बात का अनुभव करा देती है, जो तुम उस पर ऊपर से लादना चाहते हो । यह सब तू-तू-मैं-मैं बिल्कुल व्यर्थ और पागलपन

सूचक है—इस कमल में गुलाब की खुशबू क्यों नहीं और इस गुलाब में कमल का सौंदर्य क्यों नहीं ?

प्रेम का विधान मेरे लिये तो जीवन की सभी बातें अंगूर जैसी हैं, सब से मीठी सुरा निकाल लेना मेरा काम है। जोज़िफ़ ने अपने क्षमा मांगने वाले भाइयों से कैसी सुन्दर बात कही थी—भाइयो, तुमने कब मुझे कुए में फेंका था, फेंकने वाला तो था भगवान् का विधान, जो मुझे मिश्र में यश दिलाना चाहता था—उसे अपने काम में मेरे ही भाइयों से बढ़कर और कौन सहायक मिल सकते थे ! "तुम पाप के विषय में क्यों इतना अधिक सोचते विचारते हो ? यदि प्रेम विधान को भंग करता है तो उससे विधान की पूर्ति भी होती है। प्रेम मात्र ही ईश्वर का एक नियम है। प्रेम से अधिकार करना स्वर्गीय है और अन्य नियमों से वही बात अन्याय-मूलक हो जाती है।

दिव्य प्रेरणा प्राप्त कराना ईश्वर का काम है, मनुष्य का नहीं, कदापि नहीं ! जब कभी हम पूरी तरह रँझ कर तृप्त हो जाते हैं, जब मन एक ही विचार से भर जाता है, जब सारा जीवन एकही विचार में ऐसा तल्लीन हो जाता है कि अन्य किसी की सुधि ही नहीं रहती, तब झट से हमारा जीवन रूपी बाजा वह सर्वश्रेष्ठ गायक, ईश्वर-परमात्मा अपने हाथ में उठा लेता है और फिर उस बाजे से एक से एक मधुर, एक से एक सुन्दर, एक से एक उत्कृष्ट स्वर फूट निकलते हैं। दिव्य संगीत के मधुरतम स्वर उस बाजे से निकलते हैं। पर जितनी देर तक बालक बाजे को अपने हाथों में लिए रहता है और उस महान् गायक को बाजा बजाने का अवसर प्रदान नहीं करता, जब तक यह आत्मा, यह मिथ्या अहंकार, यह झूठी आत्मा जो भोगने वाली आत्मा है, हमारी चेतना में विद्यमान रहती है, जब तक वह इस शरीर को पकड़े रहती है, उसे अपने हाथों से छोड़ती नहीं, तब तक इस संगीतहीन शरीर के बाजे से केवल कर्णकटु और बेमेल स्वर ही निकलते हैं और निकलेंगे।

प्रेरणा देना ईश्वर का काम है । ज्योंही क्षुद्र आत्मा इस शरीर पर से अपना अधिकार हटा लेती है त्योंहीं मनुष्य उत्प्रेरित होने लगता है ।

—अमरीका में राम के वार्तालाप से

एक दूसरे स्थल पर ईसा मसीह के जीवन की चर्चा करते हुए राम कहते हैं—

उनके अध्ययन के अनुसार ईसा के जीवन में दिव्य प्रेरणा का ज्वार-भाटा कब और कैसे आया ?

वह एक शुद्ध हृदय सीधा-सादा मनुष्य था—सो कैसे ? अपने जीवन के प्रथम तीस वर्षों में वह लोहे के छोटे से टुकड़े के समान रहा, उसे किसी ने जाना नहीं । वह एक बढ़ई का बेटा, अत्यन्त दरिद्री था–किसी अज्ञात मां का बच्चा, जिसे लोग घृणा की दृष्टि से देखते थे। अब इस लोहे के टुकड़े ने अपना सम्बन्ध चुम्बक रूपी सच्ची आत्मा, शुद्ध अहम्, आकर्षण के केन्द्र के साथ जोड़ा । वह ईश्वर से सम्बन्धित हो गया—ईश्वर से, सत्य से, शक्ति से, आत्म-साक्षात्कार से । और फल क्या हुआ ? यह लोहे का टुकड़ा भी चुम्बक बन गया, लोग उसकी ओर खिंचने लगे । शिष्य वर्ग और अन्य लोग उसकी ओर खिंचने लगे । स्वभावतः उन्होंने उसके आगे सिर झुकाया । परन्तु जीवन के अन्तिम भाग में फिर एक ऐसा समय आया, जब कि ईसा मसीह का सम्बन्ध, जिसे यहां लोहे के टुकड़े रूप में दर्शाया गया है, उस चुम्बक से विच्छिन्न हो गया । फलस्वरूप उसकी आत्मा की क्या गति हुई ? जितने भी लोहे के अन्य टुकड़े उससे जुड़े हुए थे, एक-एक करके हटते गये, शिष्यों ने उसे छोड़ दिया । जेरूसलम के वही मनुष्य, जो पहले उसे प्यार करते और उसकी पूजा करते थे, जो पहले उसका राजाओं जैसा स्वागत करते थे, जो उसके आदर में नगरों को सजाते थे, सब के सब उसे छोड़ गये । उसकी शक्ति चली गई थी, उसमें से चुम्बक के गुणों का लोप हो गया था । जब उसके शिष्यों ने उसे छोड़ दिया , उसके मुख्य ग्यारह शिष्यों

ने भी उसे छोड़ा तो लोग उससे इतने विमुख हुए कि उन्होंने उससे बदला लेने का निश्चय किया। यहां तक कि उन्होंने उसका वध करने की घोषणा कर दी। यह वह समय था जब ईसा ने कहा —हे पिता, तू ने क्यों मुझे त्याग दिया है? इससे प्रतीत होता है कि उसका संबंध-विच्छेद हो गया था। सोचो, तुम्हें ईसा के जीवन से क्या शिक्षा मिलती है? केवल यही कि शक्ति मात्र, ईसा का सारा बड़प्पन, वास्तविक शक्ति, महान् चुम्बक के सम्पर्क के कारण थी। जब तक ईसा का स्थूल शरीर उस सच्ची आत्मा से जुड़ा हुआ था, उसका शरीर भी चुम्बक बना हुआ था किन्तु जब वह शरीर सच्ची आत्मा, चुम्बक से कटकर पृथक् हो गयी तो उसकी शक्ति जाती रही, शिष्यों ने साथ छोड़ दिया। पर मृत्यु के पहले ईसा ने फिर आत्मा से अपना सम्बन्ध स्थापित कर लिया। यह तो तुम्हें ज्ञात है कि फांसी पर लटकाये जाने पर भी ईसा मरा नहीं। ऐसा हो सकता है और सिद्ध किया जा सकता है। वह उस स्थिति में था, जिसे समाधि कहते हैं। उस दशा में प्राण-वायु की गति रुक जाती है, नाड़ियाँ चलतीं नहीं, ऊपरी दृष्टि से धमनियों में रक्त की गति भी रुक जाती है। प्रत्यक्ष में जीवन के सभी चिह्न नष्ट हो जाते हैं और शरीर एकदम मृत-प्राय हो जाता है।

—अमरीका में उनकी बातचीत से

सच्चा बलशाली कौन? गेलीली की संध्या में प्रभुने उनको (शिष्यों को) मेहनत करते हुए, पानी काटते हुए, खींचते हुए, जल्दी जल्दी नाव खेते हुए देखा, क्योंकि हवा का रुख प्रतिकूल दिखाई देता था। किन्तु स्वामी था बिल्कुल निश्चिन्त! न कोई श्रम, न कोई खेना! तूफानों के बीच में भला उस मनुष्य को सुख की नींद क्यों न आवे, जो पानी के ऊपर चलने की कला जानता हो।

* * *

प्रेम ही प्रेरणा पैगम्बर, कवि, अन्वेषक, आविष्कारक, कला और

विज्ञान के आचार्य, दर्शन शास्त्र के विचारक, तत्वदर्शी महात्मा जिन्हें भी दिव्य प्रेरणा प्राप्त हुई है, केवल प्रेम के ऋणी हैं। हां, किसी उदाहरण में यह प्रेम अन्य उदाहरणों से अधिक स्पष्ट होता है। कृष्ण, चैतन्य, ईसा, तुलसीदास, शेक्सपियर, और रामकृष्ण, सबके सब उत्प्रेरित थे, क्योंकि वे प्रेम के पागलपन में मस्त रहते थे।

प्रेम जिसमें विषय-वासना की गंध नहीं, आध्यात्मिक प्रकाश का ही दूसरा नाम है।

प्रेम ही उत्कृष्ट आनन्द है कितना भाग्यवान् है वह मनुष्य जिसकी सम्पत्ति चुरा ली गई हो। तिगुना भाग्यवान् है वह जिसकी स्त्री भाग गई हो—हां, इनकी भाग्यशालीनता में एक शर्त है कि यदि इन उपायों से वे सीधे प्रेमरूप भगवान् के सम्पर्क में पहुंचे हों। इब्राहम, ऐसी मुस्लिम परम्परा है, किसी समय समुद्री यात्रा के लिये तत्पर हुए। खिज्र ने नम्रता से निवेदन किया कि उसे नाविक बना लिया जाय। इब्राहम ने पहले बिना समझे-बूझे अपनी सम्मति दे दी। किंतु दुबारा सोचते ही उन्होंने खिज्र से क्षमा मांगी और कहा—ऐ मेरे सब से दयालु भ्राता! मुझे क्षमा करो, मैं अपनी नाव में किसी को कप्तान नहीं बनाना चाहता—प्रेम का अवतार ही अकेला मेरी नाव पार लगायगा। तुम समुद्रों के स्वामी हो, यदि तुम्हारे हाथ में पतवार रहेगी तो इसमें सन्देह नहीं, यात्रा निरापद होगी, पर 'ओह' मुझे ऐसी रक्षा न चाहिए। मैं सभी तरह तुम्हारा भिखारी हो जाऊंगा, और ईश्वर के प्रति अपने विश्वास को धक्का लगाऊंगा। दया करके मेरे और भगवान् के बीच में मत खड़े हो। सीधे ईश्वर के वक्षस्थल पर आराम करने में मुझे जो प्रसन्नता होगी, वह अपने भाईकी छाती पर सोने में नहीं हो सकती।

निराश और पागल प्रेमी पुकार उठता है—दया करो, ऐ बिजली, चमको, खूब चमको, ऐ विद्युत, गरजो, खूब गरजो, ऐ तूफान, उठो, खूब तूफान मचाओ, ऐ वायु के वेग, चीखो और चिल्लाओ—ऐ

कल्याणमय विद्युत और झंझावात ! एक क्षण के लिये, निमिषमात्र के लिये ही डर के मारे ही सही, मेरे हृदय में प्रेम की ज्योति जगा दे। जीवन की कड़वाहटों में कैसी अनुपम मधुरता होती है ! आवश्यकता केवल इस बात की है कि हम इन कड़वे अंगूरों में से भी प्रेम की सुधा खींच लें, जिससे हृदय में ईश्वर से मिलने की मधुर ज्वाला दहकने लगे।

प्यारे पाठक ! क्या कभी तेरा ऐसा सौभाग्य हुआ है कि तू प्रेम में डूब गया हो, डूब नहीं, अरे, प्रेम से ऊपर, ऊपर उठ गया हो, प्रेम, निष्काम प्रेम—जहाँ अपना कुछ नहीं, जो कुछ है सो तोर ! यदि हुआ हो तेरा ऐसा सौभाग्य ! तब सचमुच तू आत्मसमर्पण के भाव का मर्म समझ सकेगा—

ऐ प्रभु, ले लो मेरा यह जीवन,
और उसे चढ़ जाने दो अपनी भेंट !
ऐ प्यारे, मेरा हृदय ले लो,
और उसे भर जाने दो आकंठ अपने प्रेम से !
ऐ ईश्वर, मेरी आंखें, ले लो मेरी आंखें
और उन्हें मस्त कर दो अपनी छवि से !
ऐ परम सत्य ! ले लो मेरे ये हाथ,
और उन्हें पसीना-पसीना होने दो—
अपनी सेवा में।

आत्मज्ञानी को संसार सुन्दर हो उठता है जब परमात्म-दृष्टि से अवलोकन किया जाता है तब संसार में चारों ओर आनन्द ही आनन्द, सौंदर्य ही सौंदर्य, कल्याण ही कल्याण का प्रसार और पाद दिखायी देती है। जब दृष्टि की ससीमता जाती रही तब असुन्दर कुछ रह नहीं सकता। जब सब कुछ अपना ही रूप है, तब सब है माधुर्य ही माधुर्य, चाहे विकसित, चाहे संकुचित। आत्मा आनन्द रूप है, इसलिये आत्मसाक्षात्कार होने पर संसार की सारी वस्तुएँ उसी आनन्द

के चमकीले कण जैसी मालूम होती हैं, प्राकृतिक शक्तियाँ ज्ञानी के हाथ-पैरों की भांति काम करने लगती हैं। ब्रह्मांड को वह स्वयं अपनी ही आत्मा का मधुरतम स्थूल शरीर मानने लगता है।

पवित्रता सच्ची पवित्रता वह है, जहां सारा सौंदर्य मेरे ही स्वरूप में समा जाता है। मैं सब के साथ अपनी आध्यात्मिक एकता यहां तक अनुभव करता हूं, उसमें इतना अधिक रस लेता हूँ कि किसी से मिलने की बात करना, किसी वस्तु को पाने का विचार करना, वियोग-जनित पीड़ा का संकेत बन जाता है। सूर्य-चन्द्र तारे, नदी और पर्वत—सब कुछ बन जाती हैं उसी प्यारे की झांकियां !

* * * * *

आत्मा की एकता संसार भर में चाहे जहाँ जाइये, बच्चों का एक सार्वभौमिक व्यावहारिक धर्म होता है, जो प्रेम, खेल-कूद और हृदय की पवित्रता से बनता है। बच्चों में ऐसी एकता कहां से आती है ? प्रत्येक बच्चा अपनी प्यारी और मीठी आत्मा के प्रति सच्चा होता है।

आनन्द की खोज ही धर्म है तत्वरूप में आनन्द की खोज करना ही यथार्थ धर्म है किन्तु इसे प्राप्त करने के अनेक प्रकार हैं। एक वह, जैसे दरबार की झांकी के लिये कोई गंदी नाली में मुंह डाले। बिजली की क्षणिक चमक में प्रकाश का वही स्वरूप विद्यमान है जो मध्याह्न सूर्य की प्रभा में होता है। परन्तु गंदी नाली में होकर आनन्द की वह बिजली जैसी चमक देखना लाभ के बदले हानि करता है।

बाइबिल में लिखा है कि फरीसी शुद्ध आचरण वाले थे। उनके काम धर्म-संगत होते थे किन्तु उनमें दयालुता, कोमलता और प्रेम की बड़ी न्यूनता थी। उल्टे उनमें दूसरों की निन्दा करने, दूसरों के दोष देखने की प्रवृत्ति थी। फल यह हुआ कि ये शुद्ध आचरण वाले व्यक्ति ईसा मसीह से दूर रहे और मेरीमेगडलीन जैसी एक पतिता स्त्री जिसका चरित्र शुद्ध नहीं था, ईसा के समीप पहुँच गई। यह सब कैसे हुआ ?

क्योंकि उसमें वह दूसरों की निन्दा करने वाली, दोष देखने वाली, छिद्रान्वेषण करने की प्रवृत्ति न थी। वह सचमुच प्रेमशीला थी, इसीलिये वह सत्य के समीप पहुंची। शुद्ध आचरण वाले फरासियों की अपेक्षा वह स्वर्ग के साम्राज्य के अधिक निकट पहुँच गयी।

इच्छायें आत्मा के टुकड़े कर डालती हैं इसी क्षण यदि तुम अपने को सारी इच्छाओं से मुक्त कर लो, यदि तुम्हारा हृदय एकदम इच्छाओं से शून्य हो जाय तो तुम जान सकोगे कि तुम्हारी हर एक इच्छा तुम्हारा एक हिस्सा काट लेती है। हर एक इच्छा के बाद तुम अपनी एक भिन्न-मात्र रह जाते हो। बड़े भाग्य से कहीं हमें पूर्ण मनुष्य दिखाई देता है। ऐसा पूर्ण व्यक्ति ईश्वर से उत्प्रेरित रहता है, पूर्णता ही सत्यता है। हर एक इच्छा से, हर एक लालसा से, ऐसा प्रतीत होता है, जैसे भण्डार में वृद्धि हो रही हो किन्तु यथार्थ में वह तुम्हें तुम्हारा एक क्षुद्र अंश बना डालती है। तुम इन इच्छाओं, लालसाओं, राग और द्वेषों को, आसक्तियों को उतार फेंको—यहां तक कि प्रकाश और ज्ञान की इच्छा को भी पास मत फटकने दो, क्षण भर के लिये ओ३म् का गायन करो। बस, तुम परम स्वतंत्र, परम कल्याणमय, आनन्दमय और आनन्दस्वरूप हो।

मन को चोट मारकर ऊपर उठाओ भारतवर्ष में लड़के एक खेल खेलते हैं, जिसका नाम है गुल्ली डंडा। एक छोटा सा लकड़ी का टुकड़ा बीच में मोटा और दोनों किनारों पर नुकीला, गुल्ली कहलाता है। धरती पर रखने से उसके दोनों सिरे उठे रहते हैं। जब बच्चे डंडे से उस पर चोट मारते हैं तो गुल्ली थोड़ी सी ऊपर उठ जाती है और फिर इसी दशा में उस पर चोट मारी जाती है तो वह बड़ी दूर तक हवा में भनभनाती हुई चली जाती है। इस खेल के दो भाग हैं, एक पहले गुल्ली को ऊपर उठाना और दूसरा, उसे हवा में दूर तक उड़ाना। यदि हमें अपने मन को ईश्वर के सान्निध्य में पहुंचाना है तो

हमें सबसे पहले उसे थोड़ा सा ऊपर उठाना चाहिए और फिर दुबारा चोट मार कर उसे आध्यात्मिक वायुमण्डल में ऊपर उड़ा देना चाहिए।

मस्त आदमी का काम 'कुछ करना नहीं है, फिर भी हम काम में जुटे रहते हैं।' इसी एक वाक्य में वेदान्त की शिक्षा भरी हुई है। ऐ शुभ कर्मयोगिन्! सफलता की खोज बन्द करो, सफलता की खोज बन्द करो, सफलता स्वयं तुम्हें खोजती फिरेगी।

सत्य की रक्षा ईसा ने केवल ग्यारह शिष्यों को उपदेश दिया था किन्तु वायुमण्डल ने उसे संचित किया, आकाश ने उसे अपने हृदय में संजो लिया। वही शब्द आज लाखों-करोड़ों व्यक्तियों द्वारा पढ़े और सुने जाते हैं। सत्य मिट्टी में मिल मिल कर फिर फिर उदय होता है।

बुराई करने से आत्मा की हानि होती है इस बात को सदा ध्यान में रखो कि यदि तुम ईर्ष्या-द्वेष, आलोचना-प्रत्यालोचना, छिद्रान्वेषण के कुतर्क अथवा इन्हीं कुभावनाओं से मिलते-जुलते विचार किसी दूसरे के प्रति भेजते हो तो मानों तुम वही विचार अपने ऊपर बुलाते हो। जहां तुम अपने भाई की आंख में तिल ढूंढ़ते हो, वहीं तुम्हारी आंख में टेंट निकल आती है।

दृश्य के पीछे विद्यमान शक्ति में लीन होना ही धर्म है रणक्षेत्र में किसी योद्धा को लड़ते हुए देखो। अपनी शक्ति—अतिशय शक्ति के मद से वह पागल हुआ जा रहा है। सैकड़ों को अपने सामने कुछ गिनता ही नहीं। वास्तव में उसे अपने तन-बदन की भी सुध नहीं। न शरीर का ध्यान है, न मन का। संसार की भी कुछ खबर नहीं। जोश का पुतला बना हुआ है, उसके रोम रोम से एक ही ध्वनि निकलती है। शरीर, मन और सारे संसार के पीछे जो महत्तम आत्मा है, मानो वह उसी में डूबा हुआ है। दर्शक देखते हैं उसका अटल साहस और भव्य वीरोचित शक्ति। किन्तु वह है क्या, उस अज्ञात की इस ज्ञात दृश्य जगत्

में बिजली जैसी चमक। स्वयं उस योद्धा के दृष्टि-कोण से उसका यह दुर्दमनीय शौर्य ही अज्ञातत: धर्म का सच्चा अनुशीलन है। उसका परदे के पीछे विद्यमान शक्ति में तल्लीन होना ही सच्चा धर्म है।

अंग्रेजी में एक शब्द है 'ecstasy'। इसका अर्थ है आनन्द; और रूढार्थ है बाहर खड़े होना। यह वास्तव में सुन्दर शब्द है। क्योंकि यह संकेत करता है कि चाहे जो दशा हो, चाहे जैसी विकट परिस्थिति का सामना हो, आनन्द सदा शरीर, मन, और संसार के बाहर खड़े होने से ही प्राप्त होता है। यदि हम अपने ही अनुभवों को ध्यान से देखें तो हमें ज्ञात हो जायगा कि हमें सच्चा आनन्द तभी मिलता है, जब हम थोड़ी देर के लिये ही सही, द्वैत के द्वन्द्व से मुक्त हो जाते हैं, जब चिराभिलषित पदार्थ और भिखारी (चाहने वाली आत्मा) मिलकर एक हो जाते हैं। इस प्रकार आनन्द के वास्तविक स्वरूप से ही हमें धर्म की शिक्षा मिल जाती है।

आत्म विश्वास यदि कोई एक शब्द में मुझ से मेरे दर्शन शास्त्र का मर्म पूछे तो मैं कहूँगा—आत्म-विश्वास और आत्म-ज्ञान।

आत्म सम्मान आत्म-सम्मान क्या है? जब तुम परमात्म-चेतना से भर जाते हो, जब तुम हृदयस्थ परमात्मा के विचार में तल्लीन रहते हो तभी तुम अपनी आत्मा का सच्चा आदर कर सकते हो। शरीर की पूजा करके तुम स्वयं आत्मघात करते हो, मानो स्वयं अपनी कब्र खोदते हो।

जीवन-मृत्यु मोक्ष का मार्ग, साक्षात्कार का पथ प्रत्यक्ष मृत्यु में होकर चलता है। उसके सिवा कोई दूसरा मार्ग नहीं। आत्म-बलिदान, इसके सिवा दिव्य प्रेरणा-प्राप्ति का दूसरा उपाय नहीं।

भगवान् बनो अपने को ईश्वर के हाथ में सौंप दो, फिर तुम्हारे लिये कोई कर्त्तव्य न रह जायगा। ऐसा करो कि ईश्वर तुम्हारे भीतर से चमकने लगे, भीतर-बाहर झलक मारने लगे। ईश्वर में रहो, ईश्वर को खाओ, ईश्वर को पियो। सत्य का अनुभव करो। फिर अन्य सब काम अपने आप होते रहेंगे।

सादा जीवन, उच्च विचार अपने आप को बड़ा और भला बनाने की कोशिश करो। अपनी क्रिया-शक्ति इधर-उधर मत बिखराओ, बाहर सुन्दर और भव्य भवन बनने के विचार में समय नष्ट मत करो। बहुत से मकान विशाल और भव्य होते हैं किन्तु उनमें रहने वाले बहुत छोटे देखे जाते हैं। भारतवर्ष में बड़े बड़े मकबरे हैं, किन्तु उनमें है क्या? सड़ी-गली हड्डियां, कीड़े-मकोड़े अथवा सांप-बिच्छू।

अपनी स्त्री को, अपने मित्रों को, अपने आपको सुन्दर बनाने में समय नष्ट मत करो। बड़े बड़े मकान बनाने में, तरह तरह का सामान जुटाने में क्यों शक्ति नष्ट करते हो? यदि तुम्हारे हृदय में यह बात घर कर जाय, यदि तुम यह समझ जाओ, यह जान लो कि जीवन का एकमात्र उद्देश्य, एकमात्र ध्येय संसार की दौलत जुटाने में शक्ति का अपव्यय करना नहीं, वरन् अपनी अन्तरंग शक्तियों का विकास करना, अपने को शिक्षित करना, बन्धन मुक्त करना, स्वयं ईश्वर बन जाना है। यदि तुम यह बात हृदयंगम करलो, और उस दिशा में अपनी शक्ति लगाओ तो पारवारिक सम्बन्ध तुम्हारे मार्ग में कभी कोई रुकावट नहीं डाल सकते।

कैसे आश्चर्य की बात है कि लोग एक दूसरे की धन-सम्पत्ति लूट लेना चाहते हैं, संसार धन के पीछे पागल है, और जब उससे भी श्रेष्ठ धन (आध्यात्मिक और धार्मिक सम्पत्ति) उन्हें भेट किया जाता है तो वे दाता को मारने दौड़ते हैं।

* * * * * *

मित्रों और सम्बन्धियों को हमारे लिये पारदर्शक होना चाहिए। हम उनके भीतर देख सकें, न कि वे परदे और किवाड़ का काम करें। उन्हें तो कांच की खिड़की जैसा होना चाहिये, जिससे प्रकाश के आने जाने में कोई बाधा न हो। नहीं, उन्हें तो चश्मों या दूरबीन अथवा खुर्दबीन की भांति हमारा सहायक होना चाहिये।

रस्सी पर नाचने वाला नट पहले अकेला और एकाकी ही रस्सी पर चढ़ने का अभ्यास करता है। परन्तु जब अभ्यास खूब बढ़ जाता है तो वह अपने साथ किसी छोटे बच्चे अथवा किसी भारी पदार्थ को लेकर रस्सी पर नाचना प्रारम्भ कर देता है। इसी प्रकार पहले एकाकी जीवन बिताकर और उसमें पूर्णता प्राप्त करने के बाद मनुष्य दूसरों को भी अपने साहचर्य में ले सकता है।

मनुष्य को व्यसनों पर विजय प्राप्त करनी होगी या मरना होगा। किसी ऐसे मनुष्य की कल्पना असम्भव है, जो सदा पेट का गुलाम और कामुकता का दास बना रहे—एक चलता-फिरता पेट हाथ-पैर एवं अन्य इन्द्रियों के साथ एक स्थान से दूसरे स्थान में डोलने वाला और अपनी संग्रह-वृत्ति के पागलपन में मस्त रहने वाला!

पुस्तकों को पढ़ना और सभी प्रकार की विद्या प्राप्त करना एक बात है और सत्य की प्राप्ति करना दूसरी बात है। तुम सभी धर्म ग्रन्थों का अध्ययन कर डालो, फिर भी तुम सत्य से अपरिचित रह सकते हो।

मृत्यु यह नहीं पूछती—तुम्हारे पास क्या है? किन्तु यह कि तुम हो क्या? जीवन का प्रश्न यह नहीं है—मेरे पास क्या है? किन्तु मैं हूँ क्या?

'थोरो' आभूषणों की अपेक्षा अवकाश को अधिक पसंद करता था।

पाने की अपेक्षा देना अच्छा सौदा है।

प्रेम यदि आत्मा की स्वतंत्रता में बाधक है तो रोग वह के सिवा और कुछ भी नहीं। उस को अपने वश में करलो और प्रकृति के सारे अद्भुत व्यापार तुम्हारी मुट्ठी में आ जायंगे।

ऐसा करो कि इच्छा और प्रेम के द्वारा तुम्हारे टुकड़े टुकड़े न हो जायं।

सिपाही जो किसी रणक्षेत्र पर जाने की तैयारी में होता है, यह नहीं सोचता कि उसे कौन कौन सा नया सामान अपनी पीठ पर लाद लेना चहिए, वरन् यह सोचता है कि वह कौन कौन सी चीजें पीछे छोड़ सकता है। इसलिये यदि तुम यहाँ पर यश, सुख, भोग-विलास अथवा ऐसी ही चीजें अपने लिये खोजते रहोगे तो चलते समय इन्हीं चीजों के चित्र तुम्हारे सामने प्रकट होंगे। वे तुमसे चिपट जायंगे और तुम्हें उनको ले चलना होगा। अवश्यमेव यही चित्र और यही शक्तियां जिन्हें तुम स्वयं अपनी इच्छा से जगाते हो तुम्हारे चारों ओर इकट्ठा होगीं और तुम्हारे लिये एक नया शरीर तैयार कर देंगी जो पुनः जीवन और सुख की पुकार मचायगा। सावधान! कहीं वह शरीर आनन्ददायक राज-प्रसाद और देवताओं का गृह बनने के बदले तुम्हारी कब्र, तुम्हारा कारागार न बन जाय, न बना रहे।

अपने मन और बुद्धि को सुखद स्मृतियों से, विचारों के सुखमय तारतम्य से भर दो, जिससे वह सदा आह्लादकारक विचारों और दिव्य भावनाओं में डूबा रहे। फिर कभी तुम्हारे सामने दुख भोगने अथवा पछताने का अवसर न आयगा।

ईश्वर मनुष्य को प्यार करता है—मुहम्मद ने इसी प्यार का अनुभव किया था। मुहम्मद ने चाहे इस प्रेम को इतने शब्दों में व्यक्त किया हो या न किया हो किन्तु यह निश्चित है कि इसी प्रेम ने अरब-संसार को जगा दिया और वे उसके झंडे के नीचे एकहृदय हो कर लड़ने के लिये तैयार हो गये।

जो आत्मा भीतर है, वही बाहर है। कौन आत्मा? सच्ची और

वास्तविक आत्मा, न कि इन्द्रियों का दासत्व करने वाली झूठी आत्मा।

परमात्म-चेतना ही सच्चा काम है। चाहे तुम न्यूयार्क की दौड़ धूप में रहो, चाहे हिमालय के एकांत में—यदि यह चेतना तुम्हारे अन्तःकरण में विद्यमान रहती है तो प्रभाव सदा एक सा होगा। स्थान, रूप, रंग ढंग आदि का इस तथ्य पर कोई अन्तर नहीं पड़ता।

जब जाना ही, चलना ही, मनुष्य का एकमात्र काम रह जाता है, किधर और कहाँ जाना है। उस पर वह ध्यान नहीं देता तभी वह बहुत ऊँचा उठ जाता है।

दुखी व्यक्ति को चुपचाप अपना दुख भोग लेना चाहिए। बाहर धुआँ उड़ाने से लाभ? भीतर ही भीतर जब तक धुआँ प्रकाश में परिणत न हो जाय, तब तक किसी से कुछ कहना-सुनना व्यर्थ है। और धुएं के बाद अग्नि अवश्य जल उठेगी—यह प्रकृति का नियम है।

छठा परिच्छेद

संन्यास से पूर्ववर्ती जीवन

विद्यार्थी और अध्यापक

(१८८८ से १९०० तक)

जैसा पहले अंकित किया जा चुका है, सन् १९०३ और १९०६ के बीच में स्वामी राम ने एकाएक भारतवर्ष, जापान और अमरीका को एक साथ अपने महान् जाज्वल्यमान व्यक्तित्व से चकित कर दिया। सन्यासी के वेष में भगवा वस्त्र पहने हुए, स्वामी विवेकानन्द की अमरीका की सफलता से उत्साहित होकर, और अपने निजी विश्वासों की बहुमूल्य सचाईयों को सारे संसार में बिखेर देने के शुद्ध और पीयूषवर्षी उत्साह से भरे हुए स्वामी राम संसार के सामने ऐसे उदित हुए कि उनके सम्पर्क में आनेवाला जन-समुदाय उन्हें देखता ही रह गया और मूर्तिमान वेदान्त के एक सत्यनिष्ठ आचार्य के रूप में उनकी प्रशंसा करने लगा। जिस वेदान्त का उन्होंने प्रचार किया वह उनका अपना निजी वेदान्त था। ऐसा मालूम होता था कि एकाएक किसी अज्ञात पवित्र आत्मा ने अपने स्पर्श से उनके जीवन को सुन्दर-तम सौंदर्य से प्रस्फुटित कर दिया हो। वे ब्रह्मज्ञान की मस्ती से

गोस्वामी तीर्थराम एम० ए०

पागल हो उठे थे। जैसे किसी महान् आत्मा ने महाप्रभु चैतन्य की आत्मा को छू दिया था जिससे वे आजीवन विह्वल रहे। ठीक यही बात स्वामी राम के साथ हुई। मनुष्य चाहे जितना प्रयास करे, मनुष्य की योग्यतायें और क्षमतायें चाहे जितनी महान् हों, किसी भी दशा में वैसा प्रकाशपूर्ण समाधिस्थ व्यक्तित्व मानवी प्रयास से सम्पादित नहीं किया जा सकता। उनको मानो स्वयं उसी प्रकृति ने अपने हाथों सजाया था, जो लिली को सफेद, गुलाब को लाल और चम्पा को पीले रंग से चित्रित करती है।

कभी कभी वे ॐ के निरन्तर जाप के लिये इतने जोरदार शब्दों में आग्रह करते थे कि उसकी तुलना नहीं। स्वयं उनका ॐ ॐ जाप निरन्तर चलता रहता था। उसमें एक क्षण का भी व्याघात न पड़ता था। किन्तु क्या उनके किसी अनुयायी में वैसी आग सुलगी? हां, दो-एक दिन अथवा कुछ समय उनके साथ रहने की बात दूसरी है। ॐ के निरन्तर, अजस्र धाराप्रवाह में यत्किंचित् व्यतिक्रम होते ही वे व्याकुल हो उठते थे—मैंने स्वयं उनकी इस व्याकुलता को देखा है। वे कहा करते थे—ॐ ही जीवन का स्वर्गीय विश्राम-स्थल है। उसके बिना कोई ईश्वरीय श्वांस नहीं ले सकता। उसके बिना मनुष्य मरे के समान है। एक समय उन्होंने कहीं मिश्र या अमरीका में किसी वक्ता को व्याख्यान देते सुना था। उसे सुन कर वे बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा—वाह वा, उसके भाषण में कहीं कोई विराम, अर्द्ध विराम नहीं दिखायी देता। विराम था तो केवल उसके प्रियतम का नाम वाह, वाह, वाह (वाह का अर्थ है प्रकाश)। दूसरी बार मैंने उन्हें वशिष्ट आश्रम में देखा—वे नाम स्मरण—निरन्तर ॐ ध्वनि की भावना में आकण्ठ डूबे हुए थे। वशिष्ट आश्रम के पर्वतों की हरी हरी दूबी पर यदि कहीं उनका पैर फिसल पड़ता तो

वे झट से कहते—ओह, मैं गिरा क्यों? क्या प्यारे का विस्मरण हुआ? आप सब आगये हैं, मेरी दृष्टि कुंठित हो जाती है। ज्योंही मैं उसे भूलता हूं त्योंही मैं गिरता और शिथिल होता हूं।

मनुष्य की संकल्प-शक्ति चाहे जैसी दृढ हो, इस तथ्य को अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि साधारण बोल-चाल में हम जिसे संकल्प-शक्ति कहते हैं, उसके फलस्वरूप कभी उस पवित्र महामंत्र ॐ के अजस्र धाराप्रवाह की सिद्धि नहीं हो सकती। वह तो सहज समाधि का लक्षण है, उसी से वह प्रकट होता है; अन्यथा होते कभी देखा नहीं गया। जो केवल एक सुसंयत संकल्प-शक्ति के बल पर, आध्यात्मिक साधना के बल पर ॐ के जाप का अभ्यास प्रारम्भ करते हैं, जीवन भर प्रयास करते रहने पर भी फल क्या होता है, कुछ नहीं। साधना के रूप में ही उस अभ्यास का जन्म होता है और साधना के ही रूप में उसका अन्त हो जाता है। किन्तु वे जो समाधिस्थ होते हैं, जिन्हें ऊपर से स्फूर्ति मिलती है उसके बिना, निरन्तर जाप के बिना जी ही नहीं सकते। जहां जाप रुका, तहां उनकी त्वचा जलने लगती है; उनका मन झुलस जाता है, उनका हृदय बैठने लगता है, अपनी आत्मा के अन्तर में इस गंगा-प्रवाह के रुकने की अपेक्षा वे मरना अधिक पसन्द करते हैं। स्मरण—नाम-स्मरण—उसकी (प्रभु की) दया है। परमात्मा के स्पर्श से ही मनुष्य में वह शक्ति आती है। यह भारतीयता, यह भारत की आत्मा है जो सभी सच्चे भारतवासियों में घर किये हुए है, चाहे वह हिन्दू हो; मुसलमान या सिख। आत्म-साक्षात्कार ही अनन्त है। ऊपर से ज्ञान-स्फूर्ति की प्राप्ति के लिए मनुष्य के सारे प्रयास व्यर्थ जाते हैं। हृदय की उदासी, मन की निराशा के सिवा कुछ हाथ नहीं लगता। समाधि के बिना, ऊपर से ज्ञान-स्फूर्ति प्राप्त हुए बिना

सब धोखा ही धोखा है। स्वामी जी पहुंचे हुए थे; उन्हें ऊपर से प्रेरणा, भावावेश होता था—इससे कोई इन्कार नहीं कर सकता। वे एक सच्चे भक्त थे। स्मरण उनकी आत्मा थी। वे खुदमस्ती से भरे हुए कवि थे। वे एक ऐसे पुरुष थे जो विश्व में सर्वत्र ईश्वर के अलौकिक सौंदर्य का दर्शन करके विह्वल रहते थे। और उनके हृदय की प्रायः निरन्तर यह आनन्दमय अवस्था उनकी अजस्र आत्म-साधना एवं उच्चतम प्रेरणा के निरन्तर धारा-प्रवाह के फलस्वरूप उद्भूत हुई थी। हम लोगों ने उन्हें यकायक भावावेश में आत्मविभोर होते देखा है। वे अपनी वर्षों की आत्म-साधना के सहारे उसी दृढ़ता से भावावेश के उच्च स्तर पर जीवन-यापन में समर्थ हुए थे, जो एक गणितज्ञ में होना चाहिए, उसी समर्पण से जो एक प्रेमी में होती है, उसी लापरवाही से जो एक दार्शनिक के योग्य है और एक विजयी वीर की संकल्प शक्ति से वे उदासी के क्षणों में भी उस उच्च स्तर से नीचे नहीं उतरते थे। स्वामी राम लहरों पर दृढ़ता से जमे हुए थे। उनका काव्य-प्रेम, उनका विशाल अध्ययन, उनका एकान्त प्रेम, उनकी निरन्तर काम करने की टेव—सभी ने उनको सहायता दी। किन्तु कोई भी व्यक्ति जिसमें थोड़ी-बहुत आध्यात्मिक दृष्टि हो, इस बात से असहमत नहीं हो सकता कि उनके व्यक्तित्व की वह सुन्दर प्रभा वैसी थी जो हमें सूक्ष्म रूप से चैतन्य महाप्रभु की याद दिलाती । भक्ति की धारा उनके भीतर उस समय भी अत्यन्त वेग से बहती रहती थी, जब कि वे ऊंचे से ऊंचे स्वर में अपने आप को साक्षात् ईश्वर कहा करते थे। सम्प्रज्ञात्-समाधि में जब वे कहते थे—मैं ईश्वर हूं, तब उनकी बन्द आंखों से आनन्दाश्रुओं का बहना, मुखमण्डल का दीप्त हो उठना और बालों का उस प्रेमावेश से कांप उठना जैसे समस्त विश्व को अपने अंक

में समेट लेना चाहते हों—निश्चय ही ऐसा भाव किसी दार्शनिक का नहीं होता। ऐसी लगन तो वैष्णव भक्त को ही शोभा देती है। प्रारम्भ के दिनों में जहां वे जनता के सामने बोलने खड़े हुए तहां कृष्ण का नाम लेते ही घंटों आँसुओं की झड़ी लग जाती थी। कदम्ब के वृक्ष पर वे उन्हें दिखाई देते थे, और हरद्वार की गंगा में स्नान करते हुए भी उनकी वंशीध्वनि उनके कानों में गूँजा करती थी। लाहौर के अपने घर में वे उदात्त प्रेम और लगन के साथ सूरसागर पढ़ा करते थे। एक दिन कृष्ण की झांकी दिखाई देते वह तुरन्त बेसुध हो गये। बेहोशी के बाद उसी दिन जब अपने कमरे में फन फैलाये एक सर्प दिखाई दिया तो ऐसा लगा जैसे उसके फन पर कृष्ण नाच रहे हों। उन्होंने मुझ से कहा था कि वे दिन-दिन भर और रात-रात भर कृष्ण के प्रेम में रोया करते थे और सवेरे उनकी स्त्री तकिये को आँसुओं से तरबतर पाती थी।

जागा और देखा कि तकिया है तर-बतर,
नींद में क्यों आंसू बहाये, कुछ पता नहीं !
मुझे अब कोई दुख-दर्द नहीं किन्तु फिर भी —
हृदय के अन्तराल से एकाध आंसू निकल ही पड़ता है।

—ए० इ०

हृदय की इस कोमलता ने कभी उनका साथ नहीं छोड़ा। उनके पद्य में, उनके गद्य में, उनके भाषण में, उनके एकान्त में, उनकी निद्रा में—सर्वत्र वे भावावेश में डूबे रहते थे। मैंने उन्हें मथुरा में यमुना की रेत पर प्रेमविभोर होकर नाचते देखा है। वशिष्ठ आश्रम के हरियाले फर्श पर भी मैंने उन्हें इसी प्रेम के वश रोते और चिल्लाते देखा है। उस समय भी उनके पास हाथ में वंशी वाले कृष्ण का एक छोटा सा चित्र था। मैंने पूछा—

यह क्या है ? वे हँस पड़े और बोले—यही तो राम का जादू है, जो किसी को दिखाया नहीं जाता। उन्होंने मुझे दिखाया और फिर अपने पास रख लिया।

उनके व्यक्तित्व का पुष्प यकायक ही खिल उठा था—यह बात उनके उस विशाल पत्र-संग्रह से स्पष्ट हो जाती है जो उन्होंने गुजरांवाला निवासी एक धन्ना भगत, एक बुड्ढे ब्रह्मचारी को लिखे थे, जिनकी देख-रेख में स्वामी राम के पिता ने इस प्रभावग्रहणशील छोटे बच्चे को रख दिया था, जब कि वह पहले पहल गुजरांवाला हाई स्कूल में भर्ती हुआ था। बचपन में स्वामी राम इस आदमी के बड़े श्रद्धालु थे, कुछ तो उसकी धार्मिकता के कारण और कुछ इस कारण कि इस धन्ना भगत में एक समय दूसरों के हृदय की बात जान लेने की अलौकिक शक्ति थी। वशिष्ठ आश्रम में रहते समय स्वामी राम ने एक बार मुझे इस आदमी के बारे में बहुत सी बातें बताई थीं। कैसे इस आदमी ने सूक्ष्म जगत् की कुछ सिद्धियां प्राप्त की थीं और कैसे वह इनके चक्कर में ऐसा फंसा कि अन्त में प्रकृत्या उसका पूर्ण पतन हो गया।

ये पत्र (जिनका हिन्दी-अनुवाद नीचे दिया है) स्कूल में पढ़ने वाले एक छोटे से बालक के हैं, जो अत्यन्त दरिद्रता में पला था, जिसके हृदय के भीतर सर्वोच्च संभव शिक्षा प्राप्त करने की लालसा भरी हुई थी, जिसके निर्धन मां-बाप उसकी सहायता न करके उलटे यह चाहते थे कि वह मेट्रिक पास करने के बाद परिवार के लिये कुछ कमाने-धमाने लगे और इस सब से बढ़कर उसके हृदय में तीव्र इच्छा थी जीवन के उस महान् स्वामी के दर्शन की, भगवान् से मिलने की, उनसे प्रेम करने की, उनको जानने की और स्वयं भगवान् हो जाने की। ये पत्र उसने बचपन

में लगातार कई वर्षों तक पूर्ण आत्मसमर्पण की भावना से उसको लिखे थे जिसको वह समझता था कि वह उसे ईश्वर तक पहुँचा देगा। ये पत्र वास्तव में उस महान् आत्मा के आत्म-चरित्र विषयक संकेत हैं जिनसे हमें अनायास उस निर्धन पंजाबी विद्यार्थी की आशाओं और आकांक्षाओं की एक झांकी सी दिख जाती है कि वह कैसे रहता था, कैसी बातें करता था, कैसे काम करता और कैसे सोचता था। स्वामी नारायण ने इन सब पत्रों को पुस्तकाकार में प्रकाशित करके बड़ा अच्छा किया है। उन्हीं में से कुछ उद्धरण दिनचर्या के रूप में नीचे दिये जाते हैं, क्योंकि ये सब पत्र तो उन्होंने उसी बुड्ढे धन्ना भगत की सेवा में अपने क्रिया-कलापों के विवरण स्वरूप उपस्थित किये थे। ऐसा मालूम होता है कि धन्ना भगत की ओर से बराबर रुपयों की मांग रहती थी और स्वामी राम जब विद्यार्थी थे तब, जब उन्हें एक छोटा-मोटा वज़ीफा मिलने लगा तब, जब वे कुछ विद्यार्थियों अथवा श्रीमानों के लड़कों को घर पर पढ़ा कर कुछ पैसे कमाने लगे तब, और जब वे प्रोफेसर होकर २००) रु० मासिक कमाने लगे तब; उन्होंने सब से पहले सदा इसी कठोर हृदय धन्ना भगत् की मांगों की पूर्ति की। २००) मासिक वेतन मिलने पर भी उन्हें कठिनाई उतनी ही थी, क्योंकि रुपया मांगने वालों की संख्या बढ़ गई थी। पिता रुपया मांगते थे, भाई रुपया मांगते थे और स्त्री को भी रुपया चाहिए था, जिसे लाहौर में घर का सब व्यय चलाना पड़ता था। इसके सिवा आगुन्तकों और अतिथियों की संख्या भी दिन-प्रति-दिन बढ़ती जाती थी, क्योंकि वे लाहौर में बड़े आदमी माने जाने लगे थे। एक बार स्वामी राम ने धन्ना भगत् के प्रति जो आत्मसमर्पण कर दिया था, वह प्रण इतना पूर्ण था कि

शायद ही उसके परामर्श या निर्देश के बिना उन्होंने कोई काम किया हो। यह भी ठीक है कि इस धन्ना भगत ने प्रारम्भिक अवस्था में अवश्य ही राम को थोड़ी-बहुत सहायता दी, कम से कम उनके हृदय की अन्तः प्रवृत्ति को आध्यात्मिक बातों की ओर मोड़ दिया और ऐसे समय बच्चे में उच्चतर वस्तुओं की आकांक्षा जाग्रत कर दी, जब उसे ऐसी प्रेरणा की सर्वाधिक आवश्यकता थी। स्वामी राम ने निर्वाण से कुछ ही पहले मेरे हाथों धन्ना को एक पत्र भेजने का अनुग्रह किया था और यह भी कहा था कि मैं उसे थोड़ी सी रकम दे दूं, क्योंकि उसे कोई खिलाने-पिलाने वाला नहीं है और वह बहुत बुड्ढा हो गया है। मृत्यु के कुछ दिन पहले भी राम को उसकी याद बनी हुई थी।

स्वामी राम के प्रारम्भिक जीवन के विषय में अंकित करने के योग्य कोई विशेष सामग्री नहीं है। वे सन् १८७३ ई० में मुरारिवाला ग्राम में पैदा हुए थे, जो पंजाब प्रान्त के गुजरांवाला जिले में है। राम के जन्म के थोड़े दिन बाद ही राम की माता चल बसी थीं। तब उनके बड़े भाई गोस्वामी गुरुदास और उनकी बुड्ढी चाची ने राम का लालन-पालन किया था। बचपन में उन्हें शंख-ध्वनि से बड़ा अनुराग था। राम एक उदास-वृत्ति के बालक थे। एकान्त से उन्हें बड़ा प्रेम था। वे अपने गुरु से प्रायः मन्दिर में जाकर थोड़ी देर के लिये भजन-प्रार्थना सुनने की छुट्टी मांगा करते थे, और कहते थे कि जितनी देर वहां लगेगी उतना ही समय मैं भोजन की छुट्टी में से कटा दूंगा। वे अपने ग्राम के मुस्लिम शिक्षक का हृदय से आदर करते थे और एक सच्चे शिष्य की भांति उसकी सेवा में तत्पर रहते थे। एक बार उन्होंने अपने पिता जी से कहा था—मौलवी साहब को अपनी

दूध देने वाली भैंस भेंट कर दीजिए, क्योंकि उन्होंने मुझे शिक्षा के रूप में उससे कहीं श्रेष्ठ दूध पिलाया है।

अपनी ग्राम्य पाठशाला की शिक्षा समाप्त करने के अनन्तर बालक रामतीर्थ मेट्रिक की शिक्षा पाने के लिये गुजरांवाला हाई स्कूल में भरती कराये गये। यहीं पर उनकी उस एक विचित्र प्रकार के व्यक्ति धन्ना भगत से भेंट और घनिष्टता हुई। बालक तीर्थराम उसको अपना आध्यात्मिक गुरु, ईश्वर के समान पूजनीय मानने लगे। ऐसा प्रतीत होता है कि उसी समय उन्होंने एक सच्चे सत्यनिष्ठ भक्त की भांति अपना तन-मन-धन इस पुरुष के अर्पण कर दिया था।

राम मार्च सन् १८८८ ई० में मेट्रिक पास हुए थे और उसी वर्ष इंटरमीजिएट श्रेणी में पढ़ने के लिये वे गुजरांवाला से लाहौर चले गए। लाहौर के मिशन कालेज से ही उन्होंने इंटर, बी० ए० और एम० ए० की परीक्षायें पास कीं। निम्नलिखित पत्र उन्होंने कालेज के अध्ययन-काल में ही लिखे थे।

इस पत्र-व्यवहार में हम उनके व्यक्तित्व को एक परम सुन्दर पुष्प की भांति धीरे-धीरे खिलता हुआ पाते हैं। राम कृष्ण के भक्त बन चुके थे, कृष्णावेश से ही प्रत्यक्षतः उनके हृदय की कली खिल रही थी। जो कुछ भी हो, इसमें सन्देह नहीं कि वे इस समय कृष्ण के समान ऊँचे लोकों में रहने वाले महात्माओं से स्फूर्ति और प्रेरणा प्राप्त कर रहे थे, जैसी कि सभी सच्चे जिज्ञासुओं को प्रायः मिला करती है।

१८ मई १८८८. मिशन कालेज में भरती हो गया। एक रुपया मासिक पर एक मकान भी मिल गया। समूचे प्रान्त में (मेट्रीकुलेशन-परीक्षा में) योग्यता-क्रम में मेरा नम्बर ३८ वां रहा किन्तु मुझे वजीफ़ा नहीं मिल सका। इस कालेज में मुझे साढ़े चार रुपया फ़ीस देना होगी।

१० जून १८८८. आपने पूछा है कि मैं महाराजा रंजीतसिंह की समाधि के पास वाले मकानों में रहने के लिये क्यों नहीं जाता हूँ। सबसे बड़ा कारण यह है कि मुझे वहां न तो उपयुक्त एकान्त ही मिल सकता है और न पठन-पाठन के लिये आवश्यक स्वतंत्रता।

नवम्बर १८८८. मैं अपने आपको, अपना सर्वस्व—आपके चरणों में भेंट करता हूँ। मेरे प्रभु! सम्भव है, मुझे आपकी दया से वजीफ़ा मिल जाय।

१६ मार्च १८८९. मेरे इष्टदेव! मुझे वज़ीफ़ा मिल गया।

३ फरवरी १८९०. मुझे इण्टरमीजिएट परीक्षा की फ़ीस भेजनी है। अभी तक भगवानदास से रुपया नहीं मिला है। मुझे अपने परिश्रम का भरोसा नहीं, केवल आपकी दया का भरोसा है। यदि आज्ञा करें तो परीक्षा में बैठूं अन्यथा नहीं। आज्ञा बिना न मैं परीक्षा की फ़ीस दूँगा, और न परीक्षा में बैठूंगा।

११ फरवरी १८९०. मेरा ख्याल ग़लत था। मैं अपनी इच्छा से कुछ न कर सका। साहब, कालेज के प्रिंसिपल ने मेरा नाम भेज दिया और आवश्यक काग़ज़ों पर हस्ताक्षर करने पड़े। अतः मुझे परीक्षा में बैठना ही होगा। मुझे इसके लिये भगवानदास से रुपया भी मिल गया। दया कीजिये, दया कीजिये, मैं आपका ग़ुलाम हूँ।

१८ फरवरी १८९०. कालेज से लौटने पर आज मैं विश्वविद्यालय का परीक्षाफल देखने गया। निकला नहीं था। जब मुकुन्दलाल को भेजा तो मालूम हुआ कि लड़कों ने गुजरात, हाफ़िज़ाबाद, स्यालकोट के परीक्षार्थियों के नाम वाला काग़ज़ फाड़ डाला है। कुछ मूर्ख ईर्ष्यालु लड़कों ने शायद इस क्षोभ से कि इन विशेष केन्द्रों का परीक्षाफल अच्छा है, ऐसी शैतानी की हो!

१० मार्च १८९०. लोग कहते हैं कि ईश्वर दया और शान्ति का भण्डार है। फिर आप क्यों क्रुद्ध होते हैं? आप मुझे क्षमा क्यों नहीं

करते ? सोचता हूँ कि शायद ईश्वर के यहां से आपको ज्ञात हुआ हो कि मैं अपने दोषों के कारण भगवान् के दर्शन नहीं पा सकता और यही जान कर आप मेरी अवहेलना कर रहे हैं। अन्यथा लोग हँसेंगे कि तीरथराम तो आपका बड़ा भक्त था, उसे भी ईश्वर के दर्शन न हो सके। परन्तु मेरी विनय है कि मुझे क्षमा कीजिये और मेरे दोषों पर ध्यान न दीजिये।

यदि तू मुझे भीतर बुलाये तो मैं केवल एक ही द्वार जानता हूँ।
यदि तू मुझे बाहर निकाले तो मैं केवल एक ही द्वार जानता हूँ!
मुझे किसी और द्वार का पता नहीं,
मैं इस सिर को पहचानता हूँ और जानता हूँ—
उसके योग्य स्थान है—तेरी देहरी ! —फ़ारसी से।

२० मार्च १८६०. फ़ारसी की परीक्षा समाप्त हो गयी। गणित भी समाप्त हो गया। बहुत ही कठिन विषय है। किन्तु आप की दया है, तो कुछ भी कठिन नहीं।

२३ मार्च १८६०. आज बहुत ही कड़े पर्चे आये। भौतिक विज्ञान की परीक्षा थी। यह विषय बड़ा दुरूह है।

६ जून १८६०. आप मुझे पत्र क्यों नहीं लिखते ? मैं अपनी ओर से पूरी-पूरी कोशिश करता हूँ किन्तु काम बहुत रहता है। कहने को दो दिन की छुट्टी मिली परन्तु कालेज में इतना काम दिया गया कि दो सप्ताह में भी समाप्त नहीं हो सकता। आज्ञा-पालन विषयक असमर्थता का आप कोई दूसरा अर्थ न लगायें।

११ जून १८६०. प्रिंसिपल ने मुझे नेत्र डाक्टर के नाम पत्र दिया था। उसने मुझे चश्मा लगाने की सलाह दी है। बम्बई से चश्मा मँगाने के लिये मुझे ५) भेजना होगा।

२५ जून १८६०. बम्बई से चश्मा आ गया। उसे लेकर फिर उसी नेत्र-विशेषज्ञ के पास गया था कि ठीक आया है या नहीं। उसने चश्मे

को ठीक बताया। मुझे अब काला तख्ता पहले से कहीं अच्छा दिखाई देता है। नेत्र-विशेषज्ञ की भांति प्रिंसिपल ने भी मुझ से बराबर चश्मा लगाने के लिये कहा है। दूर की चीज़ें अब मुझे पहले से अच्छी दिखायी देती हैं, इसीलिये मैंने उसे लौटाया नहीं। आप चश्मे के बारे में अपनी राय लिखें।

१६ जुलाई १८६०. हमारी छुट्टियां पहली अगस्त से प्रारम्भ होंगी। आज १६ जुलाई है। कृपा करके ऐसा कभी न सोचें कि मैं आपसे विमुख हुआ जा रहा हूँ। जब कोई मनुष्य किसी काम को हाथ में लेता है तो कुछ समय तक उसमें लगे रहने के बाद उसे उसके बारे भेद सूझने लगते हैं। और पता चल जाता है कि वह सर्वोत्तम ढंग से कैसे किया जा सकता है। फिर वह बिना अधिक सोच विचार के ही वैसा काम करने के ढंग और साधनादि समझ जाता है, भले ही वह उस कार्य-प्रणाली का कारण और हेतु न बतला सके किन्तु दिल में उसे उनके ठीक होने का निश्चय रहता है। मैं आपको कारण नहीं बता सकता, यह काम तो विद्वानों का है। हर एक मनुष्य दार्शनिक नहीं होता। और अधिकतर व्यक्ति बिना कारण निर्धारित किये ही अपने ढंग से कार्य-सम्पादन करते हैं। जब मैं छोटा बच्चा था, तभी मैं कविता के छन्दों के स्वरों और संगीत के विषय में अपना निर्णय रखता था। उस समय अपनी धारणा के विषय में न मैं तर्क दे सकता था और न उसकी व्याख्या कर सकता था। किन्तु अब १० वर्ष के उपरान्त जब मैंने छन्दः शास्त्र के नियमों का यथेष्ट ज्ञान प्राप्त किया है, तब मुझे मालूम हुआ है कि मेरी धारणायें बिल्कुल ठीक थीं। यदि तब मैं कोई ठीक नहीं बता सकता था तो उसका यह अर्थ नहीं कि मेरा निर्णय अशुद्ध था। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि यथार्थ बुद्धिवाले व्यक्ति को हर एक बात के लिये आवश्यक कारण ढूंढना कोई अत्यन्त आवश्यक नहीं। अतः कभी कभी कारणों पर अधिक ज़ोर दिये बिना ही हमें उनका निर्णय

मान लेना चाहिये, यदि हमें यह निश्चय हो कि वह व्यक्ति वास्तव में भला है और अपने शुद्ध अन्तः करण के अनुसार चलने वाला है।

मैं आपकी अवज्ञा करता हूं, ऐसा विचार ही कभी मेरे मन में नहीं उठता। आप भी सदा यही सोचें कि मेरे हर एक काम में आपकी आज्ञाकारिता का सच्चा भाव भरा रहे।

आपकी राय में मुझे अपनी छुट्टियां गुजरांवाले में आपके साथ बिताना चाहिए। आपकी आज्ञा है, तो मुझे जाना ही होगा। किन्तु मैं वहाँ सारा समय न बिताऊँ ऐसी मेरी दिली इच्छा है। मैं इसके लिये कुछ कारण उपस्थित कर सकता हूं। यद्यपि इस प्रकार सफाई देने की मेरी रंचमात्र भी इच्छा नहीं होती है। यह तो अपना समय नष्ट करना है। पर आप मुझे कहीं अवज्ञाकारी न समझ बैठें—यही निश्चय कराने के लिये लिखता हूं। मेरी विनय यही है कि आप अपने प्रति मेरी भक्ति में कभी संदेह न करें।

मेरे कारण ये हैं—मैंने एक ओर लाहौर में ठहरने और दूसरी ओर अपने घर जाकर इष्टमित्रों एवं सम्बन्धियों से मिलने-जुलने का अंतर समझ लिया है। केवल इतना ही नहीं कि वहां लिखने-पढ़ने के लिये आवश्यक एकान्त की सुविधा नहीं होती, वरन् मैंने देखा है कि वहां चित्त की वह गंभीरता नष्ट हो जाती है जो गूढ़ और कठिन प्रश्नों के हल के लिये अपेक्षित होती है। घर जाकर हम कुछ मोटे से हो जाते हैं और उत्तम विचारों की ग्राहक चिन्तनशील सूक्ष्म धारा लुप्त सी हो जाती है। कारण, वहां भौतिक सुखों के स्पर्श से बुद्धि विकृत रहती है। लाहौर से बाहर मेरे लिये सर्वत्र इस अनुचित स्पर्श की संभावना रहती है और मेरा मन बिगड़ जाता है। आप कह सकते हैं—लाहौर कोई जंगल नहीं, यहां भी तो मनुष्यों से मिलना-जुलना होता रहता है। यह ठीक है। किन्तु यहां केवल अपरिचितों से मिलना होता है; यहां उस गहरे प्रेम से लोगों से मिलना नहीं होता, जैसे मैं घर के लोगों से

मिलता हूं। लाहौर में मैं लोगों से मिलता हूं किन्तु मेरा ध्यान उनमें जमता नहीं। केवल ऊपरी ढंग से मिलना होता है। अपने लोगों से मिलने में हमें अपना मन उनमें लगाना पड़ता है। दूसरे लाहौर में मैं केवल विद्यार्थियों को जानता हूं, और उनका सहवास सदैव स्वास्थ्यवर्धक होता है।

आप यह भी पूछ सकते हैं कि क्या अन्य विद्यार्थी भी मेरी तरह लाहौर में रुकने वाले हैं। रुकनदीन जो सारे प्रान्त में सर्वप्रथम आया था, अपने घर एक दिन के भी नहीं जाता।

बिना मेहनत, बिना परिश्रम कोई चमक नहीं सकता। मैं कड़ी मेहनत करना चाहता हूं। यह सच है कि बहुत से कुशाग्रबुद्धि विद्यार्थी घर जायंगे, किन्तु मेरा विश्वास है कि संभवतः उन्हें अपने घरों में अध्ययन के लिये आवश्यक सुविधायें मिलती हों। इसके सिवा बहुत से मेरी तरह विवाहित नहीं हैं। और विवाहित होने पर भी वे प्रबल इच्छाशक्ति वाले हो सकते हैं, जो अपने मन को बाहिरी आमोद-प्रमोद के साधनों की ओर भटकने से रोक सकते हों। मैं उतना शक्तिसम्पन्न नहीं। मुझे डर है कि वहां मेरा मन बिगड़ जायगा।

जिसे लोग बुद्धि कहते हैं, वह भी अभ्यास एवं परिश्रम से उन्नति करती है। यदि कोई विद्यार्थी बिना मेहनत अच्छे नम्बरों से परीक्षा पास कर लेता है, तो वह परीक्षा भर पास कर लेता है, उसे कभी पढ़ने का मज़ा नहीं मिल सकता। क्या आपको याद नहीं कि उस बार एक मनुष्य ने आपसे अपने नाम पर एक कविता बनादेने की प्रार्थना की थी। दुनियां को वह भले ही यह धोखा दे सके कि वही उस कविता का रचयिता है। वह तो कहने-सुनने के लिये रचयिता बना था. उस कविता के रचने का सच्चा सुख तो आपने ही भोगा था। वह तो उस आदमी की तरह है जिसे बिना कमाये ही बहुत सा धन मिल जाता है। ऐसे के पास विशाल सम्पत्ति हो पर उसे उसका स्वाद कभी नहीं, मिल सकता। स्वाद तो केवल उसे ही प्राप्त होता है जो पसीना बहाकर धन कमाता है।

दया करके मुझे अपने अध्ययन से वंचित न करें। समझ लीजिये मैं कहीं विदेशों में चला गया हूँ। मुझे दो वर्ष की छुट्टी दे दें। जब पुत्र लौटेगा तब तो आपका है ही। जब सैनिक अपनी पूरी आत्मा से लड़ता है, तो उसे यह पता नहीं रहता कि वह किसका सैनिक है, उसका स्वामी कहाँ है अथवा स्वामी के साथ उसका क्या सम्बन्ध है। फिर भी सारे समय वह रहता तो है राजा का ही सैनिक, और अपनी सारी शक्ति के साथ राजा के प्रति अपनी स्वामिभक्ति को चरितार्थ करता है। यही हाल मेरा है। यह न सोचें कि मैं गुजरांवाला न जाकर आपकी अवज्ञा करना चाहता हूँ।

२ दिसम्बर १८६०. मैं आज कालेज गया था, कुछ ऐसा सन्देह होता है कि अब मैं कालेज में निःशुल्क विद्यार्थी न रह सकूंगा। प्रोफेसर *मिस्टर गिलबर्टसन* जो मेरे कालेज की आधी फ़ीस दिया करते थे, कहते हैं कि अब उनके पास कालेज का कोई ऐसा काम नहीं रह गया है जो वे मुझे दे सकें। हाँ, यदि वे मेरे लिये कोई उपयुक्त कार्य निकाल सकें तो मैं निःशुल्क विद्यार्थी रह सकूंगा।

४ दिसम्बर १८६०, कृपापत्र मिला। मुझे तो केवल आप ही का विश्वास है। मैं जानता हूँ कि आप मेरी फ़ीस का कोई न कोई प्रबन्ध करेंगे ही; या तो स्वयं नक़द भेजेंगे अथवा किसी के हृदय में प्रेरणा करेंगे। आप प्रिंसिपल और प्रोफ़ेसर के द्वारा ऐसा कुछ प्रबन्ध करा ही देंगे जिससे मुझे फीस न भरनी पड़ेगी।

१० जनवरी १८६१. कालेज गया तो देखा कि फ़ारसी पाठ्यक्रम से हटादी गयी है। बड़ा अच्छा हुआ। ईश्वर की कृपा समझना चाहिए।

१८ जनवरी १८६१. प्रिंसिपल ने मेरी फ़ीस माफ़ करदी है, उसके बदले मुझे व्याख्यानों की नकल करने का थोड़ा काम दिया गया है, मैं उसे करूंगा।

२० फरवरी १८९१. प्रिंसिपल ने रुकनदीन को आज्ञा दी है कि मैं शारीरिक व्यायाम किये बिना कालेज से घर न जा सकूं। वे समझते हैं कि मैं बहुत कमज़ोर और रोगी हो गया हूँ।

१ अप्रैल १८९१. विश्वविद्यालय के अधिकारी गणित के कुल नम्बरों को घटाकर १५० से १३० करने वाले हैं और अन्य विषयों के नम्बर बढ़ाने वाले हैं। इसका अर्थ यह होता है कि वे अन्य विषयों को भी गणित के समान गौरवान्वित करना चाहते हैं। सचमुच यह भयानक बात है, स्पष्ट ही पागलपन। इसका अभिप्राय यह है कि वे कर्म और अकर्म के बीच का अन्तर धो डालना चाहते हैं। हमारे गणित के प्रोफेसर कह रहे थे कि वे इसके विरुद्ध आन्दोलन करेंगे। क्या परिणाम होगा—ईश्वर जाने!

७ अप्रैल १८९१. मैं सवेरे घूमने गया हुआ था। लौटने पर देखा, ताला टूटा हुआ है, किवाड़ खुले हुए हैं और पीतल के बर्तन लोटा आदि सब सामान ग़ायब हो गया है। ईश्वर को अनेक धन्यवाद! मेरी पुस्तकें सुरक्षित हैं। चोर अपनी टोपी यहां भूल गया है।

९ मई १८९१. लाला अयोध्या प्रसाद ने मुझसे कहा है कि उन्होंने मेरे लिये दो मकान ढूँढ़े हैं, एक तो मुझे इसलिये पसन्द नहीं आया कि चेल के हाकिमरायजी आर्यसमाजी वहां रहते हैं। दूसरा उतना सुविधाजनक नहीं है जितना कि यह, जिसमें मैं रहता हूँ। और एक बड़ी बुराई यह है कि इस दूसरे मकान के मालिक मुझसे कोई किराया नहीं लेना चाहते; किन्तु चाहते हैं कि मैं उनके लड़के को प्राइवेट तौर पर पढ़ाया करूं। इसका यह अर्थ यह होता है कि वे एक रुपया मासिक किराये का मकान देकर और नहीं तो कम से कम २५) मासिक का काम मुझसे लेना चाहते हैं। इतना ही क्यों, मुझे मुफ़्त मकान देने का उनका अनुग्रह मेरे सिर पर लदा भी रहेगा। यही कारण है कि मैं इस दूसरे मकान में भी जाना पसन्द नहीं करता हूँ।

११ मई १८८१. मेरी चारपाई का बुनाव एकदम टूट गया था। रस्सियाँ पुरानी हो गई थीं, इस लिये मैंने पाँच आने की रस्सियाँ लेकर उसे फिर से कसवा लिया है। मेरी चारपाई अब खूब कसी हुई नयी जैसी हो गई है। मैं बड़ा खुश हूँ।

१६ मई १८८१. आज जब मैं कालेज गया तो सभी सहपाठी मुझे घेर गये और कहने लगे कि अब तुम्हें कालेज के बोर्डिंग में आकर रहना होगा, प्रिंसिपल साहब ने ऐसी आज्ञा दे रखी है। दो तीन घंटे के बाद कालेज के डाक्टर से मेरी भेंट हुई। उन्होंने भी मुझ से पूछा—"क्या तुमने अपने बारे में प्रिंसिपल की नई आज्ञा नहीं सुनी है?" मैंने कहा—"मुझे अपने माता-पिता से (आपसे अभिप्राय था) परामर्श लेना होगा।" कालेज के डाक्टरने उत्तर दिया—"किन्तु हर हालत में प्रिंसिपल की आज्ञा का पालन करना ही पड़ेगा।"

कालेज के समय के बाद प्रिंसिपल ने मुझ से कहा—मैंने यह आज्ञा तुमको तुम्हारी भलाई के लिये दी है। तुम कालेज के होस्टल में आकर रहो। सच्ची बात यह है मेरे कुछ साथी एक दिन आये थे और जब उन्होंने मुझे इस अन्धी कोठरी में रहते देखा और मेरी खाने-पीने की अन्य कठिनाइयों का अनुभव किया, जैसे मुझे प्रतिदिन कालेज आने जाने में कितना चलना पड़ता है, तो उन्हें दुःख हुआ। उन्हीं लोगों ने सहानुभूति के मारे मेरे विरुद्ध यह षड्यन्त्र रचा। वे मुझे होस्टल में घसीट ले जाना चाहते हैं। कहते थे कि हम तुम्हें यहाँ नहीं रहने देंगे। हिसाब लगा कर मुझे बताया गया कि खाना-पीना, किराया आदि सब मिला कर मुझे कुल १३॥-) देने होंगे। यह तो मैं जानता हूँ कि मनुष्य को चाहे जिस परिस्थिति में रहना पड़े, यदि वह चाहे तो सभी जगह अपने मन को एकाग्र कर सकता है। होस्टल पढ़ने-लिखने के लिये बुरी जगह नहीं। प्रान्त के बहुत से विद्यार्थी वहीं रह कर प्रथम आये हैं।

मैंने बारह आने की कुछ पुस्तकें मोल ली हैं। अब मेरे पास एक पैसा भी नहीं बचा है। मैं अयोध्याप्रसाद जी के पास जाऊँगा। यदि आपकी यह राय बैठे कि मुझे होस्टल में नहीं जाना चाहिए तो कृपया यह लिख भेजें कि मुझे प्रिंसिपल को क्या उत्तर देना चाहिए।

२३ मई १८६१. कालेज से लौटने पर आज जब मैंने कोठरी के किवाड़ खोले तो एक साँप मेरी ओर तेजी से झपटा। वह एकदम काला विषधर था। मैं सहायता के लिये चिल्लाया और लोगों ने आकर उसे मार डाला। अब कालेज के सभी आदमी मेरे यहाँ रहने के एक-दम विरुद्ध हो गये हैं। सब के सब होस्टल में बुलाना चाहते हैं। वे कहते हैं कि यदि मैं चाहे जहाँ अपने अध्ययन पर अपना मन एकाग्र करने की योग्यता संपादन नहीं करूँगा तो मेरे लिये ठीक ढंग से मनुष्यों के बीच में रहना ही सम्भव न होगा। जो तैरना सीखना चाहता है और पानी में पैठने से घबराता है; वह तैरने की कला कैसे सीख सकता है?

लोग कहते हैं कि बड़े होने पर न मनुष्य को ऐसा एकान्त स्थान मिल सकता है और न ऐसा अवकाश ही मिल सकता है कि वह अकेले अपने आप में ही मगन रहे। इसलिये वे लोग चाहते हैं कि मैं एकदम अकेले रहने के अभ्यास को छोड़ कर लोगों के साथ रहने की आदत डालूँ। कालेज के डाक्टर भी मुझे समझा रहे थे कि मैं शीघ्र ही भीड़-भाड़ के बीच अपने अध्ययन पर ध्यान लगाने का अभ्यस्त हो जाऊँगा। केवल यही डर है, अन्यथा मेरा होस्टल में रहना अनिवार्य सा है। मुझ से उनका विरोध न होगा। आप ऐसा आशीर्वाद दें कि मैं वहाँ भी अपनी पढ़ाई पर उसी प्रकार दत्तचित्त हो सकूं जैसा यहाँ रहता हूँ।

२५ मई १८६१. मैंने हिसाब लगाकर देख लिया है यदि मैं होस्टल में जाता हूँ तो—

(१) मुझे छुट्टी के महीनों के लिये किराये के रूप में कुछ न देना होगा।

(२) भोजन के लिये भी केवल उतने दिनों का व्यय देना होगा जितने दिन मैं खाना खाऊंगा। यदि कोई अतिथि आ जायगा तो उसके लिये उसी हिसाब से व्यय करना होगा।

मैंने होस्टल के अध्यक्ष से कहा था कि मेरे अभिभावक इतना सारा व्यय देने में असमर्थ हैं। उन्होंने हिसाब लगाया और बतलाया कि मैं यहां जितना व्यय कर रहा हूं, उससे केवल एक रुपया बढ़ जायगा। और जब होस्टल में मुझे अच्छा भोजन मिलने लगेगा, तो वे कहते थे कि मैं अपने अन्य व्ययों में १ रुपये की कमी आसानी से कर सकूंगा। एक बात का उन्होंने वहां और सुभीता बतलाया। वहां मुझे पुस्तकें मोल न लेनी पड़ेंगी, बहुत सी मैं अपने मित्रों से मांग कर पढ़ सकता हूँ। और अन्त में उन्होंने यह आश्वासन दिया कि यदि वहाँ मुझे कोई अड़चन प्रतीत हो तो मैं छुट्टियों के बाद फिर अपना निवास बदल सकता हूं।

५ दिसम्बर १८९१. मैं आपको पत्र लिखने के लिये पोस्टकार्ड अपने साथ लिये रहा। किन्तु मैं इधर गणित का एक बहुत ही जटिल प्रश्न हल करने में लगा हुआ था, इसलिये उस दिन यह पत्र अधूरा ही मेरी जेब में पड़ा रहा। कालेज के अन्य विषयों का काम भी अभी बाकी पड़ा है। पूरे २४ घंटों के बाद मैं उस प्रश्न को हल कर सका हूँ। अब मैं कालेज के दूसरे कामों में लगूंगा।

११ फ़रवरी १८९२. मैं अभी तक कालेज के होस्टल में नहीं जा सका हूँ। शायद आज चला जाऊं। मेरे मकान में फिर एक नयी चोरी हुई। मेरी तकिया, बिस्तर, गद्दा और कुछ बर्तन चले गये। किन्तु पुस्तकें सब सुरक्षित हैं। लाला ज्वालाप्रसाद और भण्डूमल कहते थे कि वे मेरे लिये नये कपड़े सिलवा देंगे। उन्होंने मुझे आश्वासन दिया—गोस्वामी जी! आप चिन्ता क्यों करते हैं? हम सब तरह से आपकी सहायता के लिये उद्यत रहेंगे।

११ जून १८९२. आज कोई सज्जन मुझे देने के लिये प्रिंसिपल साहब को ५३ रुपये दे गये। प्रिंसिपल ने मुझे बुलाकर कहा—ये रुपये ले जाओ। मैंने उस दाता का नाम पूछना चाहा किन्तु प्रिंसिपल ने उन सज्जन का नाम नहीं बतलाया। मेरा ऐसा अनुमान है कि शायद प्रिंसिपल साहब ने ही स्वयं यह रकम मुझे दी है। तब मैंने उनसे प्रार्थना की कि आप आधी रकम कालेज की फ़ीस आदि के लिये सुरक्षित रख लें और आधी मुझे दे दें। पर उन्हें यह प्रस्ताव पसन्द न आया। इसलिए मैंने वह रकम लेकर लाला अयोध्याप्रसाद जी को दे दी है।

९ जुलाई १८९२. पिछली रात जब मैं बाज़ार से थोड़ा सा दूध पीने के लिये गया था, तो मेरा एक जूता खो गया। वह अवश्य नाली में बह गया। मैंने उसे ढूंढने की बड़ी कोशिश की परन्तु वह मिला नहीं। प्रातः काल मुझे एक अपने जूते को और एक पुराने ज़नाने जूते को जो संयोग से घर में पड़ा हुआ था पहन कर कालेज जाना पड़ा। मेरा यह जूता भी अब बहुत पुराना हो गया था। इसलिए मैंने बाज़ार से एक नया जोड़ा सवा नौ आने में मोल लिया है।

२ अगस्त १८९२. मैं पुनः कालेज में भर्ती हो गया हूँ। कालेज के झण्डूमल हलवाई ने बड़े आग्रह से मुझे नित्य उसके घर भोजन करने का निमंत्रण दिया है। उसके आग्रह को मैं टाल न सका, इसलिये उसके आतिथ्य को स्वीकार करने के लिये राज़ी हो गया हूँ। मैं देखूंगा, इसका मेरे ऊपर कैसा प्रभाव होता है। यदि वह सब भाँति ठीक सिद्ध हुआ तो उसके घर पर भोजन करता रहूँगा।

९ अगस्त १८९२. मैं झंडूमल के यहाँ भोजन कर रहा हूं। वह प्रेम के साथ खिलाता है। जब आप यहाँ आयें और मेरे लिये उसका आतिथ्य स्वीकार करना ठीक न समझें तो मैं खाना छोड़ दूंगा।

६ अक्टूबर १८९२. आज से कालेज का नव वर्ष प्रारम्भ होता है। मैं

किसी प्रोफ़ेसर से मुझे कोई ट्यूशन दिलाने की बात नहीं कर सका। बहादुर चंद से भेंट हुई थी। उन्होंने मुझे बताया कि लद्धाराम एक्जी-क्यूटिव इंजीनियर अपने लड़के के लिये प्राइवेट ट्यूटर चाहते हैं। उसे दो घंटे पढ़ाने के बदले मुझे पन्द्रह रुपया मासिक मिल जायगा। मुझे पूरी आशा है कि ईश्वर कोई न कोई मार्ग निकाल ही देगा।

६ अक्टूबर १८६२. जिस घर में रहता था, वह घोर वर्षा के कारण यकायक गिर पड़ा। झण्डूमल ने मेरा सामान और पुस्तकें किसी तरह बचा ली हैं। अभी मुझे दूसरा मकान नहीं मिला है। मैं पिछली रात झण्डूमल के घर पर सोया और उन्हीं के साथ भोजन भी किया।

१८ अक्टूबर १८६२. मैंने अपने प्रोफ़ेसरों से ट्यूशन के बारे में बात की। उन्होंने मुझे सलाह दी है, इस तरह मेरा बहुत सा समय नष्ट होगा और विशेष कर जब परीक्षा इतनी समीप है। उनका कहना बहुत ठीक मालूम होता है। क्योंकि १५ रु० मासिक कमाने की अपेक्षा मेरा समय अधिक मूल्यवान् है।

आपको यह सूचना देते हुये दुख होता है कि हाल ही में मेरे दो मित्रों की मृत्यु हो गयी है, एक खलीलुल रहमान बी० ए० और दूसरे लाला शिवराम बी० ए० की। ईश्वर उनके परिवार वालों पर दया करे! ये दोनों घटनायें सचमुच बड़ी दुखद हुई हैं।

३१ दिसम्बर १८६२. मेरी ही कक्षा का एक विद्यार्थी मुझ से गणित पढ़ने लगा है। मैंने अपने पारिश्रमिक के बारे में उससे कोई बात नहीं की। परन्तु वह बड़ा सज्जन है, किसी न किसी प्रकार मेरे श्रम की भरपाई कर ही देगा।

सरदार अब कुछ दिनों बाद अपनी परीक्षा समाप्त कर लेगा। जिस सहपाठी को मैंने पढ़ाना प्रारम्भ किया था, वह मेरे पढ़ाने के ढंग से बड़ा प्रसन्न है। वह कम से कम मुझे इतना तो देगा ही जिससे मैं अपना मकान किराया और दूध का व्यय चुका सकूं। इस के अतिरिक्त

सरदार मुझ से अपने साथ रहने के लिये कह रहा था। जब आप यहां पधारेंगे तब आपके आदेशानुसार कार्य करूंगा।

२३ जनवरी १८८३. जब मैं कालेज पहुंचा तो कालेज के चपरासी ने मुझ से कहा कि प्रोफ़ेसर गिल्बर्टसन मुझे बुलाते थे। क्लास की घंटी बज चुकी थी, मैं दौड़ा हुआ प्रोफ़ेसर साहब के पास गया। उन्होंने मुझे एक छोटी सी पुड़िया दी, उसे लेकर मैं क्लास में दौड़ गया। आज मेरे पास एक पैसा भी न था। तीन घंटे बाद जब मैंने वह पुड़िया खोली तो देखा कि उसमें तीस रुपया लिपटे हुए हैं। मैं पुनः उन दयालु प्रोफ़ेसर के पास गया और प्रार्थना की कि मुझे इतने रुपयों की आवश्यकता नहीं है। मैंने चाहा कि बीस रुपया उन्हें लौटा दूं किन्तु वे पूरी रक़म लेने के लिये आग्रह करने लगे। अब यदि आप आ जावें तो इन बीस रुपयों का बोझ मेरे सिर से उतार लें। यदि आप उचित समझें तो इनमें से कुछ 'जितना आप चाहें' मेरी मां को दे दें। मैं रुपया डाक से इसलिए नहीं भेजता हूं कि आपके दर्शन करना चाहता हूं। मैं दस रुपया इसलिए अपने पास रख छोड़ना चाहता हूं कि मुझे दो माह की फ़ीस देनी है। अपने दैनिक व्यय के लिये तो ज्वालाप्रसाद जी का मुझे सहारा है ही।

१२ फ़रवरी १८८३. मैं होस्टल में आ गया हूँ। मैं प्रातः का भोजन होस्टल में करूंगा और सायंकालीन झण्डूमल के यहां। झण्डूमल जी ने बड़ी कठिनाई से मुझे प्रातः काल होस्टल में भोजन करने की अनुमति दी है। मैं अब अपनी जन्मभूमि मुरारी वाला को मुरारिवाला कहा करूंगा। मुरारि कहने से कृष्ण की याद आयेगी।

१८ फ़रवरी १८८३. झण्डूमल ने मेरे लिये दो कुर्ते और एक पाजामा सिलवाया है। लाला ज्वालाप्रसाद ने भी मुझे उनके चाहे जो कपड़े पहनने के लिये कह रखा है। किसी बात का कष्ट नहीं है।

११ मार्च १८९३. आज रोल नम्बर मिला है। कालेज की परीक्षा में मुझे गणित में १५० नम्बरों में से १४८ नम्बर मिले हैं।

१७ अप्रैल १८९३. (एक मित्र का पत्र) तीर्थराम बधाई! तुम बी० ए० की परीक्षा में प्रान्त भर में सर्व प्रथम आये।

११ जुलाई १८९३. भाई—जिसे मैं पढ़ाता था और जो चीफ़ कालेज से मिडिल स्कूल की परीक्षा में बैठा था—पहले फेल हो गया था। किन्तु उसके पर्चे फिर से जाँचे गये और वह पास हो गया। बड़ी प्रसन्नता हुई!

१७ जुलाई १८९३. आज मैं नदी किनारे घूमने गया था। जब मैं नावों के पुल के पास टहल रहा था तब भाग्य से मिस्टर बैल, गवर्नमेण्ट कालेज के प्रिंसिपल उधर से निकले। वे बड़े उत्साह और प्रेम के साथ मुझसे मिले, बड़ी देर तक बातें करते रहे। पहले मेरे चश्मे के बारे में पूछा और फिर पूछा कि मैं छाता क्यों नहीं लगाता और इसी तरह की अनेक बातें करते रहे। रिमझिम रिमझिम बूंदें पड़ रही थीं। इस लिए उन्होंने छाते के बारे में पूछा था। फिर मुझे उन्होंने अपनी गाड़ी में बैठा लिया और गवर्नमेण्ट कालेज तक ले आये। गाड़ी में मैंने उन्हें अनेक अंग्रेज़ी कवितायें जो मुझे कंठाग्र थीं, सुनाईं। मैंने उनको यह भी बताया कि मैं अपनी पाठ्य पुस्तकों के अतिरिक्त हर विषय की पाँच छः पुस्तकें और पढ़ा करता हूँ। मेरे विषय में ये सारी बातें सुनकर वे बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने मेरे माता-पिता के बारे में भी पूछा—काफ़ी धनी हैं या नहीं। मैंने कहा-वे तो बड़े गरीब हैं। उन्होंने मुझसे यह भी पूछा कि मैं परीक्षा के पश्चात् क्या करना चाहता हूँ। मेरा उत्तर था—भविष्य के विषय में मैंने कोई योजना नहीं बनाई है। हाँ, यदि कोई इच्छा है तो केवल यही कि मेरा सारा जीवन—उसकी एक-एक श्वास ईश्वर की सेवा में, मनुष्य की सेवा में लग जाये; मनुष्य की सेवा ही ईश्वर की सच्ची भक्ति है और लोगों

श्री धन्ना भगत जी

को गणित की शिक्षा देकर ही मैं लोगों की सब से उत्तम सेवा कर सकता हूँ।

यही बातें करते-करते हम लोग गवर्नमेण्ट कालेज के अहाते में उनके घर पर पहुंच गये। वहां वे मुझे व्यायामशाला में लिवा ले गये, वहां बहुत से लड़के तरह-तरह की व्यायाम करते थे। उन्होंने मुझ से पूछा कि मैं कौन सी व्यायाम पसन्द करता हूँ। मैंने कहा—मैं तो चारपाई की व्यायाम करता हूँ अर्थात् मैं चारपाई को ऊपर-नीचे उठाकर व्यायाम कर लिया करता हूँ। उन्होंने तुरन्त एक चारपाई मंगायी। मैंने अपने ढंग से उसके दो पाये पकड़ कर उसे सौ बार ऊपर नीचे उठाया। तब उन्होंने अपने लड़कों से भी उसी प्रकार चारपाई उठाने के लिये कहा। वे बीस बार से अधिक न उठा सके। इस प्रकार लड़कों की अनेक प्रकार की कसरतें देखकर अन्त में उन्होंने हर एक से सलाम किया और अपने घर चल दिये। उन्हें जाता हुआ देखकर मैं आगे बढ़ा और कहा—श्रीमान् जी, मैं आपकी इस दया के लिये धन्यवाद देना चाहता हूँ। मेरा धन्यवाद और सलाम स्वीकार करते हुए वे हँसते हुए विदा हो गये।

४ अगस्त १८९३. मुझे यहां अनहद शब्द बहुत सुनाई देता है। यह स्थान दिव्यानंद से भरा मालूम होता है।

१८ अगस्त १८९३. मैंने 'योगवाशिष्ठ' पढ़ना प्रारम्भ किया है।

२५ दिसम्बर १८९३. आज दादा भाई नौरोजी, मेम्बर ब्रिटिश पार्लियामेंट ३ बजे की गाड़ी से यहाँ आये। शहर ने उनका अत्यन्त भव्य स्वागत किया। लोगों के उत्साह की कोई सीमा नहीं। कांग्रेसवालों ने तो उन्हें वही गौरवास्पद स्थान दे रखा है जो हमारे यहां ब्रह्मा और विष्णु का है। शहर में स्थान-स्थान पर अनेक सुनहरी मेहराबें बनायी गयी हैं। पत्र लिखने के समय शहर में उनका जलूस निकाला जा रहा है, हज़ारों की भीड़ है। लोगों की प्रसन्नता का ठिकाना नहीं, इधर उधर

पड़ता है किन्तु मेरा हृदय शान्त है। आखिर यह आल्हाद किस लिए? ईश्वर को अनेक धन्यवाद कि मेरा चित्त विचलित नहीं है!

३० दिसम्बर १८९३. आप मुझसे रुष्ट हैं। क्षमा कीजिये, मुझ अनुभव-हीन नवयुवक को क्षमा कीजिये। उसकी त्रुटियों की ओर से ध्यान हटा लीजिये। लोग चढ़ने में गिर-गिर कर ही तो घोड़े पर चढ़ना सीखते हैं। तैराक डूब कर मरते देखे गये हैं। यदि आपको रुपये की आवश्यकता हो, तो मैं यहां से कुछ भेज सकता हूँ। आप किसी प्रकार कभी मुझसे रुष्ट न हों। मैंने इस वर्ष बाहरी पुस्तकें मोल लेने में रुपया व्यय नहीं किया। केवल पाठ्य पुस्तकें भर क्रय की हैं। मुझे पुस्तकें लेने की बुरी टेव थी, पर अब उसे छोड़ दिया है। मैं अपने ऊपर तो सदा कम से कम व्यय करने की चेष्टा में रहता हूं। हां, दूध पर अवश्य कुछ न कुछ व्यय हो जाता है। मैंने कांग्रेस का अधिवेशन देखा—केवल भारत के विभिन्न स्थानों से आये हुए बड़े बड़े वक्ताओं और व्याख्याताओं को सुनने और देखने के लिये कि उनकी भाषण-कला का मेरे ऊपर क्या-कैसा प्रभाव पड़ता है। उस दिन मैंने ईश्वर को धन्यवाद दिया था जब मेरे हृदय में दादा भाई नौरोजी के स्वागत में जनसाधारण की भांति छूँछी प्रसन्नता मानने की लालसा जाग्रत न हुई थी और आज यह कहना पड़ता है कि कांग्रेस के प्रभावशाली वक्तृत्व से मुझे कोई विशेष आह्लादकारक प्रेरणा नहीं प्राप्त हुई।

१० जनवरी १८९४. अपनी बहन की मृत्यु का संवाद मिला था। मुझे बहुत दुख हुआ। किन्तु अपने दुखों की चर्चा करना ठीक नहीं मालूम होता। मैं फूट-फूट कर घंटों तक रोता रहा। मैं उसे जितना प्यार करता था, उतना और किसी को नहीं।

१४ जनवरी १८९४. मैं बड़ी उलझन में हूं। प्रश्न यह है कि मुझे डिगरी लेने के लिये नया गाउन बनवाना चाहिए या नहीं; उसमें ७०) रु० लगेंगे। किसी दूसरी जगह से उसका मंगनी मिल जाना

दुस्साध्य मालूम होता है। मैंने इस वर्ष बहुत रुपया व्यय किया है। मुझे चहल के लछमनदास मिले थे। मैं गाउन उधार लेने में असमर्थ रहा। संभव हो तो आप चहल के हकीम राय से उनका गाउन मेरे लिये मांग दें।

मेरे प्रोफेसर अपना गाउन मुझे दे रहे थे परन्तु वह अमरीकन फैशन का है। कुछ थोड़े से परिवर्तन और एक नवीन 'हुड' के साथ वह मेरा काम दे जायगा। इस काट-छांट में पांच रुपया लगेंगे। क्या किया जाय?

* * *

११ अप्रेल १८९४. मैंने अभी अभी एक नई भावना पढ़ी है—

खाली हाथ वाले श्रेष्ठ होते हैं धनवानों से।
सुरा के खाली प्याले को भरने के लिये
सुरा पात्र को ही सिर झुकाना पड़ता है।

—दाग

३० अप्रेल १८९४. लाला रामशरणदास अपने साथ रहने के लिये मेरे ऊपर बड़ा जोर डाल रहे हैं। उन्होंने कहा है—मैं अपने लिये चाहे जो कमरा पसन्द कर लूं। लाला साहब रात में अपने शहर वाले मकान में चले जाते हैं और नौकर बंगले की चौकसी करते हैं। लाला साहब को एक छोटा-मोटा साधु समझना चाहिए। ये सचमुच बड़े भले हैं!

२ मई १८९४. आप आये नहीं। दया करके मेरी किसी बात से कष्ट न हों। मेरा शिष्य बी० ए० की परीक्षा में पास हो गया है। मैं कितना प्रसन्न हूँ!

१० मई १८९४. संसार में अपना कुछ भी नहीं। यदि हम शान्ति चाहते हैं तो हमें अपनी देह को अपना नहीं, वरन् उसी प्रभु का समझना चाहिए। हम रात-दिन उसी का काम करते रहें।

५ जून १८९४. महाराजजी! ईश्वर बड़ा भला है। वह मुझे बहुत ही भला लगता है। वह कितना उदार है। आपको उसके साथ शान्तिपूर्वक रहना चाहिए। वह कभी कठोर होता ही नहीं! हां, वह खिलाड़ी अवश्य है और कभी कभी जिसे हम कष्ट और यातना समझते हैं, वे उसके खेल की तरंगे होती हैं। अब मुझे उस प्रभु की बहुत सी बातें मालूम हो गई हैं। मैं आपको किसी दिन सुनाऊंगा।

जिस मेज़ पर मैं यह पत्र लिख रहा हूँ, शकर के कुछ दाने बिखरे हुए हैं, और तीन चार चीटियाँ उन दानों के चारों ओर इकट्ठी हो गयी हैं। वे सब की सब मेरे काले अक्षरों की ओर ताक रही हैं कि वे कैसे मेरी कलम से इस काग़ज़ पर निकल रहे हैं। उनकी बातों का कुछ ठिकाना नहीं। उनकी यही बातें, जैसी मैंने सुनी हैं, आपको सुनाता हूँ।

किन्तु सब से पहले मैं यह बतला दूँ कि यद्यपि मेरी लिखावट बहुत भद्दी है, उसे सुन्दर किसी प्रकार नहीं कहा जा सकता। फिर भी चीटियों को ऐसी विचित्र प्रतीति हो रही है जैसी हम लोगों को चीन की चित्रकारी अद्भुत लगती है।

सबसे पहले बोलने वाली चीटी, जिसने वितण्डावाद शुरू किया, बहुत ही छोटी, बिल्कुल बच्चा चीटी है। इस बच्चा चीटी ने कहा—देख बहन, इस क़लम की कारीगरी तो देखो! कैसे गोल-गोल और सुन्दर-सुन्दर अक्षर इस काग़ज़ पर ढाल रही है। इनकी बदौलत काग़ज़ का यह टुकड़ा प्रेम-पत्र बन रहा है। आदमी उसे बड़े प्रेम से उठाते और पढ़ते हैं। सचमुच यह लेखनी काग़ज़ पर मोती बिखेर रही है! कैसा रंग, कैसा ढंग, कुछ अक्षर तो बिल्कुल हमारे भाई-बन्धु से लगते हैं—सचमुच बड़े ही सुन्दर!

इतना कह कर पहली चीटी जब चुप हो गयी तब बड़ी चीटी—कुछ बड़ी आंखों वाली चीटी ने इस प्रकार कहना शुरू किया—मेरी बहन, तू तो नहीं समझती कि क़लम यह एक मुर्दा चीज़ है। उसमें

चित्रकारी की शक्ति कहाँ ! यह जादू करने वाली तो ये दो लम्बी-लम्बी उंगलियाँ हैं, जो कलम को पकड़े हुए हैं।

बातचीत का क्रम आगे बढ़ा। अब उन दोनों से बुद्धिमान तीसरी ने बोलना शुरू किया—तुम दोनों मूर्ख हो। ये दोनों उंगलियाँ तो पतली-पतली गोल लकड़ियों के समान हैं। भला ये उंगलियाँ क्या कर सकती हैं ! अरे, करने-धरने वाली तो वह कलाई है जो इन उंगलियों को चाहे जैसा नाच नचाती है।

अन्त में इन चीटियों की माँ बोली—नहीं, नहीं, मेरी प्यारी बेटियो, तुम सब भूल में हो। अरे, सब काम-धाम करने वाला तो वह लम्बा-चौड़ा धड़ है।

जब चीटियों की सारी बातचीत समाप्त हो गई तब मैंने उन्हें समझाया—ऐ मेरे ही बदले हुए अहंकार, मेरे दूसरे रूप ! यह बड़ा भारी धड़ भी निर्जीव है। वह तो आत्मा के चलाने से चलता है। यह सारी चमक-दमक एक आत्मा से प्रकट होती है।

* * *

यदि आप यहां आकर ठहरना चाहते हैं तो सदैव स्वागत है, यदि आप वहीं रहना चाहते हैं और नौकर की आवश्यकता है तो और भी उत्तम है। मैं तो जिस रूप में आप चाहें उसी रूप में आपकी सेवा के लिये तैयार हूँ।

मैं कभी किसी से रुष्ट नहीं होता। मैं बड़े आनन्द में हूँ। लोग बात-बात में क्रुद्ध होते और अनुत्तरदायित्वपूर्ण बातें कहने लगते हैं। हमें उन्हें क्षमा कर देना चाहिए। आप उनके साथ शान्ति स्थापित कर लें। आप चाहें उनका भोजन स्वीकार करें या न करें—यह दूसरा प्रश्न है। आप जैसा चाहें वैसा करें, पर मनुष्य-मनुष्य के बीच हमें शान्ति का व्यवहार रखना चाहिए। क्षमा ही साधुओं का भूषण है। मैं समझता हूं, इस तरह ईश्वर आपको अपूर्व शान्ति देगा।

३६९

६ जून १८६४. मैं आशा करता हूँ कि इसी शनिवार को मैं आपके दर्शन कर सकूंगा। मैं जल्दी न आ सकूंगा, क्योंकि एक तो इधर कोई छुट्टी नहीं है और दूसरे, अभी मुझे मेरा वज़ीफ़ा नहीं मिला है। और यदि मैं बिना रुपयों के ही घर चला आऊंगा तो सब को असन्तोष होगा और मुझे भी अच्छा नहीं लगता।

८ जून १८६४. मैं बड़े आनन्द में हूँ – "मेरी इच्छा है कि उसके चरणों की रज मेरी आंखों का काजल बन जाय।"

(फ़ारसी शेर का भावार्थ)

३१ अगस्त १८६४. मैं एकान्त में रहता हूँ। आपको भी अपने मकान की छत पर दुनिया से ऊपर रहना चाहिए और 'योगवाशिष्ठ' जैसी पुस्तकों का अध्ययन करना चाहिए। छत की ऊंचाई से नीचे कहीं भी इन पुस्तकों के पढ़ने से रस नहीं मिलता। उससे कोई लाभ भी नहीं होता।

२७ सितम्बर १८६४. ठीक है, मन बड़ा चंचल है। उसे वश में करना बड़ा कठिन है। उपवास करना अच्छा होता है। हलका भोजन और परिपक्व पाचन ईश्वर की सच्चाई का अर्द्धांश प्राप्त करा देता है।

१३ नवम्बर १८६४. मेरे पिता ने लिखा है कि अपने छोटे वज़ीफ़े में से २५ रुपया बचाऊँ और दूसरे वज़ीफ़े में से दो मास तक पांच-पांच रुपया बचाऊं। इस तरह दस रुपया हो जायंगे। इन पैंतीस रुपयों के होने पर पन्द्रह रुपया वे भेजेंगे और इस प्रकार मेरी परीक्षा-फ़ीस के ५० रुपये पूरे हो जायंगे। किन्तु मेरा निवेदन यह है कि २५ रुपयों में से सवा बारह रुपया तो मासिक फ़ीस के कट जाते हैं, और छः रुपया मुझे उन दिनों की गैरहाज़िरी के कारण देने होंगे जब मैं रोग-शय्या पर था। इसके अतिरिक्त मुझे जाड़े के कपड़े बनवाना और खाना-पीना है। अो, ऐसी हालत में मैं पांच रुपया मासिक कैसे बचा सकूंगा? कल मैंने जाड़े की पोशाक मोल ली थी—ड्रिल का एक पाजामा, एक

वास्कट और कश्मीरे का एक कोट। इन सब में मेरे ७ रु० १२ आ० व्यय होगये।

किन्तु ये सब बातें मैं पिता जी को नहीं समझाना चाहता। मुझे विश्वास है कि मेरे चाचा और मेरे श्वसुर मेरी सहायता करेंगे। किन्तु परवाह किसी की नहीं। ईश्वर तो मेरी सहायता करेगा ही, जैसा कि अब तक करता आया है।

१६ नवम्बर १८९४. मैं आपको नहीं लिख सका, क्योंकि मेरे पास कार्ड लेने को एक पैसा भी न था। आज रात दस बजे मैं लालाजी के दफ्तर से आया हूँ और वहां से यह कार्ड लाया हूं। मेरी पोशाक सिलकर तैयार हो गयी है। मैं अपने साथ एक दूकानदार को लिवा गया था। पोशाक बढ़िया बनी है।

७ दिसम्बर १८९४. पत्र में देरी का एकमात्र कारण था कि मेरा हाथ बिल्कुल खाली था। मैंने एक पैसा किसी से उधार भी नहीं लिया, यह सोचकर कि मुझे समय पर वज़ीफ़ा मिल जायगा। पर जब वह वज़ीफ़ा अभी तक नहीं मिला तब मैंने इस कार्ड के लिये एक पैसा उधार लिया है।

९ दिसम्बर १८९४. मेरी राय में पुस्तकें मोल लेते समय हमें रुपयों की ओर ध्यान न देना चाहिए। पुस्तक का मूल्य चाहे जितना ऊंचा हो, एक अच्छी पुस्तक के विषय की तुलना में वह सदैव नहीं के बराबर है। उन पिछले दिनों की याद कीजिये, जब छोटी-मोटी पाण्डु-लिपियों के सुन्दर संस्करणों के लिये लोगों को सैकड़ों रुपये व्यय करना पड़ते थे। रुपये पैसे की दृष्टि से ये दिन मेरे लिये कठिन बीत रहे हैं।

१६ दिसम्बर १८९४. आप मुझ से असंतुष्ट मालूम होते हैं। मैं क्या करूँ? मुझे तो अपने हृदय में एक भी ऐसी चिह्न नहीं दिखायी देती, जो आपके प्रति मेरे व्यवहार में मुझे रत्ती भर परिवर्तन की सूचना दे। किन्तु आप रुष्ट हैं। आप हमेशा मुझे क्षमा करते रहे—इसी

में मेरा और आपका कल्याण है। "आपके कड़वे शब्द मुझे मीठे लगते हैं, आपका क्रोध मुझे हानि नहीं पहुँचा सकता। प्यारे इष्टदेव! आपका विष मुझे मार न सकेगा!" मैंने अभी तक जो कुछ सीखा है, उसके बल पर मैं कह सकता हूं कि बात-बात में भड़क उठने का एक-मात्र प्रत्यक्ष कारण आपके पेट की खराबी है। आपका पाचन ठीक नहीं मालूम होता। इस नुस्खे ने मुझे बहुत लाभ किया है, यदि आप लें तो आपको भी लाभ होगा।

२ जनवरी १८९५. आज श्री गिल्बर्सटन ने चेन सहित एक घड़ी मुझे दी है। यह आप की है। आप इस जेब घड़ी को अथवा उस टाइमपीस को जो मेरे पास है, अपनी रुचि के अनुसार ले सकते हैं।

१८ जनवरी १८९५. चिन्ता न करें। मेरी चाहे जैसी दशा हो, मैं रुपये-पैसे से आपको तंग न होने दूंगा। मैं पण्डित गोपीनाथ से मिला था। वे क्या कर सकेंगे, यह शीघ्र ही प्रकट हो जायगा।

२५ जून १८९५. आप यहां आकर मुझे क्यों नहीं देख जाते। मेरा आना कठिन हो रहा है। एक बड़ा कारण तो यह है कि मेरे पास पैसा नहीं। यद्यपि वहां जाने में सिर्फ दो रुपये लगते हैं, फिर भी इन दिनों दो रुपये जुटाना मेरे लिये कठिन है।

९ जुलाई १८९५. सुना है कि अमृतसर कालेज के गणित प्रोफ़ेसर अवकाश ग्रहण करने वाले हैं। किन्तु यह केवल ख़बर ही ख़बर है। मुझे कहीं न कहीं कोई जगह मिल ही जायगी। पण्डित दीनदयाल से मिला था। उन्होंने कहा—मैं तुम्हें पहले से जानता हूं।

१५ जुलाई १८९५. पेशावर स्कूल की हेडमास्टरी ख़ाली है किन्तु वेतन बहुत ही कम ५०-६० रुपये मासिक है।

१६ जुलाई १८९५. मैंने पण्डित दीनदयाल के पांच व्याख्यान सुने। अच्छे लगे।

१७ जुलाई १८९५. मैंने श्री बैल से पेशावर स्कूल की हेड मास्टरी

के बारे में बात की। उन्होंने मुझे वहां न जाने की सलाह दी। क्यों? मैं नहीं कह सकता। कुछ भी हो, मैं आनन्द में हूं। मैं अभी आपके पास नहीं आ सकता, क्योंकि न तो मेरे पास समय ही है और न रुपया।

२० जुलाई १८९५. श्री बेल ने मुझसे अमृतसर की नौकरी के बारे में ब्यौरेवार पूछताँछ की थी। मैं अपने प्रोफेसर से वहां जाने न जाने के बारे में पूछूंगा और विशेष विशेष बातें जानने के लिये अमृतसर कालेज के प्रिंसिपल से मिलूँगा। मुझे जोर की सर्दी हो गयी है। पंडित दीन-दयाल बराबर व्याख्यान दे रहे हैं।

२१ जुलाई १८९५. सुना है कि अमृतसर कालेज के प्रोफेसर एक वर्ष तक और अवकाश नहीं ले रहे हैं। श्री बेल ने मेरे बारे में पब्लिक इन्सट्रकशन के डाईरेक्टर को भी लिखा है। जैसी ईश्वर की इच्छा हो! मैं आनन्द में हूं।

२१ अक्तूबर १८९५ (स्यालकोट). आज मैंने स्थानीय सनातन धर्म सभा के तत्वावधान में एक धार्मिक व्याख्यान दिया। यद्यपि उन्होंने जन साधारण में कोई सूचना नहीं बाँटी थी, फिर भी अहाता आदमियों से भरा हुआ था—डिप्टी कलेक्टर और अन्य बड़े बड़े अफ़सर भी आये हुए थे। मैं देश-भक्ति पर भी बोला था। मैंने देखा, लोगों की आँखें आँसुओं से भरी हैं।

२ नवम्बर १८९५ (स्यालकोट). मुझे आज अमृतसर से उत्तर मिला कि रिक्त स्थान मेरा प्रार्थना पत्र पहुंचने से पहले ही भर गया था।

२१ दिसम्बर १८९५. मुझे लाहौर के अपने ही कालेज 'मिशन कालेज' में गणित के प्रोफ़ेसर का पद मिल गया है। इस महान दया के लिये मुझे ईश्वर से और भी अधिक प्रेम करना चाहिए।

२३ दिसम्बर १८९५. (स्यालकोट) मैंने पिछले आठ दिनों में कुछ भी भोजन नहीं किया है केवल दूध पर रहता हूं। किन्तु मैं अभी अभी तीस मील की यात्रा से लौटा हूँ और कुछ भी थकावट नहीं मालूम होती।

१ जून १८९६. मेरे पिता मुझसे बहुत रुष्ट हैं। क्योंकि मैं अपनी स्त्री को यहाँ लिवा लाया हूँ। वे एकाध दिन में यहाँ आ रहे होंगे। पर कौन जाने!

५ जून १८९६. आपके पत्र मिले। मैं तो पूर्णतः आपका हूँ। मैं किसी भी चीज़ को अपना नहीं समझता। इस संसार की धन सम्पत्ति बटोरने में मुझे कोई हर्ष नहीं, कोई प्रसन्नता नहीं। अपनी स्त्री के लिये आभूषण बनवाने में भी मुझे कोई ख़ुशी नहीं। मुझे मेज़-कुर्सी आदि किसी सामान की आवश्ककता नहीं। मेरे लिये तो वृक्ष की छाया मकान का काम दे सकती है, राख मेरी पोशाक का, सूखी धरती मेरे बिस्तर का और दो-चार घरों से मांगी हुई रोटियां भोजन का। यदि मुझे इतना मिल जाय तो मैं परम सुख मानूंगा। मैं भला रुपये-पैसे के पीछे आपको रुष्ट करूंगा? आप मुझे राख लपेट कर साधु बन जाने का आदेश दें और देखिये, मैं तुरन्त आज्ञा-पालन करता हूँ या नहीं। साथ ही साथ मैं कालेज में भी बराबर काम करता रहूँगा। जो कुछ भी मुझे वहां से मिले, वह सब आपका। उसे चाहे जैसे व्यय कीजिये। मेरी स्त्री को चाहे जो दें—मैं तो आपका ग़रीब ग़ुलाम हूँ। मेरा काम तो केवल काम करना है और है अपने हृदय में भगवान् के लिये छोटा सा पूजा का मन्दिर बनाना। अन्तर की शान्ति से मुझे वह सुख मिलता है, जो बाह्य संसार की किसी वस्तु से नहीं प्राप्त हो सकता। ईश्वर के हेतु काम कर मैं जो शान्ति पाता हूँ, वही मेरे लिये यथेष्ठ वेतन है। कालेज के वेतन से मुझे कोई सरोकार नहीं। आप उसे चाहे जैसे वर्तिये। ऐसी चीजों की वृद्धि अथवा कमी से मैं किसी प्रकार घटता-बढ़ता नहीं। मैं तो साक्षात् आनन्द । मेरे पिता कल से यहाँ आये हुए हैं। इसीलिए मैं आपके पास नहीं आ सकता।

११ जून १८९६. आप के दोनों पत्र मिले। मेरे पिता असन्तुष्ट न थे। और क्यों होते? मैं अपने शरीर से बाहर रहता हूँ। मैंने उन्हें

पचास रुपये दे दिये हैं, यही कुल रकम मेरे पास इस मास के लिये थी। अब मैं नये ऋण से काम चलाऊंगा।

२० जून १८८६. मैंने मिशन कालेज में एक व्याख्यान दिया। लोगों को बड़ा सन्तोष हुआ। प्रिंसिपल ने मुझे उसको पुस्तकाकार प्रकाशित करने की राय दी।

२० जुलाई १८८६. मैंने कल वहाँ भाषण दिया था। पण्डित दीनदयाल, श्री गोपीनाथ, और अन्य उपस्थित सज्जन आश्चर्य में डूब गये। सब ने मुझ पर प्रेम प्रकट किया।

६ जनवरी १८८७. २८ रुपये भेज रहा हूँ। कृपया आधे मेरे पिता को दे दीजिये। मैंने उन्हें वचन दिया था। अब मेरे पास अपने लिये केवल तीन रुपये बचे हैं और पूरा महीना मेरे सामने है। मैंने पिछले मास के बिल भी नहीं चुकाये हैं, एक पैसा भी नहीं। मैं किसी विद्यार्थी की सहायता भी नहीं कर सका। और वे कष्ट भी हैं। उलाहनों पर उलाहने आ रहे हैं! मेरे पास रसोइया भी नहीं। परेशान हूँ।

१७ अप्रैल १८८७. मेरे पैर का फोड़ा अब भी कष्ट दे रहा है। बी० ए० परीक्षा का फल निकल गया। सारे प्रान्त में इस वर्ष २५ प्रतिशत परीक्षार्थी भी पास नहीं हुए। मेरा एक शिष्य प्रान्त भर में तृतीय और दूसरा चतुर्थ आया है। बहुत से तो गणित में—मेरे ही विषय में अनुत्तीर्ण हैं। मुझे इस वर्ष कोई वेतनवृद्धि नहीं मिल सकती। परिश्रम मैंने इतना किया और परिणाम नहीं के बराबर। मैं कितना उदास और दुखी हूँ!

१ अगस्त १८८७. मैं एक नये मकान में आ गया हूँ। यह लाहौर की हर चरनों की पौड़ियों के पास है—उन पुण्यवती गंगा के पास जो विष्णु भगवान् के चरणों को धोया करती हैं। यह सर्वप्रकार उचित है कि तीर्थराम (राम का तीर्थ) भी उनके चरणों के समीप निवास करे। जब से यहां आया हूँ, मैं भगवान् के चरणों में रहता हूँ और अपनी ही आत्मा की पवित्र गंगा में स्नान करता हूँ।

१७ अगस्त १८९७. अपने काम-काज और दैनिक व्यवहार में लगे रहने पर भी यदि हमारा मन भगवान् में डूबा रहे, हमारी चित्तवृत्ति उस अलौकिक लोक के अनिर्वचनीय शिखरों से नीचे न उतरे तब सचमुच धन्य है हमारा जीवन ! अन्यथा निश्चय ही यह मानव जीवन व्यर्थ है।

२५ अक्टूबर १८९७. (यह पत्र पिता को लिखा गया था।)

पूज्य पिता जी ! आपको वारम्वार नमस्कार ! आपके पत्र आये और अपने साथ आनन्द और परम सन्तोष भी लाये। आपके पुत्र तीर्थ राम का यह शरीर तो अव बिक गया, वह ईश्वर के हाथों बेच डाला गया। वह शरीर अव उसका नहीं। आज दीपावली है, मैंने अपना शरीर जुए में हार दिया और वदले में परम पिता परमात्मा को जीत लिया। अब आपको जिस चीज़ की आवश्यकता हो मेरे स्वामी से मांगिये। वह स्वयं आपको देगा अथवा मुझे आपके पास भेजने की प्रेरणा करेगा। पर आप एक बार पूर्ण विश्वास के साथ उससे मांगिये तो सही।

१९/२० दिन हुए, परमात्मा ने सब काम, सारे कर्त्तव्य, सारे ऋण चुकाने का पूरा भार अपने ऊपर ले लिया है ? आप के काम भी वह फिर इसी प्रकार क्यों न करेगा ? आप को धैर्य न छोड़ना चाहिए। जैसी उसकी इच्छा होती है, उसी प्रकार सब मनुष्यों को काम करना पड़ता है। आत्म-साक्षात्कार के जीवन का धन ही तो हम ब्राह्मणों का सर्वोपरि धन है। इस भीतरी सम्पत्ति को छोड़कर वाहरी सम्पत्ति के पीछे दौड़ना हम लोगों को कैसे शोभा दे सकता है ! एक वार ही तो अपनी अन्तरात्मा के आनन्द का स्वाद चखिये।

२३ अगस्त १८९८. (हरद्वार से ऊपर ऋषिकेश से)

आप ने अपने पत्र में मुझे घर लौटने का उत्साह दिलाया है। आप का पत्र गंगा की बहती धारा में विसर्जन कर दिया गया। आश्चर्य

आप भी मुझ से यह पूछते हैं कि क्या मुझे अपने कर्त्तव्यों का पालन न करने के कारण कोई दुःख नहीं होता ?

दुःख किस बात का ?

"इन चीज़ों की उत्पत्ति कहां से हुई ? कौन जाने !

इन चीज़ों का अन्त कहाँ होगा ? कौन जाने !

जो कुछ थोड़ा सा पता है, वह केवल बीच ही बीच में—वर्तमान में ! और जब सब कुछ अज्ञात ही अज्ञात है—

तब दुःख काहे का ?"

और लोग क्या कहेंगे ?

उत्तर में यह उर्दू शेर काफ़ी है—

"अपनी पगड़ी से अपना ही कफ़न

बना मैं आया हूँ कूचे यार में—

ताना लगा ले जिसका जी चाहे !

मुझे ऐसे वैसों की परवाह भी नहीं।"

फिर आपने आज्ञा-पालन का आदेश दिया है। मैं आपकी आज्ञा ही पालन कर रहा हूँ। अपने शरीर के पंचनद में से द्रुत गति के साथ भगवान् के मन्दिर की ओर बढ़ रहा हूँ। मैं तो सत्य के साथ घुलमिल जाना चाहता हूँ।

आधी रात होने वाली है। पास में न कोई आदमी है और न कोई भूत-प्रेत, भीतर निजानन्द के तूफ़ान की धूमधाम है और बाहर माता जाह्नवी के प्रवाह का संगीत। मेरे भीतर शान्ति, शान्ति, शान्ति का महासागर है और मेरे बाहर कल्याण का साम्राज्य। यह मेरे मिलन की रात्रि है, इसे अंधेरी कौन कहता है - यह तो मिलन की घड़ी ने गोपनीय संसार के मुख पर काला परदा डाल रखा है।

मेरा मतलब है कि मिलन की रात्रि में भीतर और बाहर—दोनों लोक घुलकर बह गये हैं। नेत्रों से अमृत का नद बह रहा है। ऐसे

समय में मुझे सांसारिक सुखों की याद दिलाना ! राम ! राम !

मेरे घरवालों से कह दीजिये कि यदि मुझसे मिलने की इच्छा है तो केन्द्र पर आकर मिलें, जहां सब मिलते हैं, न कि परिधि पर, जहां कोई नहीं मिल सकता।

*   *   *

गंगा जी के उन तटों पर बैठना, जहां स्वच्छ निर्मल जल इस प्रकार बहता है, जैसे संसार में शुभ्र चन्द्रिका की बाढ़ आयी हो।

जब रात्रि में पूर्ण सन्नाटा छा जाता है,

तब प्रभु के नाम-स्मरण के आनन्द से रोंगटे खड़े होजाते हैं।

जहां कष्ट और यातना से मुक्ति रहती है, और सांसारिक जीवन आँखों से ओझल होजाता है, ऐसी स्थिति में 'शिव' 'शिव' जाप करते हुए प्रेमानन्द के आंसू बहाना, जिससे हमारे नेत्रों का जीवन सफल हो जाय ! हे भगवान् ! मेरे लिये वह पुण्य घड़ी कब लाओगे !—भर्तृहरि।

ऐसे दिव्यानन्द के अनुभवार्थ राजा अपने सिंहासन त्याग देते हैं, देवता पवित्र-सलिला भागीरथी के तट पर चक्कर काटा करते हैं। फिर क्या मेरा ही भाग्य ऐसा फूटा है, क्या मैं ही ऐसा अभागा हूं कि यहां पहुंच कर भी मुझे घर-द्वार और अपने कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य की चिन्ता करनी होगी।

लोग तीर्थों में दौड़े जाते हैं, क्या कभी तीर्थ भी लोगों के पास दौड़ते हैं ? मेरे घर वालों से कह दीजिये कि उन्हें स्वयं तीर्थ राम (तीर्थों के ईश्वर) के चरणों में चलना चाहिए। अन्यथा उन्हें भगवान् तीर्थ राम के दर्शन कैसे हो सकते हैं ! इसके सिवा और कोई मार्ग नहीं। जब तक सत्य की गंगा मेरे घर में नहीं बहने लगती, मैं उसमें नहीं रह सकता, वहां मेरा हृदय कैसे श्वास ग्रहण करेगा ? फिर मैं वहां कैसे ठहरूंगा !

क्या किसी ने कभी मृतक के पास भी लौटने का संदेश भेजा है ?

जिन्हें मृतकों के दर्शनों की इच्छा हो वे स्वयं मर जावें। मैं मर चुका! मैं शरीर में रहते हुए ही मर गया। अब मेरे घरवाले मुझे वापस बुलाने की चेष्टा न करें। हां, यदि वे भी मेरे जैसे बन जायें, तब तो मिलना कुछ भी कठिन नहीं।

यदि मुरली वाला मुरारि प्यारा कृष्ण बन जाय, तब तो तीर्थों का भी तीर्थ, पवित्र करने वाला वहां आ सकता है। जहां शान्ति की गंगा नहीं बहती, वहां मेरा आना नहीं हो सकता। आखिरकार, सभी की मरी हुई हड्डियां आना तो है यहीं पर, फिर जीते जी स्वेच्छा से ही क्यों न यहीं अड्डा जमाया जाय!

(इसी ध्वनि का यह एक दूसरा पत्र है।) *मैं क्या अकेला हूं?*

न कोई शिष्य पास है और न कोई नौकर-चाकर! मनुष्यों की बस्ती भी बहुत दूर है! यहां तो मनुष्य की छाया का भी नाम नहीं! एकदम सुनसान, वीरान, गम्भीरतम एकान्त है। रात्रि नक्षत्रों से पूर्ण है, अर्द्ध निशा का समय है। पर क्या मैं सचमुच अकेला हूं?

नहीं, मैं अकेला नहीं! मेरी नौकरानी—वर्षा की बौछार अभी अभी आयी थी, वही मुझे नहला गयी। मेरा वायु भी मेरे लिये सर्वत्र दौड़ धूप मचा रहा है। वह देखो, मेरा ही कोई सेवक अभी अभी मेरे आदेश के प्रत्युत्तर में कहा गया है—आज्ञा! वह या तो चीता होगा या या हाथी! मेरे हजारों सेवक इन झाड़ियों में मेरे साथ डेरा डाले पड़े हैं। उनको छोटी छोटी गुफायें सौंप दी गयी हैं। फिर मुझे कोई कैसे और क्योंकर अकेला कह सकता है?

किन्तु नहीं, मैं सचमुच अकेला हूं! यहां न कोई गुलाम है, न कोई सेवक और न कोई शत्रु और न मित्र! यह वायु नहीं, यह तो मैं ही हूं, वह गंगा नहीं है, वह तो मैं ही हूं, यह चन्द्रमा नहीं है, वह तो मैं ही हूं, वह ईश्वर नहीं, मैं ही हूं। यह प्रियतमा नहीं, मैं ही हूं। मिलन किसे कहते हैं, ? केवल मैं ही मैं हूं। लो, संसार न जाने कहां छिप गया है!

क्या मैं आलसी हूँ ?

मेरे मस्तिष्क का मानसरोवर शान्ति से भरा हुआ है। और आनन्द की धार मेरे हृदय से बह निकली है। मेरा रोम रोम आनन्द सागर में डूबा है। विष्णु के हृदय में शान्ति का ऐसा अनन्त सागर उमड़ा कि वे उसे अपने वक्षस्थल में न संभाल सके, इसलिए उनके चरणों से पवित्र सलिल की धार गंगा के रूप में बह निकली। विष्णु की ही तरह तीर्थराम प्रभु नारायण के प्रेमानन्द से भरा हुआ है। वह अपना आनन्द अपने भीतर नहीं बटोर पाता, इसलिए वह भी अपने में से गंगा की वेगवती धारा संसार के कल्याणार्थ बाहर फेंक रहा है। फूट-फूटकर आनन्द और अभ्युदय की मधुर तरंगें चारों ओर बिखर रही हैं। फिर उसे कौन सुस्त कहता है! मैं कहता हूँ—आइये, आइये तीर्थराम को देखिये तो सही, तुम देखते ही मुक्त हो जाओगे! वह साक्षात् गंगा है, साक्षात् राम, परमानन्द, दिव्यानन्द। स्वयं शिवरूप, ब्रह्मरूप।

१६ सितम्बर १८६८. (हरद्वार) जब मैं बाहर देखता हूँ. तो कण-कण से यही पुकार सुनायी देती है तू है, तू है। जब मैं भीतर झांकता हूँ तो सुनायी देता है—मैं हूँ, मैं हूँ। बस, ढोल और वंशी का यही मधुरतम संगीत मुझे सुनने दो, मैं और कुछ नहीं सुनना चाहता।

मैं हूँ क्या ? मैं हूँ कहां ? मेरे प्रसाद में कौन निवास करता है ? कौन, कौन ? इन कौन, कैसे, कहां, क्यों और कब का मुझ में प्रवेश नहीं—मेरे भीतर नहीं आ सकते। हरद्वार के बन्दरों ने मेरे सोचने-विचारने वाले मस्तिष्क को छीन लिया है, गंगा जी ने मेरे अन्तःकरण में बाद मचा दी है, चीलों ने मन नोच-नोच खा डाला है, नदी की मछलियों ने मेरे अहंकार, मेरेपने को चुन चुन कर खा लिया है। वायु ने पापों को चारों ओर बिखेर कर उड़ा दिया, भस्म कर दिया!

सातवाँ परिच्छेद

संन्यास से पूर्ववर्ती जीवन

एक बार उन्होंने देखा कि उनके पास महीने भर के लिये केवल तीन पैसे प्रति दिन के हिसाब से बचे हैं। मन में कहा—कुछ परवाह नहीं, ईश्वर मेरी परीक्षा लेना चाहता है, मैं इतने से ही संतोष करूंगा। इन दिनों वे एक पंजाबी नानबाई की दूकान में जाया करते थे और सवेरे के भोजन में दो पैसे तथा सायंकाल के भोजन में एक पैसा व्यय करते थे। किन्तु कुछ दिन बाद उस दूकानदार ने कहा—जाइये साहब, आप रोज़ आते हैं और केवल तीन पैसे की रोटियाँ लेते हैं, उनके साथ की दाल का तो कुछ देते नहीं। दाल मुफ्त में ले जाते हैं; नहीं, साहब मैं आपके हाथ रोटियां नहीं बेच सकता। उस दिन से बालक तीर्थ राम एक ही समय खाकर दिन काटने लगे!

ऐसी दरिद्रता में उन्होंने अपना अध्ययन-कार्य पूरा किया, कुछ तो विश्वविद्यालय के वज़ीफे प्राप्त कर और कुछ दूसरे बच्चों को निजी तौर से पढ़ा कर—किन्तु नहीं, इसके साथ ही उन्हें अपनी स्त्री और बच्चों की देखभाल भी करना पड़ती थी। गुजरांवाला के धन्ना की सेवा और माता-पिता की सहायता का भार

भी उन पर था। विद्यार्थी-जीवन में ही उनके पिता उनके घर वालों को उनके पास छोड़ गये थे, और क्यों न छोड़ जाते ! राम ने तो अपने पिता की इच्छा के प्रतिकूल कालिज की शिक्षा प्राप्त करने का निश्चय किया था। उनके पिता की एक मात्र इच्छा थी कि लड़का मैट्रिक पास करके नौकरी द्वारा परिवार के लिये कुछ कमाने लगे। हां, जब इसी लाहौर में उनके अच्छे दिन आये तो इनका घर अपने गांव के मेहमानों से भरा रहने लगा और राम की भलमनसाहत, वे हर महीने क़र्ज़ ले लेकर उनका आगत-स्वागत करते थे। वे स्वयं दूध के बड़े प्रेमी थे और इसलिए जो भी ऐरा-गैरा उनके घर पहुँचता उसे वे खूब औटा हुआ दूध पिलाते। ज्ञान के जिज्ञासु भी वश भर राम के पास ठहरते और भर-भर प्याला दूध पीते, क्योंकि राम के आतिथ्य का ढंग सचमुच निराला और बड़ा आकर्षक था। वे सदा सादा कपड़े पहनते थे—पुरानी चाल के पंजाबी खद्दर के बने हुए। ग्रेजुएट हो जाने के बाद भी उन्होंने सदा शुद्ध खद्दर के ही वस्त्र पहने। उनकी स्त्री ही उनके लिये कपड़े बनाती और सीती थी। अपने छोटे से जीवन में उन्होंने सदा अपने ऊपर बड़ी कड़ी नज़र रखी। इस बात में सदा सावधान रहे कि कहीं कोई फ़िज़ूल अनावश्यक इच्छायें तो उनके हृदय में नहीं जम रही हैं। अपने ऊपर वे कुछ व्यय नहीं करते थे। अमेरीका में जब राम हिन्दू धर्म पर व्याख्यान देने में कड़ी मेहनत करते थे, तब भी वे अपने मित्रों से कहा करते थे—राम रोज़ थोड़ा सा दूध और कुछ फल आप लोगों से ले लेता है, क्या इसके लिये आप उसे क्षमा न करेंगे !

गणित में एम० ए० पास करने के बाद राम को नौकरी खोजने में किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, उन्हें देख-

सुनकर ज्ञान हो सकता है कि भारतवर्ष में उस समय किसी ग़रीब विद्यार्थी के लिये जीवन के कारोबार में प्रवेश करना कितना कठिन था! उनके पत्र एक प्रकार से घोर निराशा की उस सर्वसामान्य अवस्था के सूचक हैं जिसमें होकर पेट पालने के लिये प्रायः सभी भारतीय ग्रेजुएटों को गुजरना पड़ता है। भारतवर्ष में शिक्षा सरकारी नौकरियों को ही सर्वोच्च ध्येय बनाकर आरम्भ हुई। और ये नौकरियां भी वे थीं जिन्हें उच्च इम्पीरियल सर्विस के पदाधिकारी भारत भूमि के दीन-हीन लाड़लों में दया-वश बांट दिया करते थे, जैसे बड़े बड़े श्रीमानों के भोजन भाण्डार की बचत नौकरों-चाकरों को मिलती रहती है। विदेशी शासन सत्ता के अनिवार्य फल स्वरूप भारतवर्ष में शिक्षा का मुख्य ध्येय आज भी यही बना हुआ है कि आक्सफोर्ड और केम्ब्रिज के ग्रेजुएटों की इच्छाओं के पालन के हेतु गुलाम तैयार किये जांय। अतः भारतवर्ष में प्रचलित शिक्षा की व्यवस्था—स्वामी राम के समय में और आज भी इतनी ही गंदी है, जो उसके अनुयायियों को अपनी इच्छा के अनुसार व्यवसाय चुनने की उतनी भी स्वतन्त्रता प्रदान नहीं करती जितनी कि एक मामूली मज़दूर को प्राप्त रहती है। मज़दूर काम करने के लिये तैयार भर हो और उसके पेट की रोटियां कहीं नहीं गयी हैं। कुछ घंटे काम करने के बाद वह पैर पसार कर सो सकता है। काम करते समय स्वयं अपना स्वामी है, उसे अपने मालिकों की धौंस सहने की कोई आवश्यकता नहीं। हां, अब बड़े बड़े शहरों में बेशक कुछ ऐसे पूंजीवादी संगठन हो रहे हैं, जो उन्हें भी गुलाम बनाकर सब तरह से लाचार कर दिया जाता है। किन्तु भारतीय ग्रेजुएट का भाग्य ही कुछ दूसरा है! भारतीय शिक्षा और उसके मन्तव्य को धिक्कार!

स्वामी राम की कृष्ण-भक्ति के बारे में स्वामी नारायण जो उन दिनों राम के घनिष्ठतम संपर्क में थे, इस प्रकार लिखते हैं—स्वामी जी रात और दिन कृष्ण के ध्यान में मग्न रहते थे। कृष्ण का नाम सुनते ही वे तन-बदन की सुधि भूल जाते थे। यदि कहीं से वंशीध्वनि उनके कान में पड़ती तो उन्हें यही भ्रम होता कि भगवान् कृष्ण ही वंशी बजा रहे हैं। लाहौर में वे घंटों रावी नदी के किनारे भगवान् के ध्यान में डूबे हुए घूमा करते थे। उन्हें और कोई बात न सूझती थी, वे सदा गम्भीर-से रहते थे। उनके एक दूसरे समीपवर्ती मित्र ने राम के ध्यान के बारे में मुझे इस प्रकार बताया था—एक बार मैंने स्वामी राम को रावी नदी के किनारे देखा। आकाश में भूरे बादल छाये थे। स्वामी राम जोर जोर से चिल्ला रहे थे—देखो, देखो, वही तो, वही तो मेरा कृष्ण है। ऐ भूरे रंग वाले बादल! मेरे ईश्वर, मेरे कृष्ण का रंग भी तेरा जैसा है। तू क्यों मुझे पागल बना रहा है? तूने क्यों मेरे कृष्ण को छिपा रखा है? ओ कृष्ण, तू कहां है? ओ बादल! तू मुझे उसका पता क्यों नहीं देता। तू तो आकाश में उड़ रहा है, क्या तुझे मुझ से अधिक पता नहीं? बता दे, मुझे बता दे, मेरा कृष्ण कहां छिपा है? ओ हो, तू भी काला होता जाता है। ऐ बादल, क्या सचमुच तुझे मेरे कृष्ण का पता नहीं? क्या तू भी उसी के वियोग में काला पड़ता जाता है? ओ भगवान्, क्या मुझे तेरे दर्शन न होंगे! दुनियां मुझे काटने दौड़ती है और तू दिखाई नहीं देता। बताओ कहाँ जाऊँ और किसे अपना दुखड़ा सुनाऊँ! ओ कृष्ण, तेरे लिये ही तो मैंने अपने सगे-सम्बन्धी और इष्ट मित्र छोड़े, तेरे लिये ही मैंने झूठा आदर और झूठी लज्जा छोड़ी, पर है तू कहां? बादलों को फटता हुआ देखकर राम फिर रो पड़े। ऐ बादल! तुम तो मेरे भाई हो,

जाते हो तो जाओ, पर मेरे कृष्ण से कहना अवश्य कि आकर देखें तो सही राम की आंखों में कैसी झड़ी लगी है। देखो, उससे यह कहना मत भूलना कि—

> यदि लूटना हो तुझे वर्षा का मज़ा—
> तो आ, मेरी आँखों में बैठ
> यहाँ काले, भूरे और लाल, तरह-तरह के बादल
> सदा झड़ी लगाये रहते हैं।

ओह मेरा जीवन ! कितना लम्बा, कितना बड़ा है तू ! मैं तो अधीर हो रहा हूँ। या तो मेरी प्यास बुझा दो या फिर मुझे मार डालो ! तू सूर्य को चमक देता है, चन्द्रमा को सौंदर्य, फूलों को सुन्दर रंग और सुगंध, फिर मुझे दर्शन और ज्ञान देने में क्यों कृपण बनता है ? इसी प्रकार कृष्ण-कृष्ण रटते हुए वे अन्त में बेसुध हो गये।

अपने भावोद्रेक में अतिशय आनंद के मारे उनकी आंखों से आँसुओं की झड़ी लग जाती थी। एक बार किसी पंडित को रामायण पढ़ते हुए सुनकर वे ज़ोर से रो पड़े। उनके ऊपर उस कथा का ऐसा वेदनापूर्ण प्रभाव हुआ कि अन्त में पंडित को अपनी पोथी ही बंद कर देना पड़ी।

एक दिन राम चिल्ला उठे—

अरी आँखें ! तुम्हारा क्या होगा ?

यदि कृष्ण के दर्शन नहीं कर सकतीं, तो बंद हो जाओ, सदा के लिये मुँद जाओ। ओ हाथ ! यदि तुमने भगवान के चरणकमलों का स्पर्श नहीं किया तो फिर मेरे किस काम के ? सूख जाओ, लुंजपुंज क्यों नहीं हो जाते ? हे प्रभु ! यदि जीवन के बलिदान से ही तुम्हारे दर्शन होते हैं तो ये प्राण मैं तुम्हें भेंट हूँ।

ऐसा कह कर वे रोने लगे, आँसुओं की झड़ी लग गई, कमीज़ तर-बतर हो गई—यहां तक कि अन्त में तन-बदन की सुधि जाती रही। जब चैतन्य हुए तो एक काले नाग को फन फैलाये अपने सामने पाया। फिर क्या था, झट से उसकी ओर लपके—हे प्रभु, आओ, आओ, नाग के रूप में ही दर्शन दो! किंतु हे प्रभु, मैं तो तुम्हारा वह सौंदर्य देखना चाहता हूँ, जिस पर गोपिकायें पतंगों की भाँति झपटती थीं। इतना कहना था और फिर बेसुध!

उनके उस मित्र ने, जो यह सब तमाशा देख रहा था, कमरे में आकर कहा—गोस्वामी जी! कृष्ण तो तुम्हारे भीतर हृदय में है। तुम बाहर किसे ढूंढ रहे हो?

पागलों की भाँति वे चिल्ला उठे—मुझ में! और कमीज़ को चीड़-फाड़ कर, अपने नाखूनों से अपनी छाती नोचने लगे। और वे फिर बेसुध हो गये और घंटों उसी प्रकार अचेत पड़े रहे।

स्वामी नारायण कहते हैं कि उन्हीं दिनों एक बार उन्होंने राम को यह कहते सुना था—धन्य है आज, मैंने कृष्ण के दर्शन किये। वे आये, जब मैं नहा रहा था मैंने उनकी पूरी झांकी देख ली। किंतु आये और चले गये, इस दुखिया का घाव हरा हो गया, अब उनके बिना चैन कहाँ! उन दिनों स्वामी जी को देख कर सूरदास और मीराबाई की याद आती थी।

राम बड़े अध्यवसायी विद्यार्थी थे, जैसा कि स्वयं उनके पत्रों से ज्ञात होता है। स्वामी राम ने मुझे एक बार अपने विद्यार्थी-जीवन का एक ऐसा अनुभव सुनाया था, जिसका उल्लेख यहाँ अप्रासंगिक न होगा। उन्होंने कहा था—एक रात को राम ने उच्च गणित के कुछ बहुत ही कठिन और जटिल प्रश्न हल करने के लिये उठाये और मन में यह प्रण कर लिया कि सूर्योदय के

पहले ही इन सबको हल कर डालूंगा, और यदि हल न कर सका तो यह सिर इस तन से पृथक् कर दूंगा। इसी अभिप्राय से राम ने अपनी आसनी के नीचे एक तेज खंजर भी रख लिया। निस्संदेह राम का यह काम उचित नहीं कहा जा सकता किंतु सही हो या ग़लत राम तुम्हें बताना चाहता है कि ऐसी ही कठोर साधना से राम ने उस ज्ञान का सम्पादन किया है जो तुम इस समय उसके पास देखते हो। अच्छा, सुनो; उन चार प्रश्नों में से तीन प्रश्न तो आधी रात्रि तक हल हो गये। किंतु चौथा—चौथा बड़े चक्कर में डाले हुए था। राम उसे किसी प्रकार हल न कर सका और उषा की प्रथम रश्मियां वातायन में से झांकने लगीं। अपने प्रण का पक्का राम उठा और तेज खंजर लेकर मकान की छत पर जा चढ़ा। नहीं; उसने खंजर की बारीक नोक गर्दन पर रख भी दी। खंजर का रखना था कि उसने तुरंत थोड़ी सी खरोंच बना दी और बूंद-बूंद करके लोहू टपकने लगा किंतु लो, राम हक्का-बक्का रह गया। प्रश्न का हल आकाश में सुनहली अक्षरों से लिखा हुआ चमक रहा था! राम ने उसे देखा और नीचे आकर कागज पर लिख लिया। शायद उससे अधिक मौलिक कार्य कभी न हुआ हो। गवर्नमेंट कालेज के प्रोफेसर मुकर्जी तो आश्चर्य में डूब गये। राम ने ऐसा अनेक बार किया था, और ऐसे ही कठिन परिश्रम के द्वारा उन्होंने गणित का अगाध ज्ञान सम्पादन किया था।

इसी परिस्थिति में हम राम के उस कल्याणकर विदाई के गीत का मर्म समझ सकते हैं जो उन्होंने लाहौर के स्टेशन पर तब गाया था जब वे लाहौर को सदा के लिये छोड़ रहे थे—

"अलविदा मेरी रियाज़ी! अलविदा!

अलविदा, ऐ प्यारी रानी! अलविदा!

अलविदा ऐ दोस्तो-दुश्मन ! अलविदा!

अलविदा ऐ शीत-उष्ण ! अलविदा !

अलविदा ऐ दिल ! खुदा ले अलविदा !

अलविदा राम ! अलविदा ऐ अलविदा !"

इस प्रकार अपने अतिशय प्रिय विषय—गणित शास्त्र और अपने कालेज को अश्रुपूर्ण नेत्रों से अन्तिम प्रणाम करके राम ने लाहौर से प्रस्थान किया था।

निस्संदेह वे निजी और व्यक्तिगत चीजों के त्याग का दृढ़ निश्चय कर चुके थे। गणित का अध्ययन तो शायद उनके सभी व्यक्तिगत सम्बंधों और सम्पर्कों से सर्वाधिक व्यक्तिगत था। उसे भी विदाई दी गयी। राम स्वभाव से ही भावुक थे, उनका हृदय बड़ा कोमल था। ऐसे भावप्रवण स्वभाव में त्याग की कठोरता का जन्म कैसे हुआ—कहा नहीं जा सकता। राम को एकांत से अतिशय प्रेम था। वे ईश्वर-चिंतन और ईश्वर-सहचर्य के अर्थ महीनों वनोवास किया करते थे—यह बात उनकी प्रकृति के अनुकूल ही थी। किंतु उन जैसे अत्यंत भावुक और काव्यशील स्वभाव में दर्शन-शास्त्र-जनित कठोर और पूर्ण वैराग्य का उदय कैसे हुआ—यह एक विचित्र बात थी ! यथार्थ में उन्होंने जीवन के सम्बंध में कुछ अहंकारशून्य, विचार-प्रधान, तार्किक सिद्धांत स्थिर कर लिये थे, जिनके बल और आधार पर ही वे अपने हृदय की कोमलता, भावुकता और काव्यशीलता को रोकते और उसे नियंत्रण में रखते थे। और इसलिए अपनी स्वाभाविक प्रवृत्तियों के अधिक अनुकूल न होने पर भी वे उस अद्वैत दर्शन का अनुसरण करते रहे, क्योंकि वही उनकी दृष्टि में अंतिम तथ्य था।

आठवां परिच्छेद

संन्यास से पूर्ववर्ती जीवन

मेरी अपनी राय में राम ने जिन कारणों से संन्यासी के भगवा वस्त्र पहने, उनमें से एक कारण था लाहौर में स्वामी विवेकानन्द से उनकी भेंट !

लाहौर पहुंच कर स्वामी विवेकानन्द ने पंजाब निवासियों में एक नई जान सी फूँक दी, उनके हृदय में नये-नये विचार उठने लगे। उनका देवताओं जैसा धारा प्रवाह भाषण, उनका सर्वस्व बलिदान करने वाला त्याग, उनकी शक्ति; उनका व्यक्तित्व; उनका विशाल मस्तिष्क—सब ने मिलकर लोगों पर गहरा प्रभाव डाला। स्यात् लाहौर में 'वेदान्त' पर दिया हुआ उनका व्याख्यान उनकी वक्तृत्व-कला का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण था। उन्हीं दिनों स्वामी विवेकानन्द को गुरु गोविन्द सिंह की अद्भुत जयन्ती देखने का अवसर मिला और उन्होंने उसकी बड़ी प्रशंसा की। अपने प्रवचन में स्वामी विवेकानन्द ने 'नरशार्दूल गुरु गोविन्द के पंजाब' का वर्णन किया। स्वामी जी ध्यानसिंह की हवेली में ठहरे हुए थे। और मुझे आज की इस घड़ी में भी वह दृश्य स्पष्ट रूप से दिखाई देता है जब स्वामी जी का भाषण सुनने उस दिन हवेली

के विशाल भवन में लाहौर का साफाधारी कितना विशाल जन-समूह इकट्ठा हुआ था। मैं उस समय में निरा बालक ही था, पंजाब विश्व-विद्यालय की इण्टर परीक्षा के लिये कालेज में पढ़ रहा था। किन्तु उस दृश्य की जो छाप मेरी स्मरण-शक्ति पर पड़ी, वह किसी प्रकार धोयी नहीं जा सकती। हवेली ठसाठस भर गयी थी, और बहुत से मनुष्य आंगन में जमा हो गये थे। स्वामी जी के दर्शनों के लिये उत्सुक सज्जन कंधे से कंधा भिड़ाकर भवन में प्रवेश करने की चेष्टा कर रहे थे। स्वामी जी ने जब ऐसी उत्सुक और प्रबन्ध से बाहर जाने वाली भीड़ देखी तो बोले—मैं खुली हवा में भाषण दूंगा। हवेली का घेरा, आँगन बहुत बड़ा है और उसके बीच में मन्दिर के आकार का एक ऊंचा प्लेटफार्म भी है। स्वामी जी उस चबूतरे पर चढ़ गये और उस समय उनकी छवि, उत्तम स्वास्थ्य से दमकता हुआ विशालकाय शरीर, संन्यासी की रक्तवर्ण वेषभूषा, प्राचीन ऋषियों की याद दिलाने वाली मुखमुद्रा, बड़ी बड़ी मनोहर आंखें, जिनका जादू सारी हवा में व्याप्त हो रहा था! बदन पर एक दुपट्टा उन्होंने लपेटा हुआ था और सिर पर पंजाबी फैशन में नारंगी रंग का साफ़ा बांधे थे। थोड़ी देर में जब वेदान्त केसरी ने गरजना प्रारम्भ किया और घंटों दहाड़ते रहे, तब पंजाबी ऐसी शान्ति से सुन रहे थे, जैसे जादू मार गया हो। उनके अन्तःकरण अपने आप मानसिक क्षितिज की आनन्द-दायक ऊंचाइयों पर सैर करने लगे।

लाहौर चकित हो गया, उसी प्रकार जैसा कि सुदूरवर्ती अमेरीका इस साहस और शक्तिसम्पन्न संन्यासी से चकित हुआ था। और क्यों न होता, उन्हें तो परमहंस रामकृष्ण जैसी महान् आत्मा से उत्प्रेरणा प्राप्त हुई थी। दर्शकों को ऐसा मालूम होता था कि जैसे इस महान् व्यक्ति में स्फूर्ति और ज्ञान की लौ लपलप

जल रही हो। उन दिनों लाहौर में प्रोफ़ेसर बोस का सरकस भी खेल दिखाने आया हुआ था और स्वामी विवेकानन्द का 'भक्ति' विषय पर एक दूसरा व्याख्यान इसी बोस सरकस के पण्डाल में हुआ था।

मैं उस समय स्वामी राम को नहीं जानता था किन्तु लाहौर में एक वही व्यक्ति थे जिन्होंने इन व्याख्यानों का प्रबन्ध किया था। उनकी राय थी कि विवेकानन्द जब वेदान्त पर बोलते थे तभी उनकी प्रतिभा चरम सीमा पर पहुंचती थी; क्योंकि वही उनका असली विषय था। स्वामी राम ने मुझे से कहा था—बोस के सरकस से स्वामी जी के साथ ध्यानसिंह की हवेली को जाते समय मैंने उनसे कहा था कि भक्ति विषयक व्याख्यान में उनकी प्रतिभा का उत्कर्ष चरम सीमा पर नहीं पहुँचा। तब इसके बाद उनके आगामी व्याख्यान के लिये वेदान्त का विषय घोषित किया गया। स्वामी विवेकानन्द के साथ राम की इस भेंट का परिणाम, निस्सं-देह, यह हुआ कि यौवनसम्पन्न राम की साधु-जीवन व्यतीत करने एवं संसार पर्यटन कर विवेकानन्द की भांति वेदान्त-प्रचार की हृदयस्थ लालसा और भी बलवती हो उठी। स्वामी विवेकानन्द पहले ही से व्यावहारिक दृष्टिकोण से वेदान्त की व्याख्या प्रारम्भ कर चुके थे। जैसे आधुनिक शिक्षित भारत ने पाश्चात्य जगत् के सम्पर्क में आने के कारण अपनी भगवद्गीता में निहित कर्म-योग शिक्षा का महत्व समझने की चेष्टा की है, वैसे ही स्वामी विवेकानन्द ने शंकराचार्य के अद्वैत वेदान्त दर्शन को भक्ति, कर्म, यहां तक कि देश-सेवा, मनुष्य-सेवा आदि अनेक पहलुओं से समझना-समझाना प्रारम्भ किया था। स्वामी विवेकानन्द प्रथम पुरुष थे, जिन्होंने राजनीति के क्षेत्र में भी वेदान्त का प्रयोग किया। और यह स्वामी विवेकानन्द से भेंट होने का ही फल था

कि स्वामी राम ने अपना संकल्प पक्का कर लिया। उन्हें स्वामी विवेकानन्द में अद्वैत वेदान्त की उस व्यापकता का प्रयोग और व्याख्या करने वाला मिला जिसे वे अभी तक अपने भीतर ही भीतर पका रहे थे। यह स्वामी विवेकानन्द का ही आदर्श था, जिसने स्वामी राम के मूक आत्मानुभव को जिह्वा प्रदान की। बस, वे हिमालय पर्यटन के लिये निकल पड़े। और वहां से लौटते ही उसी व्यावहारिक वेदान्त की शिक्षा देने लगे, जो स्वामी विवेकानन्द का विषय था, किन्तु राम की उत्प्रेरणा में एक विलक्षण मस्ती थी, ऐसी दिव्य मस्ती, जो अन्यत्र कहीं देखने को नहीं मिलती। स्वामी राम ने वेदान्त के उस पहलू की पुनः नये सिरे से एवं और भी व्यापक ढंग से व्याख्या की जिसका निर्देश स्वामी विवेकानन्द पहले कर चुके थे। हां, एक बात है, स्वामी राम की भाषा में, वह सुघड़ता और प्रौढ़ता नहीं है जो स्वामी विवेकानन्द की भाषा में देखी जाती, है और न उनमें वक्तृत्व-कला का वह जोर और सब को उखाड़ देने वाला तर्क और व्यंग्य ही है, जो स्वामी विवेकानन्द में था। वे शरीर से भी स्वामी विवेकानन्द के समान वलिष्ठ न थे किन्तु राम भी उनसे बढ़े-चढ़े थे अपने अनंत ज्ञान-उत्प्रेरित और समाधिस्थ आह्लाद में, अज्ञात चैतन्य की उस दमक में जो सदा उनके मस्तक पर खेला करती थी, अपने संगीत की मधुरता में, भक्तिमय कन्यासुलभ लज्जाशील सुन्दर सुकुमारता में, हृदय को द्रवीभूत करने वाले उस भावोद्रेक में जिसने उनके भीतर से संसार के सभी विचार चुन चुन वाहर निकाल फेंके थे और जिसके फलस्वरूप वे वार वार अपने मूक आह्लाद की समाधि में डूब जाते थे। स्वामी विवेकानन्द उनसे वढ़कर दार्शनिक, वढ़कर वक्ता और वढ़कर नरशार्दूल संन्यासी थे और स्वामी राम उनसे चढ़कर थे अपने गंम्भीर समाधिजन्य परमानन्द में, जो एक अटल

आधार शिला की भाँति उनके प्रफुल्ल, मधुर और काव्यशील संचरण में, उनके सहानुभूतिपूर्ण सदय व्यवहार में, अपनी परिस्थिति के साथ पूर्ण शान्तिमय मस्ती में जो सदा उनका पल्ला पकड़े रहती थी। फिर इन दोनों महात्माओं में बौद्धिक सम्बन्ध इतना अपूर्व और इतना व्यापक था कि हम दोनों को अपनी संसार-यात्रा में वेदान्त विषयक बिल्कुल एक सा संदेश देते हुए पाते हैं। यहां तक कि अपने देशवासियों को उन्होंने देश-भक्ति और राष्ट्र-निर्माण के विषय में एक जैसे उपदेश और आदेश दिये हैं। जैसा पहले कहा जा चुका है, स्वामी राम ने लाहौर में स्वामी विवेकानन्द से संन्यास आश्रम की त्यागमय ज्वाला को ग्रहण किया था और दो वर्ष भी नहीं बीते कि उन्होंने भगवे वस्त्र पहन लिये। वे जो कवि जैसे भावुक हृदय वाले गृहस्थ थे, वे जिनकी भावनाओं की तड़प से मन और उसकी वासनायें—दोनों पानी पानी होकर बह जाती थीं, साधु हो गये। वाह्य कारण कुछ भी रहा हो, वस्तुतः उनका यह कार्य किसी प्रकार किसी बाहरी संसर्ग का परिणाम न था, वरन् वह तो था उनके अपने स्वाभाविक भीतरी मानसिक और आध्यात्मिक विकास का अवश्यम्भावी प्रतिफल।

इस प्रकार पंजाब के अत्यन्त निर्धन ब्राह्मण परिवार में जन्म लेकर वे बचपन से लेकर युवावस्था तक बराबर धीरे धीरे स्वयं अपना निर्णय करते रहे। उन्होंने थोड़ा-थोड़ा, क्षण-क्षण, दिन-प्रति-दिन अपने आप को बनाया था। यह भी कहा जा सकता है कि उन्होंने अपने हृदय की आँख में अपने भविष्य-जीवन का सम्पूर्ण चित्र पहले ही से अंकित कर लिया था, क्योंकि जब वे निरे बच्चे ही थे तभी ऐसा मालूम होता था, जैसे वह किसी सुनिश्चित उद्देश्य के लिये जान-बूझ कर और गम्भीरता के साथ यत्न कर रहा है। उस धनहीन ब्राह्मण-बालक के एक एक पग में

हमें एक ज्ञान-सम्पन्न-हृदय की दृढ़ता दिखाई देती है, जो न किसी भी परिस्थिति में अपने पथ से विचलित होती और न जो भयंकर से भयंकर कठिनाई से सहम सकती थी। वे एक अनुकरणीय विद्यार्थी थे। उन्हें अध्ययन का व्यसन था, इस आशा से नहीं कि उन्हें कोई सांसारिक लाभ होगा, वरन् उस दिन-दूनी रात-चौगुनी ज्ञान-पिपासा को शान्त करने के लिये, जो प्रातःकालीन सूर्य के दर्शन होते ही उनकी आत्मा को भड़का देती थी। उनका दैनिक अध्ययन क्या था, मानों वे अपने हवन-कुण्ड की वेदी में श्रद्धापूर्वक आहुतियाँ चढ़ाया करते थे।

नये कपड़े न सिलवाना, एक रोटी कम खाना, कभी कभी बिल्कुल निराहार रह जाना उनके लिये मामूली बात थी और किस लिए? केवल इसलिए कि अर्द्ध-रात्रि में पुस्तकें पढ़ने के लिये तैल जुट जाय। सायंकाल से लेकर सूर्योदय तक अपने अध्ययन में तल्लीन रहना तो उनके विद्यार्थी-जीवन की एक साधारण सी घटना थी। विद्या से उन्हें इतना प्रेम था और इस प्रेम ने उनके हृदय को इतना वशीभूत कर लिया था कि विद्यार्थी-जीवन की भौतिक आवश्यकताओं और साधारण छोटी-मोटी सुविधायों का उन्हें कोई ध्यान ही न था। भूख और प्यास, सर्दी और गरमी का उस अद्भुत ज्वाला पर कोई प्रभाव न पड़ता था, जो ज्ञान के लिये उनके हृदय में सदा जलती रहती थी। उनके विद्यार्थी-जीवन को देखने वाले आज भी गुजरांवाला और लाहौर में जीवित हैं। जिन्होंने गोस्वामी जी को शुद्ध हृदय से रात और दिन अकेले, विना किसी सहायता के परिश्रम करते हुए और विना हथियार जीवन से लड़ते हुए देखा है। इन लोगों को कुछ ऐसे अवसरों की याद है, जब कि दान पुण्य का ढिंढोरा पीटने वाले इस देश में भी इस ब्राह्मण वालक को लगातार कई

दिनों तक प्रायः नहीं के बराबर भोजन मिलता था किन्तु फिर भी, आश्चर्य होता था कि कैसे उसके मुख-मण्डल की प्रत्येक नस-नाड़ी में एक अनिर्वचनीय सुख और शान्ति झलक मारती रहती थी।

अतएव हम कह सकते हैं कि जो ज्ञान स्वामी राम ने अपने आगामी जीवन की शिक्षाओं में प्रयुक्त किया है, वह उन्होंने महत्तम तपश्चर्या और कठिनतम परिश्रम के द्वारा दाना-दाना करके संचय किया था। जब हम यह याद करते हैं कि कैसी घोर दरिद्रता और जटिल परिस्थितियों में यह कली धीरे-धीरे खिलती हुई एक ही साथ हमारे सामने एक महान् कवि, दार्शनिक, विद्वान् और गणितज्ञ के रूप में प्रकट हुई तब हमारा हृदय करुणा से ओत-प्रोत हो जाता है। जब कि गवर्नमेंट कालेज लाहौर के प्रिंसिपल ने उनका नाम प्रान्तीय सिविल सर्विस के लिये भेजने की इच्छा प्रकट की तो स्वामी राम ने सिर झुका कर और आँख में आँसू लाकर यों कहा—मैंने इतना अथक परिश्रम इसलिये नहीं किया कि अपनी फ़सल को लोगों के हाथ बेचूं, यह तो सब में बाँटने के लिये जमा की है। और लो, उन्होंने सरकारी शासन-यन्त्र में उच्च पदाधिकारी होने की अपेक्षा एक शिक्षक बनना ही अधिक पसन्द किया।

विद्यार्थी-जीवन में राम सब से दूर, परिस्थितियों से अछूते केवल अपने बौद्धिक विकास में ही आकण्ठ निमग्न रहते थे। हाँ, इस एकान्त जीवन में वे सहवास करते थे केवल संसार की महान् से महान् विभूतियों के साथ अपनी पुस्तकों के द्वारा। अपनी ही उच्च अभिलाषाओं की पूर्ति में डूबे हुए न उन्हें अपने दायें ओर देखने का अवकाश था, न बाईं ओर! वे अपने आदर्श के ही अनुसार अपनी जीवन-वीणा के तार खींच रहे

थे। वे, जो उन्हें विद्यार्थी-जीवन के दिनों में पहचानते थे, अत्यंत श्रद्धापूर्वक स्वीकार करते हैं कि उनका चरित्र भीतर और बाहर पूर्णतः निर्मल था और यह कि उनका जीवन प्रारम्भ ही से एक धार्मिक उद्देश्य की पूर्ति के लिये संग्रथित हो रहा था। विद्यार्थी-जीवन में स्वामी राम भीतर ही भीतर बढ़ रहे थे। वे बार बार अपने आप को पिघलाते और उसे सांचे में ढालते, फिर पिघलाते और फिर ढालते, ताकि अन्त में पूर्णता की सिद्धि हो सके। अपनी मूर्ति की वक्र रेखाओं को काढ़ने के लिये वे रात-दिन हथौड़ा हाथ में लिये रहते थे कि अंत में सौंदर्य की प्रतिमा प्रकट हो। शुभ से श्रेष्ठ, और श्रेष्ट से श्रेष्ठतर वे नित्य आत्मोन्नति में आगे बढ़ते जाते थे। जब वे गणित के प्रोफ़ेसर हो गये, तो एक छोटी सी पुस्तक उन्होंने सब से पहले लिखी, वह थी—गणित का अध्ययन कैसे करना चाहिए? उसमें उन्होंने यह पाठ पढ़ाया है कि बराबर चिकना चुपड़ा माल-मसालेदार भोजन पेट में ठूंसते रहने से तीक्ष्ण-बुद्धि विद्यार्थी भी अयोग्य और प्रमादशील हो जाता है। इसके विरुद्ध हलके भोजन से मस्तिष्क सदैव स्वतंत्र और खुला हुआ रहता है और यही सफल विद्यार्थी-जीवन का एक गुप्त भेद है। दूसरी परमावश्यक बात जो उन्होंने बतायी वह यह है कि अपने कार्य पर समुचित ध्यान केन्द्रित करने के लिये हृदय को पूर्णतः वासनारहित होना चाहिए। केवल एक इस बात के अभाव में और कोई दूसरा ऐसा उपाय नहीं है जिसके द्वारा विद्यार्थी अपने मस्तिष्क को ठीक ढंग से कार्य में संलग्न कर सकें।

इस प्रकार अपने विद्यार्थी-जीवन के अनुभवों का सार निचोड़ कर उन्होंने हमें उक्त छोटी सी पुस्तिका में अनेक सीधे-सादे उपदेश दिये हैं। वे केवल लेखक बनने के लिये कभी नहीं लिखते

और न वक्ता बनने के लिये बोलने खड़े होते हैं, किन्तु जब सच-मुच उनके पास दूसरों को देने योग्य कोई चीज़ होती है तभी वे क़लम उठाते या ओंठ खोलते हैं।

स्वामी होने पर तो वे सदैव ईश्वर में, ब्रह्मभाव में डूबे रहते थे, वहां उस नम्र और लज्जालु बालक का कहीं पता भी नहीं चलता, जैसे कि वे बचपन में मालूम होते थे। उनकी वाणी प्रबल हो गयी थी, उनका चरित्र वाचाल हो उठा था, उनका अनुभव दूसरों को उत्प्रेरित करने वाला तथा उनका व्यक्तित्व आकर्षक, चुम्बक जैसा अपनी ओर खींचने वाला। उनकी उपस्थिति से आस-पास का सारा वायुमण्डल ही मुग्ध हो उठता। उनके सत्संग में श्रोता का हृदय मानों किसी सुरम्य आराम की झांकियों की सैर करने लगता है। एक क्षण यदि हृदय की सचाई से अभिभूत होकर अनायास ही आंखों से आँसू निकल पड़ते तो दूसरे ही क्षण उनकी जादूभरी मुस्करा-हट से आत्म संतोष की श्वास आने लगती। एक सच्चे कवि की भाँति वे जीवन की छोटी से छोटी साधारण वस्तु को भगवान् के सर्वोच्च अवतार के रूप में प्रतिष्ठित कर देते थे। उनके स्पर्श ने यदि किसी को कवि बनाया तो किसी को चित्रकार, यदि किसी को जीवन के रहस्य की ओर प्रेरित किया तो किसी को सैनिक बना डाला। बहुत से साधारण मस्तिष्क तो उनकी प्रेरणा से ऐसे ऊंचे उठ गये कि वे अपनी मानसिक शक्ति में एक निश्चित उत्थान का अनुभव करने लगे।

गंगोत्री,
सितम्बर १६०१.

पवित्र सलिला गंगा राम का वियोग न सह सकी और अन्त में एक मास होते ही होते उसने फिर राम को अपने पास बुला ही लिया। यद्यपि राम की गंगा सब भांति श्री, शक्ति और सम्पत्ति-सम्पन्ना है, फिर भी राम से मिलने पर वह अपने आनन्दाश्रुओं के वेग को किसी प्रकार न रोक सकी। गंगोत्री पर प्यारी गंगी के टटके सौंदर्य एवं विनोदशील चुहुल का वर्णन कौन कर सकता है! यहां उसके चिर सहचरों का निर्मल चरित्र, हिमालय के धवल शिखरों और निष्पाप देवदार वृक्षों का चरित्र किसके हृदय को आकर्षित न करेगा? देवदार के वृक्षों का सीधा तना तो फारसी कवियों की प्रियतमा के लम्बे क़द की स्पर्द्धा करता मालूम होता है और उनकी शान्तिदायिनी श्वास से हृदय प्रफुल्लित होकर खिल उठता है, आनन्द में एक सीढ़ी ऊपर चढ़ जाता है।

यमुनोत्री की यात्रा के बाद गंगोत्री पहुंचने में यात्रियों को साधारणतः दस दिन से कम का समय नहीं लगता। केवल तीन ही दिन में राम यमुनोत्री छोड़कर गंगोत्री पर पहुंच गया। उसने एक ऐसे मार्ग का अनुसरण किया था, जिस पर नीचे मैदान के किसी निवासी के पैर शायद ही कभी पड़े हों। पर्वतीय इस मार्ग को छाया-पथ के नाम से पुकारते हैं। लगातार तीन रातें राम ने जंगल की एकान्त गुफाओं में काटीं। मार्ग में न कोई बस्ती और न कोई झोपड़ी दृष्टिगोचर हुई। दो पैरों वाला भी इस यात्रा में कहीं कोई न दिखाई दिया।

छाया-पथ वह इसलिए कहलाता है कि प्रायः वर्षभर इस पर घनी छाया रहती है। किसकी? तुम सोचते होगे—पेड़ों की? नहीं, इस पथ का अधिकांश भाग बादलों से घिरा रहता है। यमुनोत्री और गंगोत्री के समीपवर्ती गांवों के गड़रिये अपनी भेड़ों को चराते हुए वर्ष के दो-तीन मास हर वर्ष इन्हीं जंगलों में बिताते हैं। वे प्रायः दो हिमाच्छादित

शिखरों—बन्दरपूंछ और हनुमान मुख के समीप मिलते हैं। यही दोनों शिखर उन विश्वविख्यात भगिनी सरिताओं के स्रोतों को जोड़ते हैं। इस सारे पथ में फूलों की ऐसी अंधाधुन्ध बाढ़ रहती है कि सारा मार्ग सुनहले फ़र्श से ढका मालूम होता है। पीले, नीले और गुलाबी फूल तो रंग-बिरंगे ढेर के ढेर चारों ओर फैले रहते हैं। ढेर के ढेर lily, voilets, daisies, tulips गुलगुल, धूप, अतिशय प्यारे रंगों वाली ममिरी, केशर, इन्नुस और अत्यन्त मनोहर सुगंध देने वाले तरह तरह के अनेक फूल, मेडगद्दा, अपूर्व ब्रह्म कमल आदि अनेक पौधे वहां पाये जाते हैं, जिससे ये पर्वत ऐसे सुरम्य विहार बन जाते हैं कि जहाँ पृथ्वी और आकाश का स्वामी भी रहने की ईर्ष्या कर सकता है।

* * *

कहीं कहीं पर तो हवा के झोंकों पर सुगन्ध का ऐसा तूफ़ान उठता है कि राम का हृदय मधुर संगीत की भांति नाच उठता है। वायु पर सवार सुगंधि का यह विशाल सरोवर—एकदम मधुर और एकदम कोमल—दो प्रेमी हृदयों के सम्मिलन की मुस्कराहट के समान मधुर और उनके वियोगजनित अश्रुओं की भांति कोमल। इन दीर्घाकार पर्वतों की चोटियों पर सुन्दर खेत ऐसे सुशोभित रहते हैं, जैसे बेल-बूटेदार कालीन बिछे हों। इन पर देवता गण या तो भोजन करने उतरते होंगे अथवा नृत्य उत्सव के लिए। कलकल ध्वनि वाले निर्झर और नुकीले पहाड़ों से गरजने वाले नद यत्र-तत्र इस अद्भुत दृश्य की शोभा बढ़ाते रहते हैं। किसी किसी चोटी पर मानो दृष्टि के सारे बन्धन कट जाते हैं। चाहे जिस ओर दृष्टि दौड़ाइये—कहीं कोई रुकावट नहीं, न कोई पहाड़ी और न कोई असन्तुष्ट बादल। उन्मुक्त हो चाहे जहां विचरे। कोई कोई उच्च शिखर तो मानो आकाश में छेद करने की स्पर्द्धा सी करते हैं। वे अपनी उड़ान में रुकना जानते ही नहीं, ऊंचे उठते-उठते मानो सर्वोच्च आकाश से एक हो रहे हैं।

राम का वर्तमान निवास पर्वतीय रंग-मंच पर एक छोटी सी सुरम्य झोपड़ी में है। चारों ओर हरियाली का फ़र्श बिछा हुआ है। इस एकान्त प्राकृतिक उद्यान में गंगा की शोभा देखते ही बनती है। राम बूटी का यहां कोई पार नहीं। गौरैया जैसी अनेक प्रकार की चिड़ियां यहां रात दिन चहचहाती रहती हैं। जलवायु बड़ा उत्साहवर्द्धक है। गंगा की कलकल और पक्षियों का कलरव दोनों मिलकर स्वर्गीय उत्सव का दृश्य उपस्थित करते हैं। यहां गंगा की घाटी काफी चौड़ी है। किंतु इस लम्बे-चौड़े मैदान में भी गंगी का प्रवाह बहुत तेज़ है। फिर भी राम अनेक बार उसके आर-पार जाता आता रहता है। कभी कभी केदारनाथ और बदरीनाथ भी राम बादशाह को बड़े प्रेम से आने के लिये निमन्त्रण भेजते हैं किन्तु ज्योंही प्यारी गंगी को राम के वियोग का संकेत मिलता है त्योंही वह उदास और दुखी होने लगती है। राम भी उसे दुखी करना पसन्द नहीं करता! उसकी उदासी किसे अच्छी लगेगी?

सुमेरु दर्शन

यमुनोत्री की गुफा में रहते समय राम का दैनिक भोजन था मर्चा (एक प्रकार का पहाड़ी अन्न) और आलू और वह भी चौबीस घंटों में केवल एक बार। फलतः कुछ दिनों में मंदाग्नि हो गयी। इसी रुग्णा-वस्था के चौथे दिन बड़े तड़के गरम चश्मे में नहाने के बाद राम सुमेरु यात्रा के लिये निकल पड़ा—केवल एक कोपीन पहन कर—न कोई जूता, न कोई पगड़ी और न कोई छाता। पांच हृष्ट-पुष्ट पहाड़ी गरम कपड़े पहन कर राम के साथ हुए। नारायण और तुलाराम नीचे धरसाली भेज दिये गये।

सब से पहले हमें शिशुरूपिणी यमुना तीन चार स्थलों पर पार करनी पड़ी। कुछ दूरी पर यमुना घाटी का मार्ग एक विशालकाय Ava-lanche हिम-शिलाखण्ड से अवरुद्ध था—४०।५० गज़ ऊँचा और डेढ़ फ़रलांग के लगभग लम्बा। एकदम सीधे दो पर्वत शिखर दो

दीवालों की भांति सगर्व दोनों ओर खड़े हुए थे। जैसे सचमुच राम बादशाह का पथ रोकने के लिये उन्होंने कोई षडयंत्र रचा हो? राम कब परवाह करता है! सुदृढ़ अचल संकल्प-शक्ति के आगे बाधायें ऐसे भागती हैं जैसे आंधी के आगे बादल। हम लोगों ने पर्वत की पश्चिमीय दीवाल पर चढ़ना प्रारम्भ किया। कभी कभी हमें पैर जमाने के लिये एक इंच भी भूमि नहीं मिलती थी। केवल एक ओर हाथों से सुगन्धित किन्तु कंटीली गुलाब की झाड़ियों को पकड़ कर और दूसरी ओर पर्वतों की चा नामक कोमल घास के नन्हें नन्हें डंठलों में पैर की उंगलियां गड़ा कर हम बदन को संभाले रहते थे। किसी भी क्षण हम मृत्यु के मुख में गिर सकते थे। यमुना की घाटी में बर्फ़ के ठंडे बिस्तरों से भरा हुआ एक गहरा खड्ड हमारे स्वागत के लिये मुंह फैलाये खड़ा था। ज़रा भी जिसका पैर कांपता वही आराम से सुशीतल हिम समाधि में जाकर सो जाता। निचाई से आनेवाली यमुना की धीमी धीमी मर्म ध्वनि अब भी हमारे कानों में पड़ती थी, जैसे कब्रिस्तान में मृत्यु कालीन बाजा बजता हो। इस तरह हम लोग पूरे पौन घंटे तक बराबर मानो मृत्यु के मुख में चलते रहे। सचमुच विचित्र परिस्थिति थी—एक ओर मृत्यु हमारे लिये मुँह बाये खड़ी थी और दूसरी ओर ऐसी भीनी भीनी सुगंध वाली शीतल और मधुर वायु के झोंके आ रहे थे जिससे चित्त एकदम खिल उठता था। इस भयानक और दुरूह चढ़ाई के बाद हम लोगों ने उस भयंकर अवरोधक को पार कर लिया। वह भयंकर हिमशिलाखण्ड और यमुना पीछे छूट गई। हमारी टुकड़ी पुनः एक सीधे खड़े पर्वत पर चढ़ने लगी। किन्तु कोई रास्ता, कोई पगडंडी—कुछ भी दृष्टिगोचर न होता था। था एक बड़ा भारी सघन जंगल था, जिसमें वृक्षों की टहनियां भी ठीक समझ में न आती थीं। राम का शरीर कई जगह छिल गया। Oak और birch देवदार और चीड़ के इस गम्भीर वन में एक घंटे तक संघर्ष करने के बाद अन्त

में हम लोग एक ऐसी खुली जगह में पहुंचे जहां वनस्पति अपेक्षाकृत बहुत छोटी थी। वायुमण्डल में विद्युत जैसी लहरें फैल रही थीं, सुगंध के फव्वारे छूट रहे थे। इस चढाई ने पहाड़ियों को बेदम कर दिया। पर इस व्यायाम से राम का चित्त प्रफुल्लित हो उठा— यहां की धरती अधिकतर चिकनी थी। फिर भी चारों ओर एक से एक मनोहर दृश्य—सुन्दरतम फूलों का कानन और हरियाली की बहार ने हमारी इस कठोर यात्रा के श्रम को हमारी चित्तवृत्ति से सदा दूर ही रखा।

* * *

और उन दिनों बीमार रहने वाला राम! वह तो और बीमार हो गया होगा! नहीं, उस दिन बिल्कुल चंगा रहा। न कोई रोग, न कोई थकावट, शिकायत का नामोनिशान नहीं। कोई भी पहाड़ी उससे आगे न निकल सका। हम लोग ऊपर-ऊपर चढ़ते ही गये, जबकि हर एक को भूख लग आई। इस समय हम उस प्रदेश में पहुंचे हुए थे, जहां कभी पानी नहीं बरसता, गिरती है केवल बर्फ़ अत्यन्त सौंदर्यमयी उदारता के साथ।

यहां इन नंगे और वीरान शिखरों पर हरियाली का भी नामोनिशान नहीं दिखाई देता। हमारे आगमन के पहले ही सुन्दर हिमपात हुआ था।

राम के स्वागत के लिये साथियों ने एक पत्थर की बड़ी चट्टान पर कालीन की भांति एक लाल कम्बल बिछा दिया और पिछली रात जो आलू उबाले गये थे, भोजन के लिये परोस दिये। साथियों ने भी वही सीधा-सादा बासी भोजन बड़े अनुग्रह के साथ खाया।

······भोजन करने के बाद हम लोग तुरन्त ही उठ खड़े हुए। दृढ़ता के साथ हम लोग आगे बढ़े किन्तु ऊपर की चढ़ाई कठिन थी। एक नवयुवक थक कर गिर पड़ा, उसके फेफड़ों और हाथ पैरों ने आगे

चढ़ने से इन्कार कर दिया। उसका सर चक्कर खाने लगा। उस समय उसे वहीं छोड़ दिया गया। थोड़ी दूर चलने के बाद एक दूसरा साथी बेहोश होकर गिर पड़ा। उसने कहा—मेरा सर घूम रहा है। वह भी उस समय वहीं छोड़ दिया गया। शेष टुकड़ी आगे बढ़ी। किन्तु थोड़ी देर बाद तीसरा साथी भी गिरा। उसकी नाक फूट गई, रक्त बहने लगा। दो साथियों को लेकर राम ने आगे का मार्ग लिया।

तीन अत्यन्त सुन्दर बरार (पहाड़ी हिरन) हवा की तरह दौड़ते हुए निकल गये।

लो, चौथा साथी भी लड़खड़ाने लगा और अन्त में हिमाच्छादित शिला पर लेट गया। वहां कहीं तरल जल नहीं दिखाई देता। किन्तु शिलाओं के नीचे से, जहां वह आदमी लेटा था, गंभीर घर-घर की आवाज़ आती थी। एक ब्राह्मण, इस समय भी राम के साथ था, वही लाल कम्बल, एक दूरबीन, एक हरा चश्मा और एक कुल्हाड़ी लिये हुए। वहां हवा बिल्कुल पतली है, जिससे सांस लेने में बड़ी कठिनाई होती है। फिर भी आश्चर्य! दो गरुड़ हमारे सिरों के ऊपर उड़ते हुए निकल गये। अब, बहुत पुरानी, अत्यन्त प्राचीन कालीन गहरे काले रंग की बर्फ़ की एक ढलवां चढ़ाई चढ़ना थी। विकट काम था। साथी ने कुल्हाड़ी से उस रिपटने वाले बर्फ़ में कुछ गड्ढे बनाना चाहे, जिससे उनमें पैर जमा करा कर ऊपर चढ़ा जाय। किन्तु वह पुरातन हिमखण्ड इतना कड़ा था कि उस बिचारे की कुल्हाड़ी टूट गई। और ठीक उसी समय एक बर्फ़ के अन्धड़ ने आ घेरा। राम ने उस बिचारे दुखी हृदय को सान्त्वना देने की चेष्टा की। भगवान् कभी हम लोगों का अनिष्ट नहीं कर सकता, इस हिमवर्षा से हमारा मार्ग निस्संदेह सुगम हो जायगा। सचमुच हुआ भी यही। उस भयानक हिमपात से ऊपर चढ़ना कुछ आसान हो गया। नुकीली पर्वतीय छड़ियों की सहायता से हम लोग उस ढाल के ऊपर चढ़ गये और लो, हमारे सामने साफ़, चौरस,

चमचमाती हुई वर्फ़ का मीलों विशाल लम्बा चौड़ा मैदान प्रस्तुत था। शुभ्र रजत जैसी आभा से जगमग फ़र्श—चारों ओर से एकदम समतल। हर्ष—परम हर्ष ! जाज्वल्यमान क्षीरसागर, चमकदार, परमोत्तम, विचित्र, विचित्र से विचित्र। राम के हर्ष का वारापार न था। उसने अपनी पूरी चाल से दौड़ना शुरू किया, कंधों पर लाल कम्बल डालकर, और केनवस के जूते पहन कर ऐसी तेज़ी से दौड़ा जैसा कभी न दौड़ा होगा।

इस समय राम बिल्कुल अकेला था। एक भी साथी नहीं—आत्मा का हंस भी तो अन्त में अकेला ही उड़ता है।

लगभग तीन मील तक राम दौड़ता चला गया। कभी-कभी टांगें वर्फ़ में धँस जाती थीं और निकलती थीं, बड़ी कठिनाई से। लो, अब एक हिमानी ढेर पर लाल कम्बल बिछा दिया और बैठ गया, राम एकदम अकेला संसार के गुलगपाड़े और झंझटों से एकदम ऊपर—समाज की तृष्णा और ज्वाला से एकदम परे। नीरवता की चरम सीमा, शान्ति का साम्राज्य ! शक्ति का अतुल विस्तार। शब्द का नामोनिशान नहीं, है केवल आनन्द घनघोर। धन्य, धन्य, उस गम्भीर एकान्त को सहस्र वार धन्य !

बादलों का घूंघट भी यहां पतला पड़ जाता है और उस पतले परदे में होकर सूर्य की किरणें छन करके फ़र्श पर ऐसे गिरना शुरू होती हैं कि बात की बात में उस शुभ्र रजत हिम को प्रदीप्त स्वर्ण में परिणत कर देती हैं। कितना उपयुक्त नामकरण हुआ है इस स्थान का सुमेरु पर्वत—सोने का पहाड़ !

ओ दुनिया के भोले-भाले लोगो ! देखो, देखो, क्या किसी सुन्दरी के कपोलों की गुलाबी आभा, चमक से चमकदार हीरा की प्रभा, सुन्दर से सुन्दर राजप्रसाद की कला—इस सुमेरु की अतुलनीय मनोहरता और सौंदर्य की तुलना में एक क्षण के लिये भी टिक सकती है ! नहीं, नहीं ! अभी और ऐसे असंख्य सुमेरु तुम्हें अपने

ही भीतर मिलेंगे, जब तुम एक बार भी अपनी वास्तविक आत्मा का साक्षात् कर लोगे। सारी सृष्टि "मिट्टी के ढेले से लेकर बादल तक, शस्य-श्यामला भूमि से लेकर नीलाम्बर तक और उस सृष्टि के भीतर रहने वाले सभी सजीव प्राणी — चीटीं से लेकर आकाश में उड़ने वाले गरुड़ तक तुम्हारे स्वागत के लिये उठ खड़े होंगे।" कोई देवता भी तुम्हारी अवज्ञा का साहस नहीं कर सकता।

*　　　*　　　*

भीम ताल

टेहरी से प्रस्थान करने के बाद आज उत्तराखण्ड की पहाड़ियों का मनोहर दौर, ६०० मील की छोटी सी यात्रा — परिभ्रमण समाप्त हो गया।

इस समय ठीक मध्याह्न है। भीमताल की लम्बी चौड़ी झील चमकते हुए सूर्य की सुनहली किरणों से दहक रही है। यौवन-सम्पन्ना पहाड़ियां हरे-हरे दुशालों के घूंघट में अपने चेहरे छिपाये हुए चारों ओर से आंख चढ़ाये ताक रही हैं।

एक छोटी सी सफेद रंगी हुई नाव राम को लेकर झील के विशाल समतल लहर-विहीन वक्षःस्थल पर तैर रही है, जैसे महादेव के मस्तक पर दोज का चन्द्रमा खेलता हो।

नीचे दिये हुए पत्र स्वामी राम ने हिमालय से, अमरीका से लौटने पर, लिखे थे—

वशिष्ठ आश्रम

आज संध्या समय वर्षा रुक गई। तरह-तरह के अद्भुत भेष धारण करने वाले मोटे-पतले बादल विभिन्न दिशाओं में उड़ रहे हैं। सूर्य के प्रकाश से चमत्कृत ये बादल स्वयं अपनी चमक से सम्पूर्ण दृश्य को आभामय सरोवर में परिणत कर देते हैं। आकाश मण्डल के ये खिलाड़ी बालक कैसे तरह-तरह के लुभावने रंग धारण करते हैं! ओ-हो, कौन चित्रकार उनका यथार्थ चित्रण कर सकता है? कौन निरीक्षक

उनके क्षण-क्षण पर बदलने वाले रंग और छायाओं का विश्लेषण कर सकता है ! चाहे जिधर आंख उठाओ, आंख गुलाबी, नारंगी, बैंजनी, हरे-पीले रंगों की दमक से भर जाती है, उनके क्षणिक परिवर्तनों का क्या कोई वर्णन हो सकता है ? हां, इस दृश्य के बीच कभी कभी उस चिरन्तन मधुर शस्य-श्यामला भूमि पर हमारे नेत्र गड़ जाते हैं। आभा के इस अतुलनीय वैभव से स्वतः आनन्द का उद्रेक होने लगता है और राम की आँखों से बरबस प्रेम के आंसू बह निकलते हैं। बादल विलीन होजाते हैं और एक चिरन्तन संदेश हमें छोड़ जाते हैं। क्या वे प्रभु के पास से अमृत का प्याला भर-भर लाते और फिर उसी के पास चले जाते हैं ? ऐसे ही वास्तव में होते हैं आकर्षक पदार्थ ! वे प्रकट होते हैं और क्षण भर राम की प्रभा छितरा कर न जाने कहां विलीन होजाते हैं ! पागल हैं वे सचमुच जो इन नाशमान् बादलों के प्रेम में फंस जाते हैं। जान बूझकर ही लोग इन नश्वर चीजों के चंचल बादलों को पकड़ने की जिद करते हैं और उनके लोप होने पर बच्चों की भांति रो पड़ते हैं। कैसे मजे की बात है! ओ हो ! राम तो अपनी हंसी किसी प्रकार नहीं रोक पाता।

कुछ लोग ऐसे भी हैं जो अपना सारा समय इन बादलों (दृश्य-जगत्) के बारीक से बारीक परिवर्तनों को ध्यान पूर्वक देखने और उन्हें यथार्थतः लिपिबद्ध करने में ही व्यतीत कर देते हैं। शोक ! इन जीवों का क्या कहा जाय ! उनके चारों ओर प्रभा का सरोवर लहरें मार रहा है, और वे उसमें अपने प्रकाश की प्यास बुझाने की परवाह नहीं करते। इन्हीं लोगों को दुनिया वैज्ञानिक और दार्शनिक कहती है। वे बाल की खाल निकालने ही में डूबे रहते हैं, उन्हें प्यारे के उस ज्योतिर्मय सर का पता ही नहीं चलता, जिसके बालों की खोज में ये लगे रहते हैं। इसीलिए तो राम की हंसी रोके नहीं रुकती।

कैसा धन्य और आनन्दमग्न है वह जिसकी दृष्टि नाम-रूप के इन बादलों से कुण्ठित नहीं होती, जो उस लुभावने प्रकाश के सहारे उसके

आदि-स्रोत (आत्मा) तक पहुंच जाते हैं, जिनका प्रेम असली लक्ष्य (ईश्वर) को वेधता है, जो बीच ही के रास्ते में सूख जाने वाले चश्मों की भाँति भ्रष्ट न हो सागर तक पहुंच जाते हैं। मन को प्रसन्न करने वाले सम्बन्धों को नाश होना ही है। वे तो केवल चिट्ठीरसा हैं। बस, प्रभु के उस प्रेमपत्र को सावधानी से संभालो, जो वे तुम्हारे लिये लाये हैं। दियासलाई की काड़ी को तो शीघ्र जल ही जाना है किन्तु धन्य है वह जिसने उसके द्वारा अपना दीपक स्थायी रूप से जला लिया है। कोयला और भाप तो अल्पकाल में चुक ही जायंगे पर भाग्यवान् है वह नाव जो घातक विनाश के पहले ही पहले अपने घर (बन्दरगाह) पर जा लगती है। जीवित यहां वही रह सकता है जो चाहे जिस पदार्थ को ईश्वर की ओर बढ़ने का साधन बना लेता है, जिसे हर एक चीज़ में ईश्वर की झाँकी दिखाई देने लगती है। यह दुनियां, उसके तारे, उसके पर्वत और नदियां, उसके राजा और वैज्ञानिक बनाये गये हैं सब उसीके लिए। यह निस्संदेह बिल्कुल सत्य है और राम तुम से सत्य ही सत्य कहता है।

खेत और प्राकृतिक दृश्य—शहरों की धूल और गर्दभरी, चित्त को बिगाड़ने वाली सड़कों को याद करके इनके आकर्षण से चित्त पुलकित हो उठता है। वे मनुष्य में परिच्छिन्नता की भावना को उत्तेजना नहीं देते. वे उसे बरबश शरीर के घोंसले में नहीं घुसेड़ते। उनकी उपस्थिति में, उनके सहवास में मनुष्य अपेक्षाकृत आसानी से साक्षी का आसन ग्रहण कर सकता है। भीतरी दृष्टि से वनस्पति जगत् में उतना ही, शायद उससे भी अधिक संघर्ष, प्रयास और चंचलता होती है जितनी कि किसी सभ्य मानव समाज में देखी जाती है किन्तु उस समय उसका संघर्ष भी हमारे लिये आकर्षण का विषय बन जाता है, जब कि मनुष्य Cedar. oak and pines देवदार, चीड़ आदि के कानन में अपने आप को उनसे अलग समझता हुआ निर्द्वन्द्व विचरता है। प्रकाशरूप साक्षी

को उस संघर्ष से कोई वेदना नहीं होती। जिस प्रकार कोई भी इस जंगल में मंगल के साथ विचर सकता है, उसी प्रकार जब वह व्यक्ति शहरों की हलचल में निर्द्वन्द्व घूमता है, जो अपने आप शरीर के साथ तदात्म न होता हुआ अपने शरीर को उस जंगल का केवल एक पेड़ समझ लेता है, उसके लिये संसार और स्वर्ग में क्या अन्तर रह जाता है! सारी सृष्टि आनन्द का उद्यान बन जाती है। ब्रह्मानुभव से भरे हुए ऐसे महात्मा संसार के प्रकाशक होते हैं। वह प्रकाश निर्द्वन्द्व दर्शक के रूप में प्रकट होता हुआ, सारी सृष्टि, समस्त दृश्य-जगत् का प्राण-रूप होता है।

प्राण-सरिता सवेग बह रही है। परमात्मा के सिवा और किसका अस्तित्व है? जब कोई है नहीं, फ़िर मुझे भय किसका हो! प्राण मात्र मेरे प्रभु का प्राण है, उसके सिवा कोई है नहीं, मैं भी तो वही हूं। सारा संसार हिमालय का आनन्द-कानन है। जब उजाला होता है तब फूल हँसने लगते हैं, चिड़ियां गाती हैं, चश्मे हर्ष से नाचने लगते हैं। यहाँ उजालों का उजाला प्रकाश का सागर लहरा रहा है, आनन्द की हवा बहती है।

इस सुन्दर कानन में राम हँसता है, गाता है और ताली बजा बजा कर नाचता है।

क्या कोई राम की खिल्ली उड़ाता है, अरे वह तो वायु की सरसराहट है! क्या कोई दिल्लगी उड़ाता है, वह तो पत्तियों की खड़खड़ाहट है! राम का ही प्राण चश्मों में, देवदारों में, चिड़ियों में, वायु की सनसनाहट में स्वांस ले रहा है, क्या वह कभी राम को ढक सकेगा?

* * *

वसन्त की चोटी—वशिष्ठ आश्रम

आनन्द! आनन्द! चन्द्रमा छिटक रहा है, चारों ओर शुभ्र शान्ति का सागर उमड़ा है। राम के घासफूस के बिस्तर पर चन्द्रिका खेल रही है। साधारण से अधिक ऊंची श्वेत गुलाब की

झाड़ियां, जो इस पर्वत पर पूर्ण निर्भय और उन्मुक्त हो अंधाधुन्ध उगती हैं, अपनी परछाईं से चन्द्र-प्रकाशित विस्तर को ऐसे सजाती हैं और झूम झूम कर ऐसी प्रसन्न होती हैं, मानो वे उस शान्ति भरी चन्द्रिका के छोटे-छोटे सुन्दर स्वप्न हों, जो राम के सामने निर्द्वन्द्व हो सोते हैं।

सो जा, मेरे बच्चे सो जा!
और नींद में ही गुलाबी स्वप्नों का मज़ा ले।

यमुनोत्री, गंगोत्री, सुमेरु, केदार और बदरी के हिमनिर्झर यहां से इतने पास मालूम होते हैं, मानो हम हाथ बढ़ा कर उनको छू सकते हैं। वास्तव में हीरा जैसी आभा से देदीप्यमान शिखरों का एक अर्द्ध वृत्त इस वशिष्ठ आश्रम को घेरे हुए है, मणि-माणिक जैसे इन पर्वतों के हिमाच्छादित शुभ्र शिखर एक साथ चन्द्रिका के क्षीर सागर में स्नान करते हैं और शीतल पवन के झोंके के रूप में उनकी गम्भीर सोऽहम् श्वास-प्रश्वास यहां निरन्तर सुनाई देती है।

इस पर्वत की बर्फ़ अब प्रायः सारी की सारी पिघल चुकी है और चोटी के पास का विस्तीर्ण खुला हुआ क्षेत्र पूर्णतः नीले, गुलाबी, पीले और धवल पुष्पों से भर गया है, कोई-कोई तो इनमें से अत्यन्त सुगंधित हैं। लोग यहां आने से घबराते हैं, उनका विश्वास है कि यह परियों का उद्यान है। उनकी इस धारणा का फल यह है कि देवताओं का यह सुरम्य आराम प्राकृतिक सौंदर्य को नष्ट करने वाले अपवित्र मनुष्यों के संसर्ग से बचा हुआ है। राम इस पुष्प-शय्या पर बड़ी कोमलता से, अतीव सावधानी से विचरण करता है, कारण वह किसी नन्हें से मुस्कराते हुए फूल के मुख को पैरों की अकोमल दाब से चोट नहीं पहुंचाना चाहता।

कोयल, फ़ाख़्ता एवं अन्य अनेक प्रकार के गाने वाले पक्षिवृन्द प्रातः काल नित्य राम का मनोरंजन करते हैं, कभी कभी विकराल वेश-धारिणी मक्षिका भी गुफा की छत के पास आकर अपनी विचित्र रट

जैसी संगीत-ध्वनि के साथ भनभनाने लगती है कि राम की हंसी रोके नहीं रुकती। मध्याह्न के समय पक्षिराज गरुड़ इतने ऊंचे उड़ते हैं कि काले बादलों के साथ एकरूप से हो जाते हैं—यही गरुड़ तो विष्णु को अपनी पीठ पर सवार करते हैं न ?

समीपवर्ती पर्वतीय सरोवर के चारों ओर हरे-भरे कानन के दिग्गज वृक्षों का कैसा जमघट है, मानो कोई सुरम्य नगर बसा हो। भला, इन्हें कौन सी शक्ति एकता के बन्धन में बांधे हुए है, सब अलग अलग, न कोई सम्बन्ध, न कोई व्यक्तिगत नाता-रिश्ता। हां, उनका एक सामाजिक संगठन कहा जाता है, क्योंकि आख़िर वे सब के सब उसी एक सरोवर में ही तो अपनी जड़ें फैलाये हुए हैं। उसी एक पानी का प्रेम उन्हें आपस में बांधे हुए है। सो उसी एक सत्—सत्य के प्रेम और भक्ति में हमें एक हो जाना चाहिए। हम एक आनन्द कानन में, एक हृदय में, एक राम में आकर मिलें।

जगदंबी की हरियाली

मेह ने वसून पर्वत के शिखर की प्रायः सभी गुफ़ाओं को झील बना दिया था, अतः शिखर-स्थित अप्सराओं के उद्यानों को राम ने छोड़ दिया। वह नीचे उतर कर एक अत्यन्त मनोरम, उच्च और चौरस हरे-भरे मैदान में ठहर गया, जहां सुरम्य समीर नित्य अठखेलियां किया करती है। चमेली श्वेत और पीली अन्य अनेक सहोदरा पुष्पों के साथ यहां बहुतायत से उगती है। रक्तवर्ण, गुलाबी और रंग-बिरंगे जंगली फूलों की तो यहां बाढ़ सी आई है। अभी अभी नई बनायी हुई झोंपड़ी के एक ओर एक विशाल हरा-भरा मैदान दो तेज बहने वाले निर्झरों के बीच दुआबा सा बनाये हुए है। सामने का चित्रपट कितना चित्ताकर्षक—बहता हुआ पानी, नई-नई कोंपलों से ढकी हुई पहाड़ियां, लहरियादार जंगल और खेत! हरियाली के बीच बीच में नंगी चिकनी पत्थर की चट्टानें राम के लिये सिंहासन और मेजों का काम

देती है। यदि छाया की आवश्यकता होती है तो पास के कुंज सहर्ष उसका स्वागत करते हैं।

तीन घंटों में ही जंगल निवासी गड़रियों ने एक झोपड़ी तैयार कर दी। अपनी शक्ति भर उसे उन्होंने मेह से अगम्य बनाया। रात्रि में आंधी और मेह का भयंकर तूफ़ान आया। प्रत्येक तीन-तीन मिनट पर बिजली चमकती थी और भयानक गरज होती थी—ऐसी कि आस-पास के पर्वत कँपते और दहल उठते थे। भगवान् इन्द्र लगातार तीन घंटे तक वज्र घुमाते रहे। अधाधुंध वर्षा हुई। विचारी झोपड़ी बुरी तरह चूने लगी। ऐसे भयंकर तूफ़ान को सहना उस के वश का न था, छत ने जवाब दे दिया, यहां तक कि राम को पुस्तकों को भीगने से बचाने के लिये छाता खोलकर रखना पड़ा। कपड़े पानी से सराबोर हो गये। हां, धरती पर काफी घास बिछा रहने से वहां कीचड़ ने प्रवेश न किया किन्तु वह भी पानी से, जो छत से बूंद-बूंद कर टपकता था, एकदम तर-बतर हो गया। राम को इस झड़ी में मछली और कछुवे के जीवन का मजा आया। उस रात जल-जीवन के अनुभव ने राम को एक विशेष आनन्द दिया।

अपने जीवन की पूरी आयु में से एक रात कम कर दो और बिल्कुल न सोओ—

धन्य है वह झंझावात जो हमें प्रभु के संसर्ग में लाकर खड़ा कर देता है। "ओ पर्वतों को हिलाने वाले प्यारे मैं तुझे किसी भी मूल्य पर—ओ वज्र! मैं तुझे सैकड़ों गुना मूल्य पर, सहस्रों गुना मूल्य पर भी बेचने के लिये तैयार नहीं हूँ। तू तो मेरे लिये अनन्त सौंदर्य का आगार है।"

ओ शुक्र (सर्वशक्तिसम्पन्न) चाहे तू दूर दूर (गरजते हुए बादलों में) निवास करे! ओ! वृत्रघ्न (संदेह निवारक) चाहे तू मेरे हाथ के पास (सरसराती वायु के रूप में) आजा—यहाँ तो हर समय आकाश-मण्डल में गूंजने वाले गीत (चित्त को,भेदने वाली प्रार्थना) तेरे लिये

निकलती रहती है जो लम्बी अयाल वाले घोड़ों की भाँति तेरी सवारी के लिये प्रस्तुत किये जाते हैं ! फिर तू तेजी के साथ उसके समीप क्यों न आयेगा, जिसने (अपने जीवन का) रस तेरे लिये निचोड़ा हो। आ, और मेरे हृदय में पैठ और मेरे जीवन की सुरा (सोम) का पान कर।

मनुष्य इसलिए नहीं बनाया गया कि अपना सारा जीवन छोटी छोटी शंकाओं और समाधानों में खपा दे। ओ, यदि मैं ऐसा करूँ तो मेरी क्या गति होगी, इस मूर्खता का क्या परिणाम होगा—मैं कैसे जीवित रहूंगा। राम को कम से कम उतना आत्म-गौरव तो रखना ही चाहिए जितना कि पानी की मछलियां, हवा की चिड़ियाँ—नहीं, नहीं, धरती के पेड़ रखते हैं। उन्हें कभी किसी ने झंझावात की तेजी पर अथवा धूप की प्रखरता पर बड़बड़ाते सुना है क्या ! वे तो प्रकृति के सुर में सुर मिलाकर ही जीवित रहते है। मेरी आत्मा, मैं ही स्वयं जल-रूप से घनघोर वर्षा करता हूँ। तूफ़ान में मेरा बल कितना सुन्दर खिलता है। हृदय से सदैव शिवोहम् की हूक उठती रहती है।

दिन और रात—एक भी ऐसी नहीं जाती, जब पानी की एक तेज़ बौछार न मार जाती हो और जैसा कि उल्लिखित कालिदास के पहले श्लोक में दर्शाया गया है, राम नित्य ही अपने पर्वत-पर्यटन में इसी घन-घोर वर्षा में जाता है। यहां आस पास, पड़ौस में कोई गुफा भी नहीं, अतः गरजने वाले घन ही राम के लिये छाता बन जाते हैं और राम उनकी अपूर्व वर्षा का स्वाद लेता है—ओ कैसा दिव्य !

कैसे आनन्दमग्न हैं वे कानन के देवदार और चीड़ आदि वृक्ष जिनका वर्णन दूसरे श्लोक में हुआ है, जो कँपते और थरथराते रहते हैं, फिर भी अपने शरीर को गंगा की झाग की ठंढी फुहार का निशाना बनाने में कभी कुण्ठित नहीं होते।

ओ, वैसा सौभाग्य कब मिलेगा जब झंझावात की शीतलता, प्रलय के सौंदर्य के आगे हम सहर्ष अपना वक्षःस्थल खोल सकें !

नवां परिच्छेद

पर्वत और एकान्त प्रेम

स्वामी राम को पर्वत बड़े प्यारे थे। वे गंगोत्री की हिम-शिलाओं पर चढ़े थे और चढ़े थे ऊँची 'बन्दर पूंछ' पर और फिर यमुनोत्री से बीच के सभी हिमाच्छादित शिखरों को पार करते हुए गंगोत्री को लौटे थे। अमरीका में वे शास्ता पर्वतों पर चढ़े थे। वहां से पुनः भारतवर्ष लौटने पर उन्होंने सहस्र तरु ताल पर चढ़ाई की थी जहाँ से भिलिंग गंगा का उद्‌गम होता है। जो स्वामी राम किशोरावस्था के समय विद्यार्थी-जीवन में शरीर से इतने निर्बल और दुबले-पतले थे, कैसे उनमें सहसा हिमालय की हिमशिलाओं के वक्षस्थल पर खेलने कूदने का अनुराग भर गया, और कैसे उन्होंने बिना समुचित वस्त्रों के, एक प्रकार से बिल्कुल नंगधड़ंग घनघोर हिमवर्षाओं की अवहेलना करते हुए उस चिरन्तन हिम-स्थली में रहना पसन्द किया—यह सोचने की बात है; क्या साधना की सम्पन्नता से ऐसा बल प्राप्त किया जा सकता है? नहीं, वह अनुराग तो उनमें उस समाधिजन्य उत्कण्ठा के फलस्वरूप आया था जिसकी एकांत लौ उनके भीतर अनवरत से जल रही थी। पर्वतों की सैर का ऐसा बढ़ा-चढ़ा अनुराग उनमें

उनके आंतरिक जीवन की सूचना और परिचय देता है, जो उन के भीतर पूर्ण रूप से खिल चुका था। जिसकी प्रेरणा से वे हिमालय की चिरंतन हिम-शिलाओं को प्यार करते थे, प्यार करते हुए प्रसन्न होते थे और प्रसन्न होते कभी थकते न थे।

मैदानों में नीचे उतरने पर लखनऊ में उनका फोटो लिया गया। यद्यपि किसी फोटोग्राफ़ से मनुष्य को ठीक रूप में नहीं समझा जा सकता, तथापि उसके द्वारा एक साधारण प्रभाव हमारे ऊपर पड़ता ही है। और लखनऊ के इस चित्रांकन में वे ऐसे पवित्र दिखायी देते हैं जैसे कोई हिमाच्छादित धवल शिखर! उनका मुखमण्डल अन्य सब चेहरों से भिन्न, सर्वथा भिन्न है, जो केमरा के क्षेत्र में आ गये थे। उनके इस चित्र में भौंहों के ऊपर हिम की शुभ्रता फूटी सी पड़ती है। मुझे तो उनकी इन आंखों में कृष्ण-आवेश की अदृश्य झलक के दर्शन होते हैं।

उन्होंने हिमालय के पर्वतों में एकान्तवास करते समय निम्नोक्ति पत्र लिखे थे —

सहस्र तरु ताल

जुलाई १६०५

एक के बाद एक—अनेक मीलों तक गगनचुम्बी शिखरों पर टहलना, नीचे घाटी में दूर दूर तक फैले हुए मधुर सुगंध और सौंदर्य से लहराते हुए जंगलों को देखना—दाईं ओर के और बाईं ओर के फूलों से भरे खड्डों पर दृष्टिपात करना—सुकोमल मखमली घास से ढके हुए सुविशाल मैदानों में चलना, जहां दिल लुभाने वाले कोमल पुष्प तुम्हारे पैर की उंगलियों में उलझ जाते हों—दूरस्थ कैलास शिखर से सवेग गिरने वाले जलप्रपातों के शुभ्र सौंदर्य का निरीक्षण करना, चंचलतम कस्तूरी मृगों का बिजली जैसी तेजी से तुम्हारी आंखों के सामने से निकल भागना—जिन सुन्दर वाहनों पर सवार होने की ईर्ष्या चन्द्रमा के

हृदय को आतुर कर सकती है, गरुड़ पक्षिराजों के दीर्घाकार चित्र-विचित्र पंखों की फड़फड़ाहट कभी इस ओर, कभी उस ओर, क्षण-क्षण पर कैलास-कुसुम—ब्रह्म कँवल को तोड़ने के लिये झुक पड़ना, जो सचमुच सोने में सुगंध की कहावत को चरितार्थ करते हैं, उन कुलियों की तल्लीनता का मज़ा लेना जो मासी, लेसर और गुग्गल खोदने में एक दूसरे के साथ होड़ लगाये रहते हैं, भिन्न भिन्न प्रकार के सुगंधित द्रव्यों का मानो यहां अटूट भाण्डार खुला हुआ है—इस मनोहर स्थान पर प्रभु के गीत गाना और ॐ की ध्वनि लगाना—इससे बढ़कर समय का कौनसा उपयोग हो सकता है! सांसारिक जीवन के कोलाहल और गर्द से दूर—बहुत दूर स्वच्छ और चमकते दमकते जल से पूर्ण गंभीर लम्बी चौड़ी नीली झीलों में, कैलास-समीर द्वारा उल्लसित नन्हीं-नन्हीं लहरों के बीच, पवित्र, निर्मल और टटके हिम से घिरे हुए जलाशयों में आता है कौन? स्वयं रक्तरंजित, दमदमाता हुआ आदित्य, कुछ लज्जा और कुछ शंका के साथ जैसे रमणी दर्पण में अपना मुँह देखती है! ऐसे ही गगनचुम्बी एकान्त में सचमुच सूर्य को अपना विश्व विमोहिनी प्रताप देखने का अवसर मिलता है। इतनी ऊंचाई पर भला झोपड़ी और कुटी कैसे टिक सकती है! रात्रि उन कन्दराओं में काटी जाती है जहां वायु सोने के लिये फड़फड़ाती है।

वह हर्ष, वह उल्लास, वह आनन्द जो भुलाने वाला शरीर-चेतना की व्यावहारिक कर्म-भूमि को त्यागने से आता है, वह सूर्य और वायु के साथ तदात्म हो जाने की प्रफुल्लता, वह एकमेवाद्वितीयम् के दिव्य और अनन्त गंभीर और विशालकाय अरण्य में विचरण करने का अनिर्वचनीय स्वाद कहां मिलता है—यहाँ!

नोट—आगे के पत्र मूल से पृष्ठ १३० से १५४ तक फट गये हैं।—सम्पादक

दसवां परिच्छेद

फिर प्रारम्भिक जीवन का वर्णन

स्वामी राम चल खड़े हुए अपने घर से, विश्वविद्यालय की उच्च शिक्षा के उद्देश्य से, जैसी कुछ भारतवर्ष में उस समय प्राप्त हो सकती थी, लाहौर के किसी कालेज में भरती होने के लिये और उनके पिता रुष्ट हो गये। पूरे एक वर्ष तक वे फिर अपने गांव मुरारिवाला नहीं गये। उनके इस साहसपूर्ण प्रवास और प्रयास में उनके मामा रघुनाथमल और गुजरांवाला के उसी विचित्र योगी—गुरु धन्ना भगत ने उनकी सहायता की थी। कालेज जीवन के द्वितीय वर्ष में उन्होंने अपने मामा को लिखा था—मेरी सबसे बड़ी आवश्यकता है अध्ययन के लिये किसी एकांत स्थल की, और मेरी सब से बड़ी मांग है समय की। हे भगवान्! मुझे कभी इन तीन चीजों की कमी न देना (१) एकांत (२) समय और (३) ज्ञान-प्राप्ति की इच्छा। मामा जी, बस, यही मेरे हृदय की सबसे गहरी इच्छा है और सब तो ईश्वर जानते ही हैं।

उन्होंने इन्टरमीजिएट परीक्षा सन् १८९० में पास की थी। वे प्रांत भर में २५ वें स्थान पर आये थे।

कुछ दिनों बाद उनके पिता ने, जो राम को किसी न किसी

काम में लगा देने के लिये अधीर हो रहे थे; जब यह सुना कि राम तो अभी और आगे पढ़ने का संकल्प कर चुका है तब उनके क्रोध का ठिकाना न रहा। वे आये और लाहौर में राम की स्त्री को उन के साथ कर गये। इतना ही नहीं; इस सच्ची लगनवाले विद्यार्थी को उन्होंने किसी भी प्रकार की सहायता देना अस्वीकार कर दिया। स्वामी राम का विवाह विरोके नामक ग्राम में हुआ था; जब वह बिल्कुल छोटे बच्चे थे।

उन्होंने सन् १८९३ में बी० ए० की परीक्षा पास की थी। यह उनका दूसरा प्रयास था। पहली बार वे विश्वविद्यालय के नियमों की एक छोटी सी त्रुटि के कारण फेल कर दिये गये थे।

ऐसा कहा जाता है कि इस परीक्षा में परीक्षक ने तेरह प्रश्न पूछे और परीक्षार्थियों को यह सूचना दी कि वे कोई से नौ प्रश्न हल करें। स्वामी राम ने तेरहों प्रश्न हल किये और परीक्षक को यह सूचना लिख दी कि कोई से नौ जांच लें।

उन्होंने अपने पिता को लिखा था—आपका पुत्र प्रांत में प्रथम आया है और उसे ६०) रुपये का वज़ीफा मिला है। यह सब ईश्वर की कृपा का फल है। ऐसा फल मनुष्य के अपने प्रयत्न से प्राप्त नहीं होता।

इसके साथ एक दूसरा पत्र उन्होंने अपने सच्चे संरक्षक अपने माना को लिखा था—मुझे दो वज़ीफे मिलेंगे, एक २५) रुपये मासिक का और दूसरा ३५) रुपये मासिक का। यह सब भगवान् की दया है।

वे अब गणित में एम० ए० करने के लिये लाहौर के गवर्नमेण्ट कालेज में भरती हुए। यह मई १८९३ की बात है। उस समय उनकी अवस्था केवल साढ़े उन्नीस वर्ष की थी। उन्होंने इंग्लैंड जाकर गणित में 'रूल् रिचन' की प्रतिस्पर्द्धा के लिये स्टेट-

स्कालरशिप (सरकारी वजीफा) के लिये प्रार्थनापत्र भेजा था, किंतु वह वजीफा किसी दूसरे को मिला। वहुत दिनों वाद उन्होंने मुझ से कहा था—राम ने सीनियर रेंगलर बनने की वात सोची थी किंतु यदि यह शरीर नहीं बन सका, तो दूसरे भारतीय (मिस्टर परांजपे से तात्पर्य है) ने वह ख्याति पायी। देखिये, किस प्रकार निष्काम-हृदय व्यक्ति की इच्छायें पूरी हुआ करती हैं।

उन्होंने १८ फरवरी सन् १८९४ को लिखा था—संसार में ऐसी कोई चीज नहीं जिस पर हम भरोसा कर सकें। वे ही ईश्वर की कृपा के भागी होते हैं जो केवल उस पर श्रद्धा करते हैं। वे ही सच्चे संत हैं। ऐसे महात्माओं के चरण-कमलों में सारा संसार अपने समस्त वैभव और सम्पदा के साथ अत्यन्त दीन भाव से लोट-पोट हुआ करता है।

गवर्नमेण्ट कालेज में रहते समय उन्होंने केवल दूध पर जीवन-निर्वाह करना प्रारम्भ किया, गेहूँ की रोटी खाना छोड़ दिया। हां, कभी-कभी उवला हुआ चावल ले लेते थे। उनका भोजन वड़ा सादा होता था और वस्त्र तो और भी सादे। उन्होंने सदैव मोटा और सस्ता खद्दर ही पहना।

सन् १८९५ में स्कूल मास्टर का काम अपने हाथ में लेकर वे स्यालकोट गये। वहां मिशिन हाई स्कूल में सेकेण्ड मास्टर के स्थान पर उनकी नियुक्ति हुई। यहां एक मनोरंजन घटना हुई। एक वार उन्हें अपने एक मित्र से १० रुपये की छोटी सी रकम उधार मांगनी पड़ी। मित्र ने प्रसन्नता से रुपये दे दिये। जब तक राम स्यालकोट में रहे, अपने इस उपकारक को वरावर दस रुपया मासिक लौटाते रहे।

स्यालकोट से वे अपने चाचा को एक पत्र में इस प्रकार लिखते हैं—स्यालकोट की सनातन धर्म सभा में मेरे आने से एक नयी

जान सी आगयी है। उन लोगों के लिये इस प्रकार थोड़ा-बहुत काम कर देने से मुझे बड़ा आनंद मिलता है। उस मस्ती के आगे दुनिया के राज्य भी फीके मालूम होने लगते हैं। सभी लोग—भारतीय और अंग्रेज—मुझ से पूर्ण संतुष्ट हैं और सभी दया करते हैं।

सन् १८८६ में वे होस्टल के सुपरिंटेंडेण्ट हुए, इसकी सूचना उन्होंने धन्ना भगत को इस प्रकार दी थी—छात्रावास के मुसलमान निरीक्षक ने छात्रावास के भवन में गोमांस पकवा कर बड़ी गलती की। यह तो जान-बूझकर हिन्दू विद्यार्थियों के दिल को चोट पहुंचाना था। वे वहां से अलग कर दिये गये और मैं उनके स्थान पर नियुक्त हुआ हूँ।

सन् १८८६ में वे लाहौर के मिशन कालेज में गणित के मुख्य प्रोफेसर होने के लिये बुलाये गये।

वे सदैव पर्वतों पर जाया करते थे और गरमियों की लम्बी छुट्टियां कश्मीर और अमरनाथ में बिताते थे। कभी कभी वे हरद्वार और ऋषीकेश भी जाया करते थे और पूर्ण एकांत में समय बिताते थे। कुछ दिनों बाद उन्होंने यह प्रोफेसरी छोड़ दी; क्योंकि उनकी एकमात्र इच्छा थी कि वे अपना सारा समय ईश्वर-चिन्तन और प्रकृति के साहचर्य में बितायें और इस पद का भारी काम उन्हें ऐसा अवकाश न देता था। अतः ओरियंटल कालेज में रीडरशिप का कार्य स्वीकार कर लिया जिस में प्रतिदिन केवल दो घंटे काम करना पड़ता था; जिससे उन्हें पर्याप्त अवकाश और एकांत मिल जाता था, जो उनकी हार्दिक इच्छा थी।

सन् १६०० में उन्होंने अपना अनोखा सामयिक पत्र 'अलिफ' निकालना शुरू किया। अलिफ फारसी का प्रथम वर्ण है। अपने प्रेस का नाम भी उन्होंने आनंद प्रेस रखा। सन् १६०० के जुलाई

मास में वे लाहौर छोड़ कर सदा के लिये हिमालय के अरण्यों में चले गये।

उनके मित्र और प्रशंसक एक बड़ी संख्या में लाहौर के रेलवे स्टेशन पर एकत्र हुए और जब स्वामी राम उनसे विदा होकर जाने के लिये तैयार खड़े थे, तब उन्होंने स्वामी राम को ही बनायी हुई एक उर्दू गज़ल 'अलविदा' गाना शुरू किया।

सन् १९०१ के प्रारम्भ में एक वर्ष तक पर्वतों में अज्ञातवास करने के अनन्तर वे साधु बन गये और संन्यासी के भगवा वस्त्र धारण कर लिये।

अगस्त १९०१ में उन्होंने एक लम्बी यात्रा की और गंगोत्री, यमुनोत्री, केदारनाथ, बदरी नारायण की खूब ही सैर हुई। रात और दिन आनंद-सागर में डूबे हुए वे हिमालय के हिमपर्ण शुद्ध और पवित्र वक्षःस्थल पर खेला करते थे।

बदरी नारायण की यात्रा के बाद सन् १९०१ में स्वामी राम नीचे मैदानों में—मथुरा आये। वहां उन्होंने एक छोटे आकार के सर्वधर्म-सम्मेलन के दो अधिवेशनों का सभापतित्व किया। ये सम्मेलन स्वामी शिवगणाचार्य द्वारा संगठित हुए थे।

सन् १९०२ में वे जापान गये। संयुक्तराष्ट्र अमरीका में दो वर्ष प्रवास करने के बाद वे पुनः ८ दिसम्बर १९०४ को भारत लौट आये।

ग्यारहवां परिच्छेद

स्वामी रामतीर्थ जापान में

सन् १८९३ में शिकागो में होने वाले सर्व-धर्म-सम्मेलन से हमें संसार के अनेक सुप्रसिद्ध व्यक्तियों का पता चला। इनमें पूर्वीय देशों के कलकत्ता-निवासी श्री स्वामी विवेकानन्द, लंका निवासी श्री अंगारिक धर्मपाल, जापान के श्री कंजो हिराई और जेंशिरो नगूची सर्वाधिक विख्यात हुए। दूसरी बात यह हुई कि समस्त संसार के धार्मिक नेता उत्सुकता से सोचने लगे कि यदि इस सम्मेलन का कोई दूसरा अधिवेशन हो तो अच्छा! किन्तु यह दुःख की बात है कि उस अन्तर्राष्ट्रीय आधार पर संसार में फिर कभी वैसा धर्म-सम्मेलन नहीं हुआ।

भारतवर्ष में एक घोषणा प्रकाशित हुई थी कि एक ऐसे ही अन्तर्राष्ट्रीय धर्म सम्मेलन का दूसरा अधिवेशन टोकियो में होगा। यह घोषणा जापान के स्वर्गीय श्री ओकाकुरा के कुछ बंगाली मित्रों ने की थी। शायद यह घोषणा समय से पहले प्रकाशित हो गयी। उन दिनों श्री ओकाकुरा जल्दी में किसी कार्यवश भारत वर्ष आये हुए थे। संभव है, उन्होंने अपनी ऐसी इच्छा स्वर्गीय आदरणीया निवेदिता बहिन से प्रकट की हो और जापान लौटने

पर वे शायद उसके लिये प्रबन्ध भी करने वाले हों किन्तु श्री ओकाकुरा तो अभी कलकत्ता में ही थे कि टोकियो के समाचार-पत्रों ने उस समाचार को उड़ाया और अपने यहां उसका विरोध भी किया। चूँकि श्री ओकाकुरा स्वयं जापान में न थे, अतएव जापान में उनकी अनुपस्थिति के कारण किसी ने उसका स्वागत न किया।

स्वामी रामतीर्थ उन दिनों टेहरी गढ़वाल के आस-पास रहते थे। वे रात-दिन निरन्तर ध्यान में डूबे रहते थे। वे वेदान्तिक चेतना के एक बन्धनहीन अल्हड़ आह्लाद का उपभोग कर रहे थे। उनकी अधिकांश कवितायें इसी समय लिखी गई थीं किन्तु सर्वोच्चम कविता तो वे स्वयं हो रहे थे।

वे प्रायः मौन रहते किन्तु जो उनसे भेंट करने जाते, उन्हें उनके पास परमात्मा की सुगंध आती। उनकी आँखें ज्ञान के विशुद्ध प्रकाश से चमकती रहतीं, उनके मुखमण्डल पर सदा एक अत्यन्त उच्च, पवित्रतम भावना का निर्मल तेज बरसता रहता। अपने पैरों तले की घास को वे अनेक प्यार भरे नामों से पुकारते, और न जाने कितनी गंभीर मधुर भावना से उसका स्पर्श करते। वे गंगा जी को मेरी गंगी कहते—यहां तक कि उन्होंने अपनी पेंसिल, क़लम और काग़ज़ों को भी मीठे-मीठे नाम दे रखे थे और इस प्रकार अपनी ही सृष्टि के सहवास में समय बिताते थे।

मानो उनके यहां आनन्द की भीड़ मची रहती थी, आत्मा की कम्पनशील मधुरता से सभी आनन्द अपने आप उनके पास खिंचे चले आते थे। वे आनन्द को नहीं खोजते थे, वरन् आनन्द स्वयं उनसे साहचर्य की प्रार्थना करते थे। ऐसी स्थिति में वे काम-काज को एक ओर परे फेंक हिरण की भांति चारों ओर दौड़ने लगते, कभी हिमशिलाओं पर चढ़ते, कभी हिमालय की

गुफाओं में घुस जाते, कभी नदियों में नहाते रहते, कभी अंधेरी रात्रियों में ही सड़कों पर दौड़ते-जाते। भय और मृत्यु का सामना करते, जैसे कोई शारीरिक व्यायाम कर रहे हों; उन्हें अपने लिये कुछ न चाहिए था। उनके आनन्द ही उनके लिये देव रूप बन गये थे। वे उन्हीं के साहचर्य में मस्त रहते थे। अनेक बार लोगों ने उन्हें आनन्द से आत्मविस्मृत, अर्द्ध चैतन्यावस्था में देखा। बिना कहे सुने चुपचाप कभी किसी शून्य गुफा में जा पड़ते और बिना कुछ खाये-पिये लगातार कई दिनों तक उसी में पड़े रहते। कभी गंगा-तट पर बैठ जाते जहां आनन्दाश्रु अपने आप उनके नेत्रों से झरने लगते। इस त्रिवेणी की याद से उन्हें बड़ी प्रसन्नता होती। तीन नदियों का संगम, दो उनके नेत्रों के निर्झर और एक आकाश के नेत्र की गंगा—तीनों का सम्मिलन टेहरी में होता था।

आदमी उनके पास जाते थे किन्तु उन्हें आदमियों के पास जाने की इच्छा न थी। तत्कालीन टेहरी महाराज उनके बड़े भक्त थे। राजा साहब प्रायः स्वामी जी के दर्शनार्थ आते थे किन्तु स्वामी जी अपने उल्लासमय दीर्घ अट्टहास और अपनी काव्यधारा के उज्ज्वल प्रकाश से राजा की इस श्री सम्पन्न भेंट के अवसर को उतना ही महत्व देते थे जैसे उन्हें किसी उत्तम अश्व को देखने का निमंत्रण मिला हो। लाहौर छोड़ने के बाद तीन वर्ष के हिमालय-प्रवास का अधिकांश समय प्रकृति के नंगे वक्षस्थल पर ही बीता और इस प्रकार प्रकृति देवी के साथ उनके परिचय की घनिष्टता इतनी अधिक बढ़ गयी कि जब वे नीचे मैदानों में उतरे तो वे पूर्णतः उसके गुह्यतम रहस्य से भरे हुए थे और आत्मविश्वास के बल पर वे प्रायः कहा करते थे कि प्राकृतिक तत्व तो मेरे मित्र हैं; प्रकृति देवी स्वयं मेरी आज्ञाओं

की प्रतीक्षा में रहती है—सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड मेरा शरीर है, नदियां मेरी नसें हैं, पहाड़ मेरी हड्डियां। जैसे मेरा हाथ मेरे शरीर के किसी हिस्से को खुजलाने के लिये अपने आप चला जाता है, उसी प्रकार प्रकृति स्वतः मेरी आत्मा की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये तत्पर रहती है। हिमालय के शिखरों पर बर्फ़ के तूफ़ान, जहां दूसरे बच नहीं सकते, मेरे लिये सुकोमल स्वच्छ मख़मली चादर बिछा देते हैं, जिससे पैर रखने में कोई कष्ट न हो। चट्टानों पर मोज़ा या जूता पहन कर चलना पाप, घोर पाप है। नंगी भूमि के स्पर्श से नंगे पैर में सर्वज्ञता उत्पन्न हो जाती है—मेरे मांस को शिलाओं के मांस से स्पर्श करना होगा, पूर्ण-रूप में एक दूसरे को पूर्ण से समझने के लिये। जब हम लोग हृदय से हृदय मिला कर एक दूसरे से बातें करते और एक दूसरे को समझते हैं तो हमारा प्रेम चुपचाप पृथ्वी के भीतर चलता हुआ दोनों वक्षस्थलों में प्रवेश कर जाता है। ख़ुदी की 'ई' गिरा देने से मनुष्य ख़ुदा हो जाता है। आओ, इस 'ई' को बहती गंगा में बहा दो। नर नारायण है, यदि उसके हृदय का प्रेम ऊपर ईश्वर की ओर उठता है और ईश्वर के आशीर्वाद के साथ पुनः एक दूसरी धार में उसके पास लौट आता है। मैं शिव हूँ, मालाबार और कोरोमण्डल मेरी दो टांगे हैं, राजपूताने की मरुभूमि मेरा वक्षस्थल है, विन्ध्याचल पर्वत मेरी कमर है, पूर्व और पश्चिम की ओर मैंने अपनी बाहें फैला रखी हैं। हिमालय मेरा जटा-जूट सम्पन्न सिर है और मेरे ही जटाजूटों में वह शुद्ध-पवित्र निर्मल गंगा लहराती फिरती है। मैं भारतवर्ष हूँ, मैं मनुष्य हूँ, पशु हूँ, पक्षी हूँ, ईश्वर हूँ। ऐसी थी हमारे राम की भाषा! उनकी भाषा में यदि एक ओर उनके आँसुओं की वर्षा है तो दूसरी ओर उनके अट्टहास का प्रखर प्रकाश। इसमें यदि शान्त

और गंभीर ध्यान और समाधि का तुषारपात है तो उदासी भरी पतझड़ की सूखी पत्तियों का बवण्डर भी है, जो उन पत्तियों को हवा के झोंकों की इच्छा के अनुसार इधर-उधर—चारों ओर बिखेर रहा है। उन्होंने कहा था—लोग मेरे निरन्तर परिश्रम की यातना को नहीं देख पाते, जो मुझे फूलों से हरे-भरे वसन्त की प्रफुल्लता खिलाने में मेरी जड़ों को करना पड़ता है। संसार केवल मेरे आनन्द और आह्लाद में हाथ बटाना चाहता है, वह मेरी घोर वेदना को नहीं जानता।

उनके हृदय में एक संदेश था, जिसे वे देना चाहते थे, उनके पास आनन्द का भाण्डार था, जिसे वे सारे संसार में बांटना चाहते थे। सत्य की लगन भीतर ही भीतर उनके हृदय में धधक रही थी, जैसी कि किसी अवतार में अपनी कार्य सिद्धि के लिये अनंत बेचैनी होती है।

भीतर ही भीतर उनकी उत्सुकता उग्र रूप धारण कर रही थी। वे उस ज्ञान के आचार्य बन रहे थे, जिसे वे वेदांत के नाम से पुकारते थे। किंतु उनका वेदांत उनका अपना वेदांत था। मुसलमान की नमाज में, भागवत की भगवद्-भक्ति में, शहीद के उत्सर्ग में, देशभक्त पूर्ण नेता के आवेग में, 'शैली' के काव्य में, 'स्पीनोजा' के दर्शन में, 'शम्सतबरेज' की मस्ती में, अपने प्रेमी के लिये प्रेमविभोर महिला के संगीत में अपने वेदांत को देखते और समझते थे। जो कुछ भी भीतर ही भीतर इस प्रकार उनके हृदय में इकट्ठा हो रहा था, वह वहां कैसे समाता? उसने हृदय की पतली चादर को फोड़ कर उनके गीतों और निबन्धों के रूप में बहना प्रारम्भ कर दिया था। इसका फल था उनका संपूर्ण आत्म-चरित्र उनके उस सामयिक प्रकाशन के प्रथम पांच अंकों में पूरा पूरा व्याप्त हुआ है जिसे उन्होंने 'ओलिव' का नाम दिया था—यह

बतलाने के लिये कि वर्णावली का पहला अक्षर सीखना ही उनके लिये बहुत है, आगे के वर्णों की उन्हें आवश्यकता नहीं।

टेहरी के राजा साहब स्वामीजी के पास यह समाचार लेकर आये कि टोकियो में एक सर्व धर्म सम्मेलन—संसार भर के धर्मों की एक व्यापक सभा होने वाली है, ठीक वैसी जैसी १८६३ में शिकागो में हुई थी। यह १६०२ की बात है। राजा साहब ने यह भी कहा कि उसके लिये जो तिथियां दी गई हैं, उन पर स्वामी जी टोकियो पहुँच सकते हैं; यदि वे अविलम्ब ही यहाँ से चल दें और पूर्व की ओर जाने वाला पहला जहाज़ पकड़ लें। स्वामी जी तैयार हो गये और लगभग एक सप्ताह में ही वे जापान जाने वाले जहाज़ पर बैठे दिखाई दिये।

बीच के कई बन्दरगाहों पर हिन्दू व्यापारियों ने उनका स्वागत किया। जापान पहुँचने पर वे याकोहामा में एक दिन के लिये मेसर्स वसायामल आशोमल के अतिथि हुए और दूसरे ही दिन उक्त फ़ार्म के एक साथी को लेकर टोकियो आये। यहां उन्होंने सीधे उस भवन की राह ली, जो उस समय इण्डो-जापानी क्लब के नाम से प्रसिद्ध था और जिसका मैं उस समय मंत्री थी तथा कुछ अन्य भारतीय विद्यार्थियों के साथ उसी क्लब में रहता था। अब वह क्लब उन्नत होकर इण्डो जापानी सुसायटी के नाम से संगठित हुआ है। और साथ ही उसका कार्य पूर्वापेक्षया अधिक महत्वपूर्ण हो गया है।

ज्योंही याकोहामा के आदमी ने क्लब में प्रवेश करके दो भगवा वस्त्रधारी साधुओं का परिचय कराया त्योंही एक प्रसन्नता की लहर चारों ओर दौड़ गई। उनमें से बड़े स्वामी के मुंह से चिड़ियों की स्वाभाविक चहचहाहट की भांति ओम्-ओम् की मधुर ध्वनि गुंजार रही थी—उसका प्रभाव जादू से भी बढ़कर था। स्वामी

राम के साथ उन के शिष्य स्वामी नारायण भी थे। मैं उनमें से किसी को भी नहीं जानता था पर मैं तो उत्साह के मारे पागल जैसा हो गया। उनकी भाषा ऐसी—इतनी विचित्र थी, उनके मुख-मण्डल पर ऐसा आध्यात्मिक तेज था कि चुपचाप उनके आज्ञापालन के सिवा मैं कुछ न कर सकता था। मुझसे छोटे स्वामी जी ने पूछा—आप किस देश के निवासी हैं! मेरी आँखों में आँसू आगये—मधुर और प्रेमभरी आवाज़ से कहा—सारा संसार मेरा घर है।

बड़े स्वामी जी ने मेरी आंखों की ओर देखा और बोले—भलाई करना मेरा धर्म है।

बस, इन दो वाक्यों में हम एक दूसरे से मिले।

मुझे उस दिन बौद्ध विश्वविद्यालय में एक वृहत् समाज के सामने व्याख्यान देने जाना था। मैंने स्वामी जी को निमंत्रण दिया उसी दिन जब वे टोकियो पहुँचे थे, लोगों से बोलने के लिये कहा। वे तैयार हो गये। हम सब ट्रामकार में जा बैठे। मैंने कांच की खिड़की से अपना सिर टिका लिया, मुझे ध्यान भी न था—कहां बैठा हूँ। और वहीं ओम् का मधुर शब्द गुनगुनाने लगा, उसकी ध्वनि से मेरे हृदय के अन्तस्तल में संगीतमय गुद-गुदी पैदा हो रही थी। इसके सिवा मैंने व्याख्यान की कोई तैयारी न की थी। मैं गया, उठा और बोला। श्रोतागण मुग्ध हो गये। मैंने स्वामी राम का भी परिचय दिया। वे बोले—जैसे अग्नि की चिनगारियां बिखर रही हों। आस्ट्रेलिया से भी बौद्ध थियोसोफिस्ट आये हुए थे। सब सुनकर ध्यानावस्थित हो गये। उस दिन उनके साथ उसी मंच पर जापान के फारलायल श्री कंजो चूचीमुरा ने भी भाषण दिया।

हम लोगों को लौटते समय रात्रि अधिक हो गई थी। हम

बोले—मुझे एक ऐसा आदमी चाहिए, जैसे तुम हो, जिसने अपने हृदय की निर्द्वन्द्व शांति में अपना चमत्कारिक व्याख्यान तैयार किया हो, जो टोकियो की सड़कों में- टोकियो की सबसे अधिक शोर-गुल वाली सड़क पर चक्कर काटता हुआ भी ऐसा कर सकता हो। ठीक, बिल्कुल ठीक है। यही शांति तो जीवन का रहस्य है। इसी को मन की एकाग्रता कहते हैं। यही वह संगीतमय मौन है, जहां बड़े बड़े विचारों का उदय होता है, वे स्वप्न प्रकट होते हैं; जो मनुष्य जाति को उन्नति के पथ पर ले गये हैं। शांतिपूर्ण आनन्द की इस दशा में ही ज्ञानरश्मियां यकायक मनुष्य के मस्तिष्क में चमक जाती हैं। मानसिक शांति की इस पूर्ण अवस्था में किसी प्रकार का शारीरिक तनाव भी नहीं रहता, जैसे शरीर प्रकृतिस्थ हो गया हो। यही वेदांत का योग है। यह सचमुच बड़ी भारी चीज़ है। स्वामी राम ये बातें बड़े उत्साह से कह रहे थे। किंतु मैं कुछ न सुन सका, क्योंकि मेरे हृदय में उस आनंद की हलचल मची हुई थी जो किसी नवयुवती को अपने स्वप्नों के अनुरूप पुरुष के प्रेम में वशीभूत होने पर सर्व प्रथम हुआ करती है। मेरे हृदय के अंतस्तल में इतना आंदोलन मचा हुआ था कि उनकी बातों को ध्यान पूर्वक सुनना मेरी शक्ति के बाहर हो रहा था। मैं इधर-उधर दौड़ रहा था। मैं कभी योंही बिना किसी प्रयोजन उनके कमरे में घुसता और फिर योंही अकारण बाहर चला आता। न तो मैं उनके पास बहुत देर तक ठहर ही सकता था और न बहुत देर तक उनसे दूर ही रह सकता था। मैं किसी प्रकार अपने को रोक नहीं पाता था। मैं उनसे प्रेम करने लगा; वे मेरे हृदय में चुभ गये। सच तो यह है कि यदि मैं लड़की होता तो उन्हें पाने के लिये अपना सर्वस्व ही लुटा देता। किंतु एक बात सुनिश्चित है कि जो कुछ वे कह रहे थे, उसका एक

शब्द भी मैंने नहीं सुना, फिर भी आश्चर्य यह कि एक एक शब्द जो उनके मुंह से निकलता था, मेरे हृदय-कोष में बड़ी सावधानी से संचित हो जाता था और इस समय भी मैं जो कुछ लिख रहा हूँ, उसका एक एक अक्षर सत्य है।

× × ×

दूसरे दिन मैं पुरानी पुस्तकों की एक दूकान से दो बड़े बड़े ग्रंथ जिनमें सन् १८९३ में सर्व-धर्म-विश्व सम्मेलन का कार्य विवरण एवं भाषणादि छपे थे, उठा लाया और घर आकर उनको राम की मेज़ पर रख दिया।

"ओह, ठीक यही चीज़, इसी पुस्तक की इच्छा राम के हृदय में उठी थी। कैसे तुम्हारे हाथ लगी ? प्रकृति माता स्वयं अपने हाथों से राम की आवश्यकताओं की पूर्ति कर रही है।"

हम लोग बड़ी देर तक उस विश्व-सम्मेलन की चर्चा करते रहे; जो टोकियो में होने वाला था। जब स्वामी जी को पता चला कि वास्तव में वैसा कोई सम्मेलन नहीं होने वाला है तो वे जी खोलकर हंसे और बोले—प्रकृति की चालें भी कैसी मज़ेदार होती हैं! राम को हिमालय के उस एकान्त-निवास से निकाल संसार का पर्यटन कराने के हेतु उसने कैसी सुन्दर युक्ति निकाली। वह झूठा समाचार क्या क्या गुल खिला रहा है! राम तो स्वयं अपने आप धर्मों का विशाल सम्मेलन है। यदि टोकियो विश्व-सम्मेलन नहीं करना चाहता; तो न करने दो उसे, राम तो अपना सम्मेलन करेगा ही।

राम के पहुँचने के ठीक दूसरे दिन पूना के प्रोफेसर छत्रे टोकियो में अपने सर्कस का पहला प्रदर्शन करने वाले थे। सभी भारतीय छात्र और स्वामी राम साथ साथ उसे देखने गये। उस स्थान में सुप्रसिद्ध पूर्वीय विद्वान और टोकियो इम्पीरियल यूनी-

वर्सिटी के संस्कृत प्रोफ़ेसर श्री प्रोफ़ेसर तकाक्कुसु से राम की भेंट हुई। चलते समय उन्होंने मुझसे कहा—मैं इंग्लैण्ड में प्रोफ़ेसर मेक्समूलर के यहां वहुत से पण्डितों और दार्शनिकों से मिला हूँ। दूसरी जगहों में भी मेरी ऐसे लोगों से भेंट हुई है। परंतु मैंने ऐसा महान् व्यक्ति कहीं नहीं देखा, जैसे स्वामी राम हैं। वे तो अपनी संपूर्ण दार्शनिक विचार-धारा के जीते जागते उदाहरण हैं, ऐसे अर्थपूर्ण कि कुछ कहते नहीं वनता। उनमें वेदान्त और वौद्धधर्म एक स्थान पर एकत्र हुआ है। वे स्वयं धर्म हैं। वे एक सच्चे कवि और एक सच्चे दार्शनिक हैं।

श्री के० हिराई ने भी उनको वहीं देखा था और उनकी अलौकिकता, त्रिगुणातीत अवस्था की वड़ी प्रशंसा की थी। उन्होंने कहा था कि राम की अलौकिकता ने तो उनके स्थूल शरीर को भी दिव्य वना दिया है।

मैं उनके पास दूसरी क़तार में वैठा हुआ तमाशा देख रहा था और हमारे सामने थी श्रीसम्पन्न भद्र महिलाओं की एक पूरी पंक्ति, अपने रंग-विरंगे क़िमोनोज़ और तड़क-भड़कदार ओविस—एक प्रकार का अति श्रेष्ठ सिर को ढँकने वाला वस्त्र–पहने हुए। हिमसदृश उज्ज्वल गर्दनों की यह पूरी क़तार, कैसी सुन्दर, कैसी आकर्षक! मैं इस जीते-जागते सौंदर्य के अनुपम दृश्य को एक निगाह देखने का लोभ संवरण न कर सका किन्तु तुरन्त मेरे मन में हुआ कि यदि कहीं स्वामी जी ने मेरी आखों को चोरी करते पकड़ लिया तो········?

यकायक उनके मुख से निकला, जैसे मेरी आँखों की इस भावमय चोरी का अनुमोदन कर रहे हों—पूरन जी गर्दनों की यह पंक्ति तो ऐसी लगती है जैसे काली काली धारीदार चट्टानों से गङ्गा इतनी अधिक स्वच्छ पतली-पतली धाराओं में फूट पड़ी हो।

जब हम पण्डाल से बाहर निकले तो रात्रि बहुत हो गई थी, न कोई रिक्सा ही मिला और न ट्राम-कार। स्वामी जी पैदल चल खड़े हुए और हम लोग पीछे-पीछे। वे बहुत ही तेज चलने वाले थे, हम लोगों को उनके साथ चलना कठिन हो गया।

प्रति दिन संध्या समय लोग उनके पास इकट्ठे हो जाते थे—भारतीय और जापानी -उनके वचनों को मंत्रमुग्ध हो, ध्यान से सुनते थे। केवल मैं अपनी आंखें बन्द करके एक ऐसे उत्साह में डूबा रहता, जो मेरे संयम से बाहर होता। मैं कुछ भी न सुनता और सब कुछ सुनता। मेरे होंठ ओम्-ओम् से कँपते रहते।

उन्होंने टोकियो के कामर्स कालेज में एक बहुत ही महत्वपूर्ण व्याख्यान दिया जिसका विषय था 'सफलता का रहस्य'। उसकी विचित्र आभा ने विशाल जनता का ध्यान आकृष्ट किया। रूसी राजदूत ने जब समाचार पत्रों में उस व्याख्यान को अंकित देखा तो स्वामी जी से भेंट करने की इच्छा प्रकट की किन्तु स्वामी जी सन् फ्रांसिस्को चल चुके थे।

"मैं जापान में 'पूर्णमदः पूर्णमिदम्' गाता हुआ उतरा और पूर्णमदः पूर्णमिदम् गाता हुआ ही जा रहा हूँ। संस्कृत श्लोक का अर्थ है—यह भी पूर्ण, वह भी पूर्ण; पूर्ण से निकले पूर्ण, फिर भी बाक़ी रहे पूर्ण।" इस प्रकार उन्होंने उस विशेष अवसर पर बड़े प्यार से मेरे नाम की ओर संकेत किया था। उन्होंने कहा—मैं सर्व-धर्म-विश्वसम्मेलन के लिये नहीं निकला था, मैं तो आया था पूरन को मार्ग दिखाने। बस, मैं तुरन्त उनके प्रेम के मारे सर मुड़ा कर साधु बन गया—इसलिए नहीं, कि मैंने उनसे कुछ शिक्षा पायी थी; क्योंकि मैं उस समय उनकी बात समझता ही न था। और आज भी सन्देह है कि उनकी हर एक बात समझता हूँ या नहीं।

उनके अमरीका को प्रस्थान करने के लगभग दो मास बाद टोकियो में मेरा फ़ोटो लिया गया। मेरे बहुत से मित्र कहने लगे—ऐसा लगता है जैसे तुमने अपनी केंचुली उतार कर उन्हीं की रूप-रेखा ग्रहण कर ली हो। मैंने दो-एक व्याख्यान भी दिये, जो सामयिक पत्रों में प्रकाशित हुए। किंतु आश्चर्य, उन में वही विचार और बहुत से स्थलों पर तो ठीक वही शब्द थे जो उनके अमेरीका के भाषणों में पाये जाते हैं। इसके बाद मैंने भारतवर्ष में अनेक स्थानों में व्याख्यान दिये और उनके पास अपने व्याख्यानों की टाइप की हुई प्रतियां भेजीं। उनके हृदयस्थ विचार मैं पहले ही यहां सुनाने लगा था।

राम ने मुझसे कहा कि उन्होंने जापानियों की एक बात भारतवर्ष में सुनी थी। वे एक ऐसी छड़ी बनाते हैं, जो इच्छानुसार स्टूल (बैठक) और छाता में बदली जा सकती है। मुझे आश्चर्य हुआ! क्योंकि मैंने ऐसी विचित्र चीज़ कभी न देखी थी। मैं उन्हें केनकोबा पार्क (जापानी बाजार) में लेगया और वहां उसके बारे में पूछताछ की। लो, वहां हमें वही चीज मिली, जिसे वे चाहते थे। उसे देखकर वे ऐसे प्रसन्न हुए जैसे बच्चे खिलौना पाकर हर्ष से नाच उठते हैं। वे घंटों उससे खेलते रहे। ज़ोर ज़ोर से हंसते, कभी उसे स्टूल बनाते, कभी छाता और कभी छड़ी बनाकर टेक टेक कर चलने लगते। जब हम केनकोबा में यह सौदा कर रहे थे तो अनेक दूकानों की सौदा बेचने वाली लड़कियां उनके पीछे हो लीं और एक सिरे से दूसरे सिरे तक बराबर उनके पीछे-पीछे घूमती रहीं। एक भी ऐसी न थी, जिसने दूकान छोड़कर उनका पीछा न किया हो। वे उनके वस्त्र छूने लगीं और साग्रह उन्हें ताकती रहीं। उन्होंने आपस में कहा—यह तो हम सबसे अधिक सुन्दर है। वे मुझसे जापानी में बोलीं—(राम

जापानी न समझते थे, कैसा मजा है, हम सभी इस अपूर्व सौंदर्य की प्रतिमा के साथ शादी करने के लिये तैयार हैं। वे हंसती और खिलखिलातीं, हंसी-मजाक करतीं और इनके साथ खेलना चाहती थीं। स्वामी जी कुछ असमंजस में पड़ गये, उनकी भाषा वे जानते न थे। मुझसे पूछा—ये क्या कहती हैं। मैंने जान-बूझ कर झूठी बातें बनादीं। मैंने कहा—ये वेदांत पर आपकी बातें सुनना चाहती हैं, ये वेदांत सीखने के लिये आपके पास आना चाहती हैं। क्या आप इन्हें पढ़ायेंगे! राम ने सिर झुकाया और बोले—कह दो इनसे, राम के यहां सदैव इनका स्वागत होगा। राम तो इनका भी उतना ही है जितना औरों का।

वे लगभग एक पक्ष तक टोकियो में रहे और फिर उस जहाज में अमरीका चले गये जो पूना के प्रोफेसर छत्रे ने अपना सरकस ले जाने के लिये किराये पर लिया था।

सफलता का रहस्य

टोकियो में 'सफलता के रहस्य' पर बोलते हुए स्वामी राम ने निम्नलिखित व्याख्यान दिया था—

क्या यह आश्चर्यजनक नहीं मालूम होता कि भारतवर्ष से एक अभ्यागत आकर आपके समक्ष एक ऐसे विषय पर भाषण करे जिसे प्रत्यक्षतः जापान ने भारत की अपेक्षा अधिक बुद्धिमानी से ग्रहण किया है। यह बात हो सकती है किन्तु एक से अधिक ऐसे कारण हैं जिनके बल पर मैं यहां शिक्षक के रूप में खड़ा हूं।

किसी विचार को दक्षता के साथ कार्य-रूप में लाना एक बात है और उसके आधारभूत मौलिक अर्थ को हृदयंगम करना एक बिल्कुल

दूसरी बात है। चाहे कोई राष्ट्र वर्तमान समय में कतिपय मौलिक सिद्धान्तों को कार्यान्वित करता हुआ भले ही खूब फल-फूल रहा हो किन्तु यदि राष्ट्रीय मस्तिष्क भले प्रकार उन सिद्धान्तों को समझता नहीं है, यदि उन के पीछे कोई सुनिश्चित ठोस आधार नहीं, तो उस राष्ट्र के पतन की सम्भावना बराबर बनी रहती है। एक श्रमिक जो किसी रासायनिक क्रिया को सफलता पूर्वक व्यवहृत करता है, वस्तुतः रसायन-शास्त्र-वेत्ता नहीं है। कोयला झोंकने वाला जो सफलता के साथ किसी वाष्प इंजिन को चला लेता है, इंजीनियर नहीं हो सकता, क्योंकि उसे केवल यांत्रिक अभ्यास हो गया है। तुमने उस डाक्टर की कथा पढ़ी होगी, जो शरीर के क्षत-विक्षत अंग को पूरे एक सप्ताह तक रेशमी पट्टी से बांध कर अच्छा किया करता था किन्तु उसे नित्य अपनी तलवार से छूना अनिवार्य मानता था। पट्टी के द्वारा बाहरी गर्द की रक्षा होने के कारण घाव अच्छे हो जाते थे। किन्तु वह कहता था कि उसकी तलवार के स्पर्श में ही घावों को चंगा करने की अद्भुत् शक्ति है। और ऐसा ही उसके रोगियों का विश्वास हो गया था। किन्तु इस अन्ध विश्वास-मूलक कल्पना से बीसों रोगियों को असफलता के सिवा और कुछ हाथ न लगा, क्योंकि उनके घावों में केवल पट्टी के अतिरिक्त अन्य उपचारों की आवश्यकता थी। अतएव हर बात में यह परमावश्यक है कि यथार्थ सिद्धान्त और यथार्थ अभ्यास सदा साथ साथ चले।

दूसरी बात यह है कि राम जापान को अपना ही देश मानता है। और उसके निवासियों को अपना देशवासी। राम तर्कपूर्ण आधार से यह सिद्ध कर सकता है कि प्रारम्भ में आपके पूर्व पुरुष भारतवर्ष से ही यहां स्थानान्तरित हुए थे। आपके पूर्व पुरुष राम के पूर्व पुरुष हैं। अतः राम एक भाई के समान, न कि किसी अपरिचित की भांति हाथ मिलाने आया है। एक और कारण है जिसके बल पर भी राम इसी अधिकार का दावा कर सकता है। राम अपने जन्म ही से, अपनी प्रकृति, चाल-

चाल, स्वभाव और हृदय से, जापानी है। इन प्रारम्भिक शब्दों के अनन्तर राम अब अपने विषय पर आता है।

सफलता का भेद एक खुला हुआ भेद है। इस विषय पर प्रत्येक व्यक्ति कुछ न कुछ कह सकता है और स्यात् तुमने इसके साधारण सिद्धान्तों की व्याख्या सुनी भी होगी। किन्तु विषय इतना अधिक महत्त्वपूर्ण और आवश्यक है कि लोगों के हृदय में उसे भली भांति पैठाने के लिये उस पर जितना अधिक बल दिया जाय उतना ही थोड़ा है।

पहला सिद्धान्त--काम

सबसे पहले हमें यह प्रश्न चारों ओर से घेरने वाली प्रकृति से करना चाहिए। कल-कल ध्वनि से बहने वाले निर्झर और एक ही स्थान में बन्द रहने वाले तालाब अपनी मूक और असंदिग्ध भाषा में हमें निरन्तर एक ही उपदेश दिया करते हैं—निरन्तर काम करो, अहर्निश काम करो। प्रकाश हमें देखने की शक्ति प्रदान करता है। प्रकाश ही प्राणिमात्र का प्राण और मुख्य आधार है। आओ, देखें स्वयं प्रकाश के द्वारा इस प्रश्न पर क्या प्रकाश पड़ता है। राम उदाहरण के लिये एक लैंप, साधारण दीपक को ही लेगा! दीपक की चमक और प्रकाश का अंतरंग रहस्य क्या है? वह कभी अपने तैल और बत्ती का बचाव नहीं करता। तैल और बत्ती अथवा उसकी क्षुद्र आत्मा निरन्तर जलती रहती है, तभी उसका प्राकृतिक परिणाम होता है प्रकाश और प्रताप। लो, लैंप का संदेश हो चुका—अपने का बचाव करो और तुम्हारा नाश हो जायगा। यदि तुम अपने शरीर के लिये सुख और विश्राम चाहते हो, यदि अपना सारा समय भोग-विलास और इन्द्रिय-सुखों में गंवाते रहते हो तो तुम्हारे लिये कोई आशा नहीं। दूसरे शब्दों में इसका अर्थ यह हुआ कि अकर्मण्यता मृत्यु रूप है। केवल काम और क्रिया ही एकमात्र जीवन

और प्राण है। एक ओर चौहद्दी से घिरा हुआ तालाब है और दूसरी ओर बहती हुई सरिता। दोनों की तुलना करो। बहती हुई नदी का जल मोती जैसा स्वच्छ, तरो ताजा, निर्मल, पीने योग्य और चित्ताकर्षक रहता है। इसके विरुद्ध एक सीमाबद्ध तालाब का पानी कितना गंदा, बदबूदार, मैला और चिपचिपाने वाला होता है। यदि तुम सफलता चाहते हो तो कार्य का मार्ग, सरिता की निरन्तर गति का अनुसरण करो। जो मनुष्य अपने तैल और बत्ती का व्यय न करेगा, अपितु उसकी रक्षा में ही अपना सारा समय लगा देगा, उसके लिये आशा का कोई मार्ग नहीं। नदी की नीति को ग्रहण करो, जो सदा आगे ही आगे बढ़ती है। जो सदैव अपने आप को परिस्थितियों के अनुकूल बनाती हुई अपना व्यवहार बढ़ाती जाती है, गति ही जिसका जीवन हो रहा है। कार्य, निरन्तर कार्य, अटूट कार्य ही सफलता का पहला सिद्धांत है। "नित्य प्रति उत्तम से उत्तमतर बनते जाओ"। यदि तुम इस सिद्धान्त का अवलम्बन करो तब बड़ा बनना तुम्हारे लिये उतना ही आसान होगा जितना छोटा रह जाना।

दूसरा सिद्धान्त---आत्म-त्याग

प्रत्येक व्यक्ति सफ़ेद, श्वेत वस्तुओं को प्यार करता है। आओ, देखें—श्वेत वस्तुयें क्योंकर मनुष्य मात्र की प्रेमपात्र बन जाती हैं। हमें श्वेत की सफलता का पता लगाना होगा। काली चीजों से सभी लोग घृणा करते हैं। उन्हें तुच्छ समझते है, फेंक देते हैं। यह एक तथ्य है, हमें जिसके कारण की खोज करनी होगी। प्रकृति-विज्ञान हमें रंगों के प्रदर्शन का रहस्य बतलाता है। लाल लाल नहीं है, हरा हरा नहीं है, काला काला नहीं है। वस्तुतः जैसा हम देखते हैं, वह वैसा नहीं है। गुलाब के लाल पुष्प में वह लालिमा कहाँ से आती है? वह स्वयं

उसकी फेंकी हुई चीज़ है। सूर्य की किरणों के और सब रंग तो उसने अपने अन्तर में पचा लिये हैं। किसी को गुलाब द्वारा पचाये हुए इन रंगों का पता नहीं चलता। हरा पत्ता प्रकाश के अन्य सब रंग अपने में आत्मसात् कर लेता है और केवल उस एक हरे ताजे रंग के द्वारा प्रकट होता है जिसे वह अपने भीतर लेने से इन्कार करता है, और बाहर फेंक देता है। काली वस्तुओं का यह स्वभाव होता है कि वे प्रकाश के सारे रंगों को खा लेती हैं और प्रकाश का नामोनिशान भी बाकी नहीं छोड़तीं। उनमें आत्म-त्याग की भावना नहीं रहती—उदारता रंच मात्र भी नहीं होती। वे रश्मि की एक रेखा भी नहीं त्याग सकतीं। सूर्यरश्मि जो उन्हें अपने हिस्से में मिलती हैं वे सब का सब खा जाती हैं। प्रकृति हमें आदेश देती है कि इसी प्रकार वह मनुष्य—जो अपने में से रत्ती भर भी अपने पड़ोसियों को नहीं देता, वह काला, कोयला जैसा काला हो जायगा। श्वेत वस्तुओं के सद्गुण को ग्रहण करो और तुम सफल हुये बिना नहीं रह सकते। श्वेत से राम का क्या अभिप्राय है? यूरोप निवासी श्वेतांग! नहीं, केवल श्वेतांग यूरोपियन ही नहीं, स्वच्छ दर्पण, स्वच्छ मोती, सफ़ेद फ़ाख़्ता, स्वच्छ हिम—संक्षेप में, पवित्रता और सच्चाई सूचक सभी सुन्दर चिह्न इस विषय में तुम्हारे पथ-प्रदर्शक बन सकते हैं। उनका मार्ग ग्रहण करो, और असंदिग्ध रूप में आत्म-त्याग की भावना को सीख लो। जो कुछ दूसरों से लिया हो उसे दूसरों को ही दे डालो। स्वार्थमय संचय के पथ से हट जाओ और अपने आप स्वच्छ बन जाओगे। बीज यदि चाहता है कि एक सुन्दर कलिका के रूप में खिले तो पहले उसे अपने आप को खाद में गला देना होगा। पूर्ण आत्म-बलिदान अन्त में फल लाता है, उसका फल लाना अनिवार्य है। सभी शिक्षक और उपदेशक राम की इस बात को मान्य करेंगे कि हम जितना ही अधिक वितरण करते हैं, उतना ही अधिक पाने के हम अधिकारी बनते जाते हैं।

तीसरा सिद्धान्त—आत्म-विस्मृति

विद्यार्थियों को इस बात का अनुभव होगा कि जब वे अपनी साहित्यिक गोष्ठी में भाषण करते हैं तो ज्योंही "मैं भाषण कर रहा हूँ" यह विचार उनके मन में ज़ोर से प्रकट होता है त्यों ही व्याख्यान फीका पड़ जाता है। काम करते हुए अपनी क्षुद्र आत्मा को भूल जाओ, पूर्णतः उसमें अपने आप को डुबो दो, तब अवश्यमेव सफलीभूत होगे। यदि कुछ सोचते हो तो स्वयं सोच-विचार बन जाओ, अवश्यमेव सफलता मिलेगी, यदि काम करते हो तो काम बन जाओ, सफलता अवश्य मिलेगी।

मैं कब स्वतंत्र हूँगा?
जब मिट जायगी 'मैं'!

दो भारतीय राजपूतों का एक क़िस्सा है। वे एक बार अकबर, भारतवर्ष के बड़े मुग़ल शहन्शाह के पास पहुँचे और नौकरी के लिये प्रार्थना करने लगे। अकबर ने उनकी योग्यता के बारे में पूछताँछ की। उन्होंने कहा—वे शूरवीर हैं। अकबर ने आज्ञा दी—प्रमाण! दोनों ने तुरन्त म्यान से अपनी अपनी तलवारें निकाल लीं। क्षण भर के लिये अकबर के दरबार में बिजली कौंध गई। ख़ंजरों की चमक उनकी अंतरंग वीरता की सूचक थी। लो, दूसरे ही क्षण बिजली की इन दोनों कौंधों ने दोनों शरीरों को एक कर दिया। दोनों ने अपनी अपनी तलवार को दूसरे की छाती पर गड़ा दिया—नहीं, दोनों ने उसे दूसरे की छाती में ऐसी धीरता से घुसेड़ दिया, जो संसार में बहुत ही कम देखी जाती है। उनकी वीरता का प्रमाण पूरा हुआ। शरीर गिर पड़े, आत्मायें मिल गयीं। सब ने उनकी वीरता पर साधुवाद दिया। क़िस्से से हमें विशेष प्रयोजन नहीं, इस उन्नत युग में ऐसी शूरता से हमारे

हृदय को चोट पहुंच सकती है किन्तु उससे हमें एक शिक्षा मिलती है। वह शिक्षा है, अपने क्षुद्र अहम् का त्याग करो और सफलता तुम्हारे हाथ जोड़ेगी। अन्यथा हो ही नहीं सकता। राम कहता है—काम करते करते सफलता की इच्छा मर जाय और सफलता तुम्हारे सामने खड़ी है।

चौथा सिद्धान्त—सार्वभौमिक प्रेम

'प्रेम' सफलता का एक दूसरा सिद्धान्त है। प्रेम करो और लोग तुम से प्रेम करेंगे। बस, यही लक्ष्य है। हाथ, यदि जीवित रहना चाहता है, तो उसे शरीर के अन्य अंगों से प्रेम करना होगा। यदि वह अपने को सब से पृथक् कर ले और सोचे कि मेरी कमाई से दूसरे अंग क्यों लाभ उठायें तो हाथ का काम हो चुका, उसका मरण अनिवार्य है। यदि हाथ अपनी स्वार्थ वृत्ति पर डट ही जाय तो उसे मुख में उस खान और पान को रखने की क्या आवश्यकता जिसे वह केवल अपने परिश्रम के बल पर प्राप्त करता है—चाहे उसने वह परिश्रम कलम के द्वारा किया हो अथवा तलवार के द्वारा। उस स्थिति में उसे भोजन के उत्तमोत्तम पदार्थ अपने चर्म में ही घुसा लेने चाहिएँ। और तभी वह दूसरे अंगों को अपनी कमाई से वंचित कर सकता है। हां, यदि उसे अपना फुलाना ही इष्ट हो तो वह किसी विषैली मक्खी से भी अपने को कटवा सकता है। किन्तु सूजन हानि के सिवा लाभ नहीं पहुंचा सकती। सूजन की मोटाई स्वास्थ्य का लक्षण नहीं। फूला हुआ हाथ अवश्य एक न एक दिन अपने स्वार्थ के कारण मर मिटेगा। हाथ केवल तभी फल-फूल सकता है, जब वह व्यवहारतः शरीर के अन्य अंगों के साथ अपनी वास्तविक एकात्मीयता का अनुभव करे, और अपनी भलाई को सम्पूर्ण शरीर की भलाई से किसी भी प्रकार पृथक् न समझे।

जिसे हम सहयोग कहते हैं, वह इसी प्रेम का बाह्य रूपान्तर है।

तुमने सहयोग, सहकारिता के लाभों के विषय में बहुत कुछ सुना होगा, राम को यहां उसके गुण गाने की आवश्यकता नहीं। तुम्हारे हृदयस्थ प्रेम से ही उसका जन्म हो। प्रेम रूप बन जाओ और सफलता तुम्हारी बनी बनायी है। जो व्यापारी ग्राहकों के लाभ में ही अपना लाभ नहीं मानता, वह सफल नहीं हो सकता। फलने-फूलने के लिये उसे अपने ग्राहकों से प्रेम करना होगा। उसे अपने सम्पूर्ण हृदय से उन की भलाई पर ध्यान रखना होगा।

पाचवां सिद्धान्त—प्रसन्नता

सफलता के सम्पादन में एक दूसरी बात जो महत्वपूर्ण कार्य करती है—वह है प्रसन्नता। आप जापानी लोग, राम के भाई हैं। राम को प्रसन्नता है कि आप लोग स्वभाव से ही प्रसन्नचित्त हैं। तुम्हारे हरे-भरे चेहरों पर प्रसन्नता की मुस्कराहट देख कर राम को बड़ी प्रसन्नता होती है। तुम हंसते हुए फूल हो। तुम मनुष्य-जाति की मुस्कराने वाली कलिका हो। तुम प्रसन्नता के अवतार हो। सो राम चाहता है कि आप अपने जीवन के इस शुभ लक्षण को अपने इतिहास के अन्त तक स्थिर रखें। राम आप को बतायेगा—यह कैसे हो सकता है!

अपने परिश्रम के फल के लिये कभी चिन्तित मत हो। भविष्य की चिन्ता मत करो। भय को हृदय में स्थान मत दो। न सफलता की बात सोचो और न असफलता की। काम के लिये काम करो। काम स्वयं अपना पारितोषिक है। भूतकाल के पीछे उदास मत हो। भविष्य की चिन्ता मत करो—वर्तमान में—प्रत्यक्ष वर्तमान में काम करो। दिन-रात काम करो। इस प्रकार की भावना तुम्हें हर एक परिस्थिति में प्रसन्न रखेगी। एक सजीव बीज में फलने-फूलने का गुण होता है, प्रेम पूर्ण सहानुभूति का अटल नियम है कि उस सजीव बीज को आवश्यकतानुसार वायु,

जल, पृथ्वी और प्रकाशादि मिलना ही चाहिए। ठीक इसी भांति एक प्रसन्नचित्त कार्यकर्ता को हर प्रकार की सहायता का वचन प्रकृति ने पहले ही से दे रखा है। "आगे का मार्ग अपने आप सूझ पड़ेगा, यदि जितना ज्ञात है, उतना यथार्थ रूप में पार कर लेते हो।" यदि अंधेरी रात्रि में तुम्हें बीस मील की यात्रा का अवसर आ पड़े और यदि हाथ का दीपक केवल दस फुट तक ही प्रकाश फेंकता हो तो उस सम्पूर्ण अंधेरे मार्ग की चिन्ता से क्यों मरे जाते हो? तुम्हें तो अंधेरे में एक पग भी नहीं धरना पड़ेगा। इसी प्रकार एक सच्चे, कार्य-तत्पर कार्यकर्ता को कभी अपने पथ में कोई अन्यर्थ बाधा नहीं मिलती—यह प्रकृति का एक अनिवार्य नियम है। फिर भविष्य की घटना की चिन्ताओं से क्यों अपने हृदय के उल्लास को ठंडा करते हो? वह मनुष्य, जिसे तैरना बिल्कुल नहीं आता, यदि वह भी एक बार सहसा झील में गिर पड़े तो वह भी कभी डूब नहीं सकता, यदि केवल अपने शरीर को सम-भारत्व के बराबर बनाये रखे। मनुष्य का भार-विशेषत्व (Specific gravity) जल के भार-विशेषत्व से कम होता है, अतः जल के धरातल पर उतराने में उसको कोई बाधा नहीं हो सकती। किन्तु ऐसे अवसर पर साधारण प्राणी एकदम अस्थिरचित्त हो जाते हैं, मात्र पानी के ऊपर रहने की चेष्टा में ही पानी में डूब जाते हैं। इसी प्रकार प्रायः भविष्य की सफलता के लिये चिन्ताकुल होने ही से असफलता का सूत्रपात होता है।

आओ, अब हम उस विचारधारा का निरीक्षण करें, जिसके कारण हम भविष्य की ओर आँखें लगाये रहते हैं। इसका उदाहरण यों हो सकता है कि मनुष्य स्वयं अपनी छाया को पकड़ना चाहता है। वह चाहे अनन्त काल तक ऐसा उद्योग करता रहे, पर कदापि, किसी प्रकार भी उसे पकड़ने में समर्थ नहीं हो सकता। पर यदि वह छाया से मुँह मोड़ ले और सूर्याभिमुख हो जाय तो लो! वही छाया उसके पीछे

दौड़ना प्रारम्भ कर देगी। जिस क्षण तुम सफलता से मुंह मोड़ लेते हो, ज्योंही तुम फलादि की चिन्ता से मुक्त हो जाते हो, और वर्तमान कर्त्तव्य पर अपनी सारी शक्ति केन्द्रित कर देते हो, बस, उसी क्षण सफलता तुम से आ मिलती है। नहीं, नहीं, तुम्हारा पीछा करने लगती है। अतएव सफलता का पीछा मत करो, सफलता को अपना ध्येय मत बनाओ और तभी, उसी समय सफलता स्वयं तुम्हें ढूंढने लगेगी। न्यायालय में न्यायाधीश को वादी-प्रतिवादी, वकील अथवा चपरासियों को खोजना नहीं पड़ता। वह तो केवल न्यायासन पर बैठ भर जाय और न्यायालय का सारा व्यवहार अपने आप चल पड़ता है। राम के प्यारे मित्रो! यही अन्तिम तथ्य है। पूर्ण प्रसन्नता के साथ अपने कर्तव्य-कर्म में जुट पड़ो और सफलता के लिये जिन जिन बातों की आवश्यकता होगी, वे सब अपने आप आ मिलेंगी।

छठा सिद्धान्त—निर्भीकता

दूसरी बात, जिस पर राम आपका ध्यान खींचना चाहता है और बारम्बार आदेश करता है कि आप उसे अपने अनुभव से सिद्ध करें, वह है निर्भीकता। एक भ्रू-निक्षेप से शेरों को वश में किया जा सकता है। एक ही दृष्टिनिक्षेप से शत्रु परास्त किये जा सकते हैं। निर्भीकता की एक ही झपड़ से विजय प्राप्त की जा सकती है। राम ने हिमालय की सघन घाटियों में विचरण किया है। राम को शेर, चीते, भालू एवं अनेकों विषैले जीव-जन्तुओं का सामना करना पड़ा। परन्तु राम को कभी किसी ने हानि नहीं पहुंचायी। जंगली पशुओं पर सीधे उनकी आंखों पर भ्रू-निक्षेप किया गया, दृष्टियां मिलीं, हिंसक पशुओं ने आँखें नीची कर लीं। और जिन्हें हम अत्यन्त भयानक वन्य पशु समझते हैं, वे चुपचाप खिसक गये। यही तथ्य है। निर्भीक बनो और तुम्हें कोई हानि नहीं पहुंचा सकता।

शायद तुमने कभी देखा हो कि कबूतर कैसे बिल्ली के सामने अपनी आँखें बन्द कर लेता है; और शायद अपने मन में सोचता हो कि जैसे मैं बिल्ली को नहीं देखता हूं वैसे ही बिल्ली भी मुझे न देखती होगी। किन्तु होता क्या है? बिल्ली कबूतर पर झपटती है और कबूतर बिल्ली के पेट में जा पड़ता है। निर्भीकता से चीता भी वश में किया जा सकता है और भयातुरता के सामने बिल्ली भी शेर बन जाती है।

तुमने यह भी देखा होगा कि काँपते हुए हाथ से कोई द्रव पदार्थ एक बर्तन से दूसरे बर्तन में सफलतापूर्वक नहीं उँडेला जा सकता किन्तु कैसी आसानी से एक सुदृढ़ और निर्भीक हाथ बिना एक बूंद गिराये उस बहुमूल्य द्रव का आदान-प्रदान कर लेता है। प्रकृति स्वयं हमें बार बार उच्च स्वर से इसी निर्भीकता की शिक्षा देती रहती है।

एक बार एक पंजाबी सिपाही किसी जहाज़ पर एक भयानक रोग से आक्रान्त हो गया और डाक्टर ने उसे जहाज़ से नीचे फेंक देने का अन्तिम दण्ड सुना दिया। डाक्टर! कभी कभी ये डाक्टर भयंकर दण्ड दे डालते हैं। सिपाही को इस बात का पता चल गया। साधारण प्राणी भी कभी कभी मृत्यु के सामने निर्भीकता की झलक दिखा जाता है। असीम शक्ति से वह तुरन्त बिस्तर से उठ बैठा और एकदम निर्भय हो गया। तुरन्त सीधा डाक्टर के पास पहुंचा और पिस्तौल तान कर बोला—मैं बीमार हूं? क्या मैं बीमार हूं—सच-सच बोलो, नहीं तो मैं अभी मारता हूं। डाक्टर ने तुरन्त ही उसे स्वस्थ होने का प्रमाणपत्र दे दिया। निराशा कमजोरी है, उससे बचो। निर्भीकता ही शक्तिपुंज है। राम के शब्दों पर ध्यान दो—निर्भीकता! और निर्भय बनो।

सातवां सिद्धांत—आत्म-निर्भरता

सफल जीवन का नैसर्गिक, अन्तिम किन्तु अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्धान्त, एक प्रकार से सफलता का मार्ग, सफलता की कुञ्जी है आत्म-निर्भरता और आत्म-विश्वास। यदि राम से एक शब्द में राम

का सम्पूर्ण दर्शन शास्त्र भर देने का आग्रह किया जाय तो राम यही कहेगा—वह है आत्म-विश्वास, आत्म-ज्ञान। ऐ मनुष्यो! देखो, सुनो, अपने आपको पहचानो। सत्य, अक्षरशः सत्य है कि जब तुम स्वयं आप अपनी सहायता करते हो तो ईश्वर तुम्हारी सहायता करता है। नहीं, वह तुम्हारी सहायता करने के लिये बाध्य है। यह बात सिद्ध की जा सकती है। इस तथ्य का साक्षात् किया जा सकता है कि तुम्हारी ही आत्मा, वास्तविक आत्मा ईश्वर, अनन्त ईश्वर, सर्वशक्तिसम्पन्न ईश्वर है। यह एक सच्चाई है, एक सत्य है, तुम स्वयं प्रयोग करके देख लो। निश्चय से, पूर्ण निश्चय से अपने ऊपर निर्भर करो और फिर जगत् में तुम्हें कुछ भी दुर्लभ नहीं, तुम्हारे लिये दुनिया में कुछ भी असम्भव नहीं।

सिंह जंगल का राजा है। वह स्वयं अपने ऊपर निर्भर रहता है। उसमें साहस है, शक्ति है, कोई बाधा उसका मार्ग नहीं रोक सकती। क्यों? क्योंकि उसे अपने में विश्वास है। और हाथियों को देखो, जिन्हें विशालकाय होने के कारण पहली दृष्टि में यूनानियों ने सच ही 'चलते-फिरते पर्वत' के नाम से पुकारा था, वे सदा अपने शत्रुओं से सशंकित रहते हैं। वे सर्वदा झुण्डों में रहते हैं और सोते समय अपने चारों ओर पहरेदार नियत कर लेते हैं। एक भी उनमें से अपने ऊपर निर्भर नहीं करता और न अपनी विशाल शक्ति का अनुभव करता है। वे अपने को शक्तिहीन मानते हैं और एक सिंह के समक्ष झुण्ड का झुण्ड भाग खड़ा होता है, जब कि एक ही हाथी, एक ही चलता-फिरता पहाड़ बीसों शेरों को अपने पैरों से रौंद कर मिट्टी में मिला सकता है।

एक बड़ी शिक्षाप्रद कहानी है। दो भाई थे। दोनों को अपनी पैत्रिक सम्पत्ति में एकसा—समान भाग मिला था। किन्तु कुछ काल के अनन्तर एक तो दरिद्रता की सीमा पर पहुंच गया और दूसरे ने अपनी सम्पत्ति दस गुना बढ़ा ली। जो लखपति हो गया था, एक बार उससे प्रश्न किया गया—इतना अन्तर कैसे हुआ? तो उसने उत्तर दिया कि

मेरा भाई सदा कहता है—जाओ, जाओ; और मैं सदा कहता हूँ—आओ, आओ। इसका तात्पर्य यह हुआ कि एक भाई हर समय नौकरों से कहा करता था—जाओ, जाओ, और यह काम कर लाओ। इतनी आज्ञा देने के अतिरिक्त उसने कभी गुदगुदे मखमली गद्दों से नीचे पैर नहीं रखा। और दूसरा सदा कमर कसे अपने काम में जुटा रहा। उसने सदा अपने नौकरों से कहा—आओ, आओ. इस काम में मेरा हाथ बटाओ। वह अपनी शक्ति पर निर्भर करता और शक्तिभर नौकरों से काम लेता था। फल यह हुआ कि उसकी सम्पत्ति कई गुना बढ़ गयी। दूसरा अपने नौकरों से 'जाओ, जाओ' ही कहता रहा। वे चले गये और उसकी आज्ञा मानकर उसकी सम्पत्ति भी विदा हो गयी और अन्त में रह गया वह बिल्कुल अकेला। राम कहता है—आओ, आओ; राम की सफलता और आनन्द का उपभोग करो। अतः भाइयो, मित्रो और देशवासियो ! एक ही तथ्य है—मनुष्य स्वयं अपने भाग्य का विधाता है। यदि जापान के लोगों ने राम को अपने विचार प्रकट करने के और भी सुअवसर दिये तो राम तर्क से यह सिद्ध करके दिखा देगा कि किसी भी बाह्य शक्ति पर—देवी-देवता या कथा पुराण पर आश्रित रहने के लिये कहीं कोई स्थान नहीं है, अपना केन्द्र तो अपने अन्तर में है। स्वतंत्र मनुष्य भी एक प्रकार से बद्ध है, क्योंकि स्वतंत्र है। उसी स्वतंत्रता से हम श्री-सम्पन्न बनते हैं और अपनी उसी स्वतंत्रता के कारण हम गुलाम हो जाते हैं। फिर हम क्यों रोवें-धोवें और भक मारें ! अपनी सच्ची वास्तविक स्वतंत्रता ही का उपयोग क्यों न करें जिससे शारीरिक और सामाजिक सभी बन्धन कट जाते हैं।

जो धर्म आज राम जापान को सुना रहा है, वह ठीक वही धर्म है जो आज से शताब्दियों पूर्व भगवान् बुद्ध के अनुयायी यहाँ लाये थे। किन्तु अब उसे वर्तमान युग की आवश्यकताओं के अनुकूल बनाने के लिये उसकी नयी व्याख्या होनी चाहिए। हम उसे आधुनिक विज्ञान और दर्शन की प्रभा से आलोकित कर देंगे।

राम के धर्म के आवश्यक और आधारभूत सिद्धान्त 'गेटी' के शब्दों में यों व्यक्त किये जा सकते हैं—

"यदि मुझे कहना पड़े, है क्या मनुष्य का बड़े से बड़ा काम—
तो मेरे पहले था ही नहीं कहीं जगत् !
वह सब है मेरी सृष्टि !
वह मैं ही हूँ जिसने सूर्य को चमकाया—
आकाश में, समुद्र की गिरि-गुहा से निकालकर !
वह मैं हूं जिसके लिये,
चन्द्रमा रंग बदला करता है नित्य नित्य।"

बस, एक बार इसका अनुभव करो और तुम इसी क्षण मुक्त हो। एक बार इसे प्रत्यक्ष करो और तुम सदा सफलीभूत हो। एक बार इसे हृदयंगम करो और नरक की भयानक गंदी कोठरियाँ तुरन्त स्वर्ग के आनन्द-कानन में परिणत हो जायंगी।

बारहवाँ परिच्छेद

स्वामी रामतीर्थ अमरीका में

......देश के इस भू-भाग में ऐसे बहुत से व्यक्ति हैं, जो स्वामी रामतीर्थ को बराबर बड़े प्रेम से याद करते रहते हैं। वे कहते हैं कि स्वामी जी का जीवन एक सच्चे त्यागी महात्मा का जीवन था। उन्होंने केलीफोर-निया की पर्वतीय घाटियों में रहने वाले शिक्षाहीन देहातियों का हृदय भी जीत लिया था। वे स्थानीय सामयिक पत्रों में प्रकाशित होने वाली अपने व्याख्यानों की प्रशंसात्मक आलोचनाओं को रद्दी के टुकड़ों की भांति समुद्र में फेंक देते थे। वे अपने भाषणों के लिये कभी कोई प्रवेश-फीस न लेने का बड़ा आग्रह करते थे। उनके एक धनी-मानी मित्र ने जब यह उलाहना दिया—"स्वामी जी, पर इस प्रकार आपके व्याख्यानों के लिये सभायें करने का व्यय कैसे जुटाया जा सकता है? तब उन्होंने झट से उत्तर दिया—निस्संदेह, तुम इन सभाओं का सारा व्यय स्वयं कर सकते हो।" संक्षेप में, जितने भी हिन्दू कभी अमरीका आये स्वामी राम सबसे महान् थे, एक सच्चे महात्मा, एक सच्चे ऋषि। उनके जीवन में हमें हिन्दुस्तान की आध्यात्मिकता के सर्वोच्च सिद्धान्तों की झलक दिखाई देती है और उनकी आत्मा में उस सार्वभौमिक आत्मा—परमात्मा—का प्रतिबिम्ब था, जिसे वे अनुभव कर रहे थे।

[लाला हरदयाल एम० ए० के अमरीका से भेजे हुए 'मोडर्न-रिव्यू' जुलाई सन् १९११ के लेख से अनूदित]

जब स्वामी राम शास्ता स्प्रिंग्स में ठहरे हुए थे तो वे एक साधारण मजदूर की भांति काम करते थे। वे पर्वतों से लकड़ी काट काटकर अपना आतिथ्य करनेवाले डा० हिलर के गृह-भाण्डार में जमा किया करते थे। उन्होंने मुझ से कहा था—शास्ता में राम को कड़ी मेहनत करनी पड़ती थी, क्योंकि अमरीका जैसे देश में राम शारीरिक श्रम सम्बन्धी अपने कर्त्तव्य को निबाहे विना रहना पसंद न करता था किंतु राम को एकांत से बड़ा प्रेम था। एक बार राम शास्ता पर्वत की चोटी पर चढ़ने में सर्वप्रथम आये थे। इस स्पर्द्धा में बहुत से अमरीकन भी सम्मिलित हुए थे, किन्तु राम को उनके द्वारा भेंट किये जाने वाला उपहार स्वीकार न हुआ। उस संवाद-पत्र की प्रतियां जिसमें इस चढ़ाई का वर्णन छपा था, इतनी तेजी से विकी थीं कि लोगों को आश्चर्य होता था। राम एक Marathon मेराथन रेस भी दौड़े थे—पूरे तीस मील की। राम तो केवल दौड़ने के आनंद के प्रेमी थे और राम ही प्रथम निकले। यहां इस बात का उल्लेख किया जा सकता है कि एक ऐसा समय था जब वे लाहौर में विद्यार्थी और प्रोफ़ेसर थे, तब लोगों को आशंका थी कि कहीं उन्हें अपने स्वास्थ्य से एकदम हाथ न धोना पड़े। युवावस्था के प्रारम्भ में वे अत्यंत क्षीणकाय और दुर्वल थे, स्वास्थ्य इतना गिरा हुआ था कि उसके सुधरने की कोई आशा न की जाती थी। केवल अपने दृढ़ संकल्प के बल पर उन्होंने अपने शरीर को ऐसा पुष्ट बनाया था।

राम ने शास्ता नदी की तेज धार के आर-पार अपने लिये एक झूला टांग रखा था। उसमें बैठकर वे अपनी प्यारी चिड़ियों के साथ एक-स्वर होकर चहचहाया करते थे—राम के शब्दों में ऐसा आनंद तो सम्पूर्ण संयुक्त राष्ट्र के अधिनायक के भाग्य में

भी नहीं हो सकता। यदा-कदा वे वेदांत पर व्याख्यान देने के लिये अपने पर्वतीय एकांत से निकल पड़ते थे। वे 'भारत' पर भी भाषण करते थे। उन्होंने भारत की ओर से अमरीकनों के प्रति एक अपील निकाली थी, जिसने उस समय लोगों का यथेष्ट ध्यान आकर्षित किया था।

डा० हिलर और उनकी पत्नी, राम ने मुझे बताया था, बड़े भले, दयालु और अतिथि-सेवी थे। दम्पत्ति वृद्ध थे, राम उन्हें हंसाया करते थे। वे राम को बहुत पसन्द करते थे और चाहते थे कि राम सदा उनके साथ बना रहे। उन्होंने मुझे बताया था—एक दिन एक बहुत ही धनवान् महिला राम के पास आयी। राम उसे गंगा कहने लगे थे। उसने अपना सब कुछ - धन-जमीन-घर—राम को भेंट करना चाहा। और राम के हाथों संन्यास-वेष धारण करने की इच्छा प्रकट की। किन्तु राम तो कुछ चाहता नहीं था। उसका हृदय बेशक बड़ा विशाल और बड़ा उदार था। ईश्वर कल्याण करे, उसका हृदय महान् था!

"किन्तु क्या स्वामी जी, अमरीका सचमुच भारतवर्ष की अपेक्षा उस तत्व का अधिक पालन कर रहा है जिसे आप वेदान्त कहते हैं?" मैंने पूछा।

और स्वामी जी कहने लगे—नहीं, अमरीका तो मेरे वेदान्त का केवल भौतिक जगत् में व्यवहार करता है। राम चाहता है कि सभी राष्ट्र एक इस सचाई का मानसिक और आध्यात्मिक जगत् में भी व्यवहार करें। अमरीका और समस्त पाश्चात्य जगत् बाह्य दृष्टि से चारों ओर फैला हुआ होने पर भी भीतर ही भीतर सिकुड़ा हुआ है और भारतवर्ष तो अनेक शताब्दियों से मानसिक स्तर पर भी इतना अधिक संकुचित हो गया है कि उसका रोग

किसी भी पाश्चात्य देश से अधिक करुणाजनक हो उठा है। उसका पतन पराकाष्ठा पर पहुंचा हुआ है। एक ओर आध्यात्मिक जगत् का द्वार बन्द किया और दूसरी ओर मानसिक स्वर पर अपने भीतर ही सिकुड़ कर रह गया। खुली रही केवल भौतिक जीवन की एक छोटी सी खिड़की, जिससे उसकी श्वास भर चल रही है। वेदान्त पूर्ण सत्य है। यदि उसका पूर्ण रूप से पालन न किया जायगा, वह मार डालेगा। दो में से एक बात—या पूर्ण सत्य अथवा मृत्यु—इस जीती-जागती सच्चाई में बीच का सत्य-असत्य मिश्रित कोई सुनहला मार्ग नहीं निकाला जा सकता। राम यह नहीं कहता कि भारतवर्ष के हृदय में सत्य की भूख नहीं है, किन्तु है वह ऐसी जैसी किसी दीर्घ-कालीन अजीर्ण के रोगी को झूठी भूख लगा करती है और राम ने कभी तुम्हें बताया था कि भारतवर्ष को एक प्रकार का दार्शनिक अजीर्ण सा हो गया है। हमारी सभी परम्परायें, रीतिरिवाज़, जाति-पांति, चिरकालीन विश्वास और धार्मिक मान्यतायें केवल हमें हमारी आध्यात्मिक व्याधियों का पता दे सकती हैं, उनमें कोई जीवन नहीं। बहुत दिनों तक मानसिक स्तर के एक ही ढर्रे पर, जो प्रारम्भ में चाहे जैसा सुन्दर रहा हो, जीवन-यापन करने से आत्मा संकीर्ण हो जाती है और आज तो वह जीवन-क्रम न जाने कब का एक आत्मवंचक अज्ञान और भीतर-बाहर के सामंजस्य से रहित जीवन-हीन घोषणाओं के रूप में परिवर्तित हो चुका है।

राम ने यह भी बताया कि देश स्वयं आध्यात्मिक या मानसिक दृष्टियों से भले या बुरे, इन दो विभागों में नहीं बांटे जा सकते। किसी देश में थोड़े से ही ऐसे स्त्री और पुरुष होते हैं, जिनका जीवन महत्वपूर्ण और परिचायक होता है, दूसरे तो यों ही होते हैं और यह तो केवल संयोग की बात होती है

कि किसी भी देश में तुम्हारा व्यक्तिगत संपर्क उस देश के प्रथम श्रेणी के अधिक लोगों से होता है या दूसरी श्रेणी के अधिक लोगों से। इस प्रकार के परिचय के आधार पर जो धारणा बनायी जाती है, वह तो सदा व्यक्तिगत ही रहेगी। स्वर्ग और नरक एक ही स्थान में, नहीं, एक ही बदन में एक साथ रहते हुए देखे जाते हैं। हर देश में, हर एक जल-वायु में, हर एक व्यक्ति में, ऐसी बात संभव हो सकती है। अतएव तुम्हें किसी विशेष परिस्थिति में वहां जैसा प्रादुर्भाव दिखायी पड़ता है, उसी के अनुसार तुम उस देश के बारे में अपनी राय निर्धारित कर लेते हो। और यदि तुम किसी देश के सब से सुन्दर, सब से श्रेष्ठ भूभाग, सब से श्रेष्ठ स्त्री-पुरुषों के व्यक्तिगत संपर्क में आने के लिये सचेष्ट रहो तो तुम्हें सभी देश एक समान आध्यात्मिक, एक समान श्रेष्ठ, एक समान सुन्दर और एक समान दिव्य मालूम होंगे।

"नहीं, स्वामी जी, मेरे पूछने का अभिप्राय यह है कि आपने जो हिन्दू दर्शनशास्त्र की शिक्षा वहाँ दी, उसका वहाँ के लोगों पर कैसा प्रभाव हुआ ?"

"ओह, अमरीका को यह बात समझाने के लिये एक महान्, बड़ी भारी आत्म-साधना की आवश्यकता है। यह किसी नौसिखिये का काम नहीं। यदि वहां कुछ करना हो तो वहां के सर्व-प्रकार सुसंस्कृत व्यक्तियों को, विश्वविद्यालय के मनुष्यों को अपने पास खींचना होगा। उस देश पर कोई स्थायी प्रभाव डालना आसान नहीं। सुन्दर, स्वच्छ, श्रीसम्पन्न महिलायें जिनके लिये घर में कोई काम नहीं होता, भले ही झुण्ड के झुण्ड आपकी बातें सुनने और आपकी अपरिचित मुख-मुद्रा निहारने के लिये आयेंगी किन्तु यह जिज्ञासा नहीं, उत्सुकता मात्र है। सैकड़ों-हजारों स्त्रियों में से जो राम से मिलीं, केवल दो सच्ची निकलीं और विशेष कर

एक गंगा, वह तो देवी थी ! भारतवर्ष या अमरीका में राम को ऐसी कोई दूसरी स्त्री देखने को नहीं मिली।

एक दिन अमरीका की एक नामी अभिनेत्री राम से एकान्त में भेंट करने आयी। राम ने प्रसन्नता से स्वीकृति दे दी। वह मोतियों और जवाहरों से लदी हुई थी, और इतना अधिक इत्र लगाये हुई थी, जैसे वह सुगंध—केवल सुगंध—की पुतली हो। उसके ओठों पर मुस्कराहट खेल रही थी जो अपनी हर एक नई भंवर में एक नया रंग खिलाती थी।

किन्तु ज्योंही उसने कमरे में प्रवेश किया, त्योंही वह फ़र्श पर बैठकर रोने लगी। उसने कहा—स्वामी जी, मैं बड़ी दुखी हूँ, मुझे सुख दीजिये। मेरे मोतियों की ओर न देखिये और न मेरी मुस्कराहटों पर ध्यान दीजिये—इन वाहरी वातों का अभ्यास तो मेरा स्वभाव सा वन गया है किन्तु इन्हीं वातों से तो मुझे—मेरे सम्पूर्ण हृदय को घृणा हो रही है। राम ने उसे सान्त्वना दी। उसने अपने पाप-पुण्य का सारा व्यौरा राम के सामने खोल कर रख दिया। राम को ऐसा लगा जैसे पाश्चात्य सभ्यता ही इसके द्वारा पश्चात्ताप प्रकट कर रही हो।

एक दूसरी स्त्री आई; वह भी बड़ी कातर थी। उसका बच्चा मर गया था, वह राम से शान्ति और सुख की प्रार्थना करने लगी। राम ने उससे कहा—राम आनन्द बेचता तो है, पर उसके लिये मूल्य देना पड़ता है। वह चिल्ला उठी—हां, हां, स्वामी जी, चाहे जो, मेरा सब कुछ मूल्य के रूप में ले लें। राम ने उसे बताया कि आनन्द के राज्य में यह सिक्का नहीं चलता, तुम्हें राम के जगत् में चलने वाला सिक्का देना होगा। "हां, हां, स्वामी जी, मैं दूंगी, अवश्य दूंगी।"

राम ने उत्तर दिया—बहुत ठीक, तो लो, इस नीग्रो जाति के

छोटे से बच्चे को अपने ही बच्चे की तरह प्यार करो। बस, तुम्हें यही मूल्य चुकाना होगा।

"ओह, यह कितना कठिन कार्य है!"

"तब तो आनन्द पाना भी दुस्तर है।" राम का उत्तर था। किन्तु फिर भी उस बेचारी को कुछ आनन्द मिला; वह उस दिन के बाद पूर्वापेक्षया अधिक सुखी रहने लगी।

अमरीका में स्वामी राम के सद्प्रयत्नों का अच्छा फल हुआ था और यह बात हमें उन विवरणों से ज्ञात होती है, जो हमें उनके निर्वाण के बाद मिले। वहां उन्होंने भारतीय विद्यार्थियों की भलाई के हेतु आन्दोलन उठाया था और उनकी सहायता के लिये कुछ सभाओं का संगठन किया था। उन्होंने भारत की जाति-पाँति की कड़ी निन्दा की। अधोलिखित समाचारपत्रों की कतरनों से, जो उनके शरीरपात के पश्चात् एक अमरीकन महिला से प्राप्त हुई—यह बात भली भांति सिद्ध हो जाती है कि वहां उन्होंने अपने पूर्ण निष्काम प्रयत्नों के फलस्वरूप भारत की भलाई के पक्ष में यथेष्ट उत्साह उत्पन्न कर दिया था।

राम को एक अमरीकन विश्व-विद्यालय से निमंत्रण मिला हुआ था और वहां उन्होंने एक भाषण दिया—"भारत के प्रति संसार कितना ऋणी है?" विश्व-विद्यालय के सभापति ने उसकी बड़ी प्रशंसा की और कहा कि इसके द्वारा हमें पाश्चात्य संस्कृति में वेदान्त की विचार-धारा के प्रवेश के इतिहास की खोयी हुई कड़ी मिल जाती है। जब विश्व-विद्यालय का क्लर्क कुछ पुस्तकें स्वामी राम को भेंट करने के लिये लाया तो उनमें से एक पुस्तक की जिल्द कुछ बिगड़ी हुई थी। सभापति ने क्लर्क की ओर मुड़ कर कहा—क्या तुमने अभी अभी स्वामी जी का व्याख्यान नहीं सुना है? अथवा तुम यह नहीं जानते कि ये पुस्तकें किसे भेंट की

जाने वाली हैं ? ये तो भगवान् राम को विश्व-विद्यालय की ओर से उपहार में दी जायंगी। कृपया एक दूसरी प्रति लाइये।

स्वामी राम ने अन्य विश्व-विद्यालयों का भी निरीक्षण किया था। भारत के एक सुविख्यात गणितज्ञ की हैसियत से वैज्ञानिक चर्चा करने के लिये नहीं, वरन् पूर्व के दार्शनिक की भांति वेदान्त की ज्योति फैलाने के लिये ! यद्यपि वे अपने गणित विषय को अधिक, अत्यधिक प्यार करते थे, पर वेदान्त तो उन्हें सब विषयों से अधिक प्रिय था। जहां कहीं वे गये, अपने आप लोग उन्हें प्रेम करने लगे। जिस किसी के सम्पर्क में आये उसने उनका आदर और सम्मान किया। अपने इन पर्यटनों में राम ने अनेक स्थानों में भाषण और ज्ञानोद्रेक करने वाले प्रवचन दिये और उनके द्वारा अमरीका में वेदान्त की विचारधारा के प्रसार में यथेष्ट सहायता मिली। यद्यपि उनका यह प्रचार-कार्य किसी संस्था या संगठन के आधार पर नहीं हुआ और न उन्होंने कभी वेदान्त के प्रचार के लिये आर्थिक सहायता मांगने की इच्छा ही प्रकट की, फिर भी उनके आग्रह की जड़ गहरी थी, जिसका मूल्य रुपया-पैसा के रूप में कदापि नहीं आँका जा सकता। उनका व्यक्तित्व ही ऐसा जाज्वल्यमान और आकर्षक था कि सब पर और एक एक पर उसका ऐसा गंभीर प्रभाव पड़ा, जो किसी प्रकार धोया नहीं जा सकता।

अमरीका-प्रवास में उन्होंने जो व्याख्यान दिये थे और जिज्ञासुओं से जो वार्तालाप की थी, उन सब का संकलन करके उन्हें अंग्रेजी में 'In Woods of God-Realiza[illegible] नाम से पुस्तकाकार प्रकाशित किया गया है और रामतीर्थ प्रतिष्ठान, लखनऊ द्वारा उनका हिन्दी भाषान्तर भी प्रकट हो चुका है। उनके इन भाषणों को एक महिला स्टेनो-टाइपिस्ट मिसेज़ पी०

ह्विटमैन ने लिखा था। वे स्वामी जी की बड़ी प्रशंसक और भक्त थीं। अकस्मात् देहावसान के कारण ये व्याख्यान उन्हीं 'नोटों' के अनुसार ज्यों के त्यों प्रकाशित कर दिये गये हैं। राम के द्वारा उनका संशोधन नहीं हो सका है। फिर भी उनमें हमें राम की आत्मा बोलती सुनाई पड़ती है।

नीचे मिसेज़ वेलमैन का एक पत्र दिया है जो मुझे लोज एंजेल्स, केलीफोरनिया से राम की मृत्यु के बाद मिला था। वह कितनी सचाई के साथ राम के अद्‌भुत् प्रभाव का वर्णन करता है। उनके आनन्द में तो जादू था ही, दर्शक आपसे आप उसमें डूब जाते थे; किन्तु उनके विचारों में भी ऐसी प्रखरता थी कि वे बरबश हमारे हृदयों में घर कर लेते थे। मैं इस भक्तिसम्पन्ना महिला मिसेज़ वेलमैन से देहरादून (भारतवर्ष) में मिला था; जब वे इस देश को देखने आयी हुई थीं। हम लोगों ने साथ ही साथ टेहरी की पहाड़ियों में यात्रा की और पंजाब के मैदानों का दौरा किया था।

देखिये, मिसेज वेलमैन अपने पत्र में क्या कहती हैं—

......सन् १९०३ के प्रारम्भिक दिन थे, जब पहले पहल मुझे इस महान् आत्मा से मिलने का अवसर मिला, तब वे सनफ्रांसिस्को में व्याख्यान दे रहे थे। मैं बड़ी अनिच्छा से उनका व्याख्यान सुनने गयी। किन्तु उनकी ओम् ध्वनि से मेरा मन ऊपर उठा, मेरी सारी आत्मा में हर्ष की एक ऐसी लहर दौड़ गई जिसका पहले कभी अनुभव न हुआ था। एक [illegible]ांय, आनन्दमय शान्ति ने मेरी आंखें खोल दीं।

बस, फिर तो मैंने कभी जीवन के उस दिव्य रस के उपभोग करने का अवसर हाथ से न जाने दिया, जिसे वे मुफ्त में बांटा करते थे। उन्होंने अमरीकनों से एक अपील भी की थी कि वे भारतवर्ष में जाकर और

भारतवासियों के पारिवारिक अंग बन कर उनके देशवासियों की सहायता करें। एक काफ़ी बड़ी संख्या में लोगों ने कहा—वे जायंगे। किन्तु गया एक भी नहीं। एक दिन मैंने उनसे कहा—स्वामी जी, आपने मेरा जो उपकार किया है, उसके बदले मे मैं आपके देशवासियों की क्या सहायता कर सकती हूं? उन्होंने उत्तर दिया—यदि तुम भारतवर्ष चली भर जाओ तो तुम बहुत कुछ कर सकोगी। 'मैं जाऊंगी'—मेरा निश्चयात्मक उत्तर था। पर मेरे मित्र इसके विरुद्ध थे, कुछ तो मेरे संकल्प की हंसी उड़ाने लगे। कुछ लोगों ने समझा कि मैं पागल हो गयी हूं—विशेषतः जब कि मेरे पास आने-जाने के लिये काफ़ी रुपया भी नहीं है। किन्तु राम ने कहा—यदि तुमने सचमुच वेदान्त समझा है तो तुम्हें डरने की कोई बात नहीं। भारत में भी ईश्वर तुम्हारी वैसी ही रक्षा करेगा, जैसी अमरीका में करता है। और ऐसा ईश्वर ने किया भी—हमारे जीवन के उस दिव्य सर्वबुद्धिसम्पन्न वेदान्त सिद्धान्त ने अपनी सर्व-शक्तिमत्ता मेरे सामने स्पष्ट सिद्ध कर दी। मेरे प्यारे हिन्दू भाई और बहनों—मेरी ही सन्तानों—ने बड़े प्रेम और उत्सुकता से मेरा स्वागत किया। पांच मास भी न बीतने पाये थे और मैंने अपने परम दयालु राम के सामने किया हुआ प्रण पूरा कर दिया। मैं बिल्कुल अकेली उनके देश को चल खड़ी हुई—उस दशा में जब कि उस दूरस्थ देश में मेरा परिचित एक भी व्यक्ति न था। किंतु मेरे हृदय में विश्वास था—मैं राम के सिखाये हुए उस अनन्त प्रभु की सर्व-सामर्थ्य-सम्पन्ना भुजा पर अवलम्बित थी।

मिसेज़ पोलिन ह्विटमैन स्वामी जी की एक दूसरी शिष्या ने (जिसका वर्णन ऊपर हो चुका है,) उनकी मृत्यु पर मुझे एक लम्बा पत्र लिखा था—

शब्दों में वह सामर्थ्य नहीं, जो हृदय के भावों को यथार्थ व्यक्त कर सकें। भाषा के ठंडे और पतले शब्दों के द्वारा उन्हें प्रकट करना

सचमुच बड़ा कठिन है। राम की भाषा ऐसी थी जैसे नन्हें से पवित्र-हृदय बालक की होती है। वे चिड़ियों की, फूलों की, बहते हुए चश्मों की और हिलती हुई वृक्षशाखाओं की भाषा में बातें करते थे। सूर्य, चन्द्र और तारे भी उनकी बोली समझते थे। दुनिया के बाह्य आडम्बर के नीचे और दुनियादारों के हृदय के भीतर बहने वाली भाषा उनकी अपनी भाषा थी।

समुद्र और सागरों के नीचे, द्वीप और महाद्वीपों के नीचे, खेतों और जड़ी बूटियों के भीतर, लताओं और वृक्षों के अन्तरंग में उनके जीवन ने प्रवेश किया था। प्रकृति के हृदय में पैठकर वे प्रकृति की आत्मा बन गये थे। मनुष्य के छोटे-छोटे विचारों और स्वप्नों के नीचे, बहुत नीचे उनकी वाणी सवाक् हो उठती थी। कितने थोड़े ऐसे कान हैं जिन्हें उस दिव्य संगीत को सुनने का सौभाग्य होता है! उन्होंने उसे सुना था, उसे जीवन में उतारा था। वे उसी में श्वास लेते और उसी को सिखाते थे। उनकी सम्पूर्ण आत्मा उस संगीत से सराबोर हो गयी थी। वे आनन्द रस से भरे हुए देवदूत थे।

ऐ उन्मुक्त आत्मन्—ऐ आत्मन्, तूने अपने शरीर के सम्बन्ध को पूरा कर लिया। ओ, आकाश में विचरण करने वाली, अनिर्वचनीय आनन्द का उपभोग करने वाली, लोक-लोकान्तर में विहार करने वाली आत्मा, तुझे सहस्रों नमस्कार! तू स्वतंत्र, और बन्धन-मुक्त है!

* * *

वे थे इतने कोमल, प्रकृतिस्थ, शिशु सदृश शुद्ध और श्रेष्ठ, सच्चे और लगनवाले—बिल्कुल सीधे सादे कि जो भी सच्चे हृदय वाला सत्य का जिज्ञासु उनके सम्पर्क में आया वह अमूल्य लाभ उठाये बिना न रहा, न रहा। प्रत्येक व्याख्यान, प्रत्येक सत्संग के पश्चात् लोग उनसे प्रश्न करते थे और वे सदैव बड़ी स्पष्टता और संक्षेप से, बड़ी मधुरता और बड़े प्रेम से उनका उत्तर देते थे। वे आनन्द और शान्ति के

भण्डार थे। जब लिखने-पढ़ने अथवा बातचीत से खाली होते तो निरन्तर ओम्-ओम् गाया करते थे। प्रत्येक मनुष्य में, हर एक प्राणी में वे ईश्वरत्व, ब्रह्मत्व का दर्शन करते और 'महाभाग भगवन्' के नाम से सब को सम्बोधन भी करते थे।

* * *

राम थे मानो अजस्र बुलबुला छोड़ने वाला आनन्द-निर्झर। ईश्वर में ही वे रहते-सहते और शरीरतः निवास करते थे—नहीं, वे साक्षात् ईश्वर थे। एक बार उन्होंने मुझे लिखा था—वे जिन्हें अपने मनबहलाव की इच्छा हो, हीरों से—आकाश में छिड़के हुए जाज्वल्यमान तारों से अपना मनोरंजन कर सकते हैं, मुस्कराते हुए जंगलों एवं नाचती हुई नदियों से यथेष्ठ आनन्द ले सकते हैं, शीतल मन्द समीर, उष्ण सूर्य-प्रभा और शुभ्र चन्द्रिका के अजस्र प्रवाह का मज़ा लूट सकते हैं—ये सारी वस्तुयें प्रकृति ने सभी मनुष्यों को बिना भेद-भाव मुफ्त प्रदान की हैं। वे जो ऐसा सोचते हैं कि विशेष विशेष वस्तुओं की प्राप्ति पर ही उन्हें आनन्द मिल सकता है उनके आनन्द का दिन सदैव उनसे दूर ही दूर भागता रहता है। अगिया-बैताल की भांति—अग्नि सदैव उनके आगे आगे भागती जाती है। जिसे लोग दुनिया की धन-सम्पत्ति कहते हैं, उससे आनन्द मिलना कहां, वह तो उल्टे हमारी आंखों पर एक ऐसी पट्टी बांध देती है जिससे हम प्रकृति के अनुपम सौंदर्य और आकाश मंडल के अतुलनीय गौरव को देखने से भी वंचित रह जाते हैं।

राम एक पहाड़ी के किनारे खेमे में रहते थे और 'रैंच हाउस' में भोजन करते थे। वह मनोरम दृश्यों से पूर्ण, बड़ा सुन्दर स्थल था। दोनों ओर सदा-बहार पेड़ और उनके नीचे उलझी हुई घनी झाड़ियों से ढके हुए पर्वत और नीचे घाटी में ज़ोर-शोर से बहती हुई स्कामेण्टो नदी। ऐसे स्थल पर राम ने एक के बाद एक—अनेक ग्रन्थ पद डाले—सैकड़ों उन्नायक कवितायें लिख डालीं और घंटों समाधि लगायी। वे नदी के बीच

एक भारी चट्टान पर बैठते थे, जहां लगातार कई दिनों तक और कभी कभी कई हफ्तों तक बड़ी तेज़ हवा चलती थी—और केवल भोजन के समय जब घर आते थे, तब उनकी बातें सुनते ही बनती थीं। 'शास्ता स्प्रिंग' से बहुत से दर्शक राम के पास आया करते थे और राम बड़े प्रेम से उनके साथ संभाषण करते थे। उनके गंभीर विचार सभी लोगों के हृदय पर गहरी छाप डालते थे, जो चिरकाल तक चलती थी। और जो केवल उत्सु-कता वश ही आते थे, उनकी उत्सुकता भी पूर्णतः सन्तुष्ट हो जाती थी। एक शब्द में, वे लोगों के हृदय में उस परम सत्य का बीज बो रहे थे, वह चाहे उनके अनजान में ही क्यों न हो, किन्तु उसका अंकुरित और पल्लवित होकर दीर्घाकार सुदृढ़ वृक्ष में बदल जाना सुनिश्चित है। आशा तो यह है कि यही शाखायें एक दूसरे से जुड़ती हुई एक दिन सारे संसार में व्याप्त होकर मनुष्य मात्र को सच्चे भाई-चारे और प्रेम के गठबंधन में जकड़ देंगी। सत्य का बीज उगे बिना नहीं रह सकता !

वे लम्बे पर्यटन करते थे। इस प्रकार 'शास्ता स्प्रिंग' में रहते हुए वे सीधा-सादा, स्वतंत्र, आनन्दमय और क्रियाशील जीवन बिताते थे। हंसी की फुहार बरबस अनायास ही उनके हृदय से फूट पड़ती थी और इतने ज़ोर से कि नदी में रहते हुए घर पर साफ़ सुनाई पड़ती थी। स्वतंत्र, एकदम स्वतंत्र राम थे एक बच्चे जैसे सच्चे साधु। वे लगातार एक साथ कई दिनों तक ब्रह्मभाव में डूबे रहते थे। भारतवर्ष के प्रति उनकी भक्ति बड़ी प्रगाढ़ थी और वे अपने दुखी भाइयों को ऊंचा उठाने के भी इच्छुक थे—ऐसे आत्म-त्याग और आत्म-बलिदान का उदाहरण मिलना बड़ा कठिन है।

* * *

जब मैं वहां से चली आयी, तब मुझे उन का एक पत्र मिला, जो, मुझे बाद में मालूम हुआ, कठिन बीमारी के समय लिखा गया था। "एकाग्रता और शुद्ध ब्रह्म-भावना की मात्रा इस समय अनोखी वृद्धि पर

है। ब्रह्मानुभूति ने पूर्णतः अपनी लपेट में मुझे लपेट लिया है। शरीर में तो नित्य परिवर्तन होते ही रहते हैं, निरन्तर संकल्प उठाना-बैठाना उसका स्वभाव है। मैं कदापि, कभी नहीं, कभी नहीं, इन शैतान अगिया-बैताल जैसे परिवर्तनों के साथ तदात्म हो सकता। रुग्णावस्था में एकाग्रता और आन्तरिक शान्ति चरम सीमा पर पहुंच जाती है। वह पुरुष, वह स्त्री सचमुच कंजूस, मक्खीचूस है जो कृपणता के वश इन अल्पकालीन अतिथियों—शारीरिक और मानसिक व्याधियों का समुचित आतिथ्य स्वीकार करने में संकोच करता है।"

वे निरन्तर समझाया करते थे कि हमें उस सर्वोपरि अनन्त शक्ति का अनुभव करना चाहिए, जो सूर्य में और नक्षत्रों में—सर्वत्र व्यक्त हो रही है। वह एक है, सर्वत्र सर्वथा एक है। मैं भी वही हूँ, तुम भी वही हो। इसी वास्तविक आत्मा को पकड़ लो, अपने जन्मजात वैभव को ग्रहण करो, अपने चिरन्तन जीवन का विचार करो, अपने इस सच्चे सौंदर्य पर ध्यान जमाओ—ऐसा ध्यान जमाओ कि इस छोटे से शरीर के क्षुद्र विचारों का कतई विस्मरण हो जाय। ऐसा अनुभव हो कि इन झूठी, दिखावटी बातों (छायाओं) से हमारा कोई सरोकार न रहे। न कोई मृत्यु है, न कोई बीमारी, न कोई दुख। पूर्ण आनन्द, पूर्ण शिव, पूर्ण शान्ति—सच्चिदानन्द! इस शरीर, इस क्षुद्र आत्मा से ऊपर उठकर पूर्णतः ब्रह्मभाव में सावधान रहो। यही तत्व वे हर एक स्त्री-पुरुष को सिखाया करते थे।

* * *

जब मैं यह सोचती हूँ कि मुझे राम जैसी पवित्रात्मा से मिलने, उनसे वार्तालाप करने और उनकी आज्ञा के अनुसार चलने का सुअवसर मिला, तब मुझे आश्चर्य सा मालूम होता है। वे उषादेवी के बालक थे और सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त तक संगीत का प्रवाह बहाते थे। किस समय क्या बजा है—इसकी उन्हें कोई परवाह न थी। इसी प्रकार लोगों के भावों और चिन्ताओं की ओर भी उनका कोई ध्यान

अमरीका में स्वामी राम

न था। उनके व्यापक और प्रबल विचार मानो सूर्य के साथ ही चलते थे और दिन उनके लिये शाश्वत प्रातःकाल बना रहता था। "लाखों-करोड़ों मनुष्यों को शारीरिक परिश्रम का यथेष्ट ध्यान रहता है किन्तु इन लाखों-करोड़ों में एकाध ऐसा भाग्यवान् जन्म लेता है जो कवित्वमय स्वर्गीय जीवन के लिये जाग्रत रहता है"—ऐसा 'थोरो' ने लिखा है। राम ऐसी ही अत्यन्त दुष्प्राप्य आत्माओं में से थे जो विशेष विशेष अवसर पर इस पृथ्वी पर अवतीर्ण होती हैं।

कहते हैं कि सूर्य उसका प्रतिबिम्बमात्र है।
कहते हैं कि मनुष्य उसकी प्रतिमा में बना है।
कहते हैं कि वह तारों में टिमटिमाता है।
कहते हैं कि वह सुगंधित पुष्पों में मुस्कराता है।
कहते हैं कि वह कोयलों में गाता है।
कहते हैं कि विश्वव्यापिनी वायु में वह श्वास लेता है।
कहते हैं कि वह शरदकालीन रात्रियों में रोता है।
कहते हैं कि वह कलकल करनेवाले चश्मों में दौड़ता है।
कहते हैं कि वह इन्द्रधनुष की चापों में गाता है।
प्रकाश की बाढ़ में, लोग कहते हैं, वह आगे-आगे चलता है।
यही राम गाते थे और है भी यही ठीक।

इन पत्रों और समाचार-पत्रों की कतरनों से, जिनकी प्रतिलिपि नीचे उतारी जा रही है, हमें यह ज्ञात हो सकता है कि भारतीय नवयुवकों को अमरीका में शिक्षा दिलाने के उद्देश्य से उन्होंने कितना अथक परिश्रम किया था। साथ ही वे हमें भारत की जाति-व्यवस्था के अन्याय और क्रूरता को निर्मूल करने के लिये

भी बड़े उत्सुक दिखाई देते हैं। उसके लिये तो वे वहां एक नियमित आंदोलन ही खड़ा करना चाहते थे। ऐसा लगता है कि अमरीका में वे अमरीकन मनोवृत्ति से काम करते थे, और भारत में भारतीय साधु की विचारधारा से। अमरीका जाने से पहले और वहां से लौटने पर भी उन्होंने भारतवर्ष की जाति-व्यवस्था को निर्मूल करने पर इतना अधिक जोर नहीं दिया।

अमरीका में उन्होंने लोगों को समझाया कि हम घर में रहकर, विवाह के बंधन में रहकर भी वेदांत का अभ्यास कैसे कर सकते हैं और भारतवर्ष में, जहां घर और बाल-बच्चों का मोह और उनकी अंधभक्ति खूब प्रचलित है उन्होंने फिर यही ठीक समझा कि भारतवर्ष के लिये इस समय संन्यासभाव की ही सबसे अधिक आवश्यकता है। किंतु उनका संन्यास अपना संन्यास था, वे कर्म में रत रहकर निष्काम कर्मयोग द्वारा ही संन्यास-भाव को ग्रहण करना चाहते थे।

किंतु स्वामी राम का स्वयं अपना एक विषय था—वही उन्हें सबसे अधिक प्रिय था—ईश्वर और ईश्वर का प्रेम सावित आनंद। दूसरे विषयों की चर्चा तो वे परिस्थितियों की आवश्यकतानुसार, प्रसंगवश ही किया करते थे।

उनका एक दूसरा प्रिय विषय यह था कि ईश्वर के प्रेम में डूबे हुए मनुष्य को व्यक्तिगत स्वार्थ की इच्छायें और कामनायें नहीं सता सकतीं। वह कभी कभी दूसरों की प्रार्थनाओं का साधन बन जाता है और माध्यम बनकर उनकी पूर्ति भी कर देता है किंतु वे इच्छायें किसी भी रूप में उसके हृदय को स्पर्श नहीं करतीं। अमरीका और भारतवर्ष के विभिन्न वातावरण में वे स्वयं अपनी इस अद्भुत अलौकिक विचारधारा के सबसे सुन्दर उदाहरण सिद्ध हुए।

निम्नलिखित पत्र स्वामी राम की मृत्यु पर मिसेज पी०
ह्विटमेन को मिले थे।

८१४ फेडेलिटी बिल्डिंग, बुफैलो, एन० वाई०
जनवरी १८, १९०७.

प्रिय मिसेज़ ह्विटमैन,

राम सुसायटी, जिसके नाम आपने २४ दिसम्बर को पत्र भेजा था
अब नहीं है, किन्तु सुसायटी के अपदस्थ मंत्री की हैसियत से मुझे वह
पत्र मिला है। स्वामी जी के निर्वाण के समाचार से, सचमुच, मुझे
बड़ा आश्चर्य हुआ किन्तु मुझे ऐसा लगता है कि उनकी दृष्टि से यह
कोई अभाग्य या दुर्भाग्य की बात नहीं हुई। इस पृथ्वी पर अपने छोटे
से जीवन में ही उन्होंने प्रचुरतम अनुभव की फसल पैदा कर ली थी
और शायद उनके जीवन का उद्देश सर्वांश में पूर्ण हो गया था। वे
परम शान्ति के भागी हों!

स्वामी जी ने सन् १९०४ के वसन्त और प्रारम्भिक ग्रीष्मकाल में
दो-तीन सप्ताह यहाँ बिताये थे। उन्होंने यहाँ भारतीय जीवन के कृष्ण
और शुक्ल दोनों पक्षों पर बहुत से व्याख्यान दिये और वेदान्त दर्शन
को भी समझाया। भारतीय व्याख्यानों में वे जाति-व्यवस्था की बुराइयों
पर विशेष ज़ोर देते थे और उसे नष्ट करने के इच्छुक थे। भारतवर्ष की
ओर से वे लोगों से सहायतार्थ प्रबल अनुरोध करते थे और उसके
फलस्वरूप वे यहाँ भी एक ऐसी सुसायटी (सभा) स्थापित करने में
समर्थ हुए, जैसी कि आप जानती हैं कि उनकी इस देश के सभी शहरों
में स्थापित करने की इच्छा थी (हिन्दू विद्यार्थियों को बुलाकर इस देश
में शिक्षित कराना)। इस दिशा में वे बड़ी लगन के और सुयोग्य वक्ता
सिद्ध हुए। जिन्होंने उनका यह प्रतिपादन सुना वे अवश्यमेव उत्साह से भर
जाते थे। पर बुफैलो शहर बहुत-सी बातों में एक प्रकार से पुराणपंथी
शहर है। जिन लोगों ने यहाँ राम-सुसायटी का संगठन किया था, वे

अधिकांश साधारण स्थिति के कामकाजी मनुष्य थे। उन्हें शीघ्र ही इस बात का पता चल गया कि ऐसे संगठन को जीवित रखना और उसे आगे बढ़ाना उत्तरदायित्वपूर्ण और श्रमसाध्य काम है, जो उनकी शक्ति के बाहर है। अतः यहाँ जो धन इकट्ठा हुआ था, वह पोर्टलेण्ड (ओरगन) की सुसायटी के पास भेज दिया गया, जो अधिक क्रियाशील और आशावान् मालूम होती थी, और बुफैलो-सुसायटी, राम के प्रस्थान के अनन्तर कुछ ही दिन बाद भंग कर दी गयी थी।

यह तो शायद आपको ज्ञात ही है कि स्वामी जी ने संयुक्त राज्य के अनेकों स्थानों में व्याख्यान दिये थे। बुफैलो आने से पहले वे कहाँ कहाँ हो आये थे—यह मुझे ठीक-ठीक नहीं मालूम; किन्तु यहाँ से वे लिलीडेल (इस राज्य का एक बहुत ही महत्वपूर्ण आध्यात्मिक केन्द्र) गये थे और फिर वहाँ से शिकेगो, बोस्टन, ग्रीनेकर, मेन और न्यूयार्क शहर (जहाँ ग्रीष्म ऋतु में अनेकों मत-पंथ और सम्प्रदाय के प्रतिनिधि व्याख्यान देते हैं) गये थे। और सब से अन्त में हमें दक्षिण के फ्लोरिडा से ख़बर मिली थी, जहाँ वे यात्रा और कार्याधिक्य की थकावट को दूर करने के निमित्त विश्रान्ति ले रहे थे।

स्वामी जी ने असाधारण रूप से यहाँ के लोगों का ध्यान आकर्षित किया था। केवल इस कारण नहीं कि वे विद्वान् और अध्यात्म-ज्ञानी थे, वरन् इसलिए भी कि वे कार्यकुशल, मधुर स्वभाव और उदारचित्त थे। इस देश में उनकी लोकप्रियता का कारण यह था कि वे सीधे-सादे, प्रजातांत्रिक पद्धति के प्रेमी और झट से अपने आपको परिस्थिति के अनुकूल बनाने में अत्यन्त सक्षम थे—यद्यपि वे एक ऐसे देश से आये थे, जहाँ जाति-पाँति का भेदभाव पराकाष्ठा पर है और वे स्वयं अति उच्च कोटि के ब्राह्मण थे। वे यहाँ एक ओर घंटों ठीक भारतीय पद्धति से ध्यान करते थे और बड़े प्रेम से दार्शनिक चर्चा किया करते थे तो दूसरी ओर दर्शकों के साथ दिल खोलकर हँसने के लिये भी तैयार

रहते थे और अवसर आ पड़े तो उनके साथ गेंद बल्ला आदि खेल भी खेलनेमें न चूकते थे।

वे बड़े पारखी थे और अमरीका की भावनाओं और संस्थाओं का बारीकी से अध्ययन करते थे—उन्हें इस देश की बहुत सी त्रुटियों का भी पता चला था किन्तु उनका विश्वास था कि अभी भारतवर्ष को "पश्चिम के इस यौवनसम्पन्न दानव" से बहुत कुछ सीखना है। साथ ही वे यह भी कहते थे कि अमरीका को भी नम्रतापूर्वक भारतवर्ष के संदेश को सुनना चाहिए, क्योंकि वह बड़ा ही महत्वपूर्ण कार्य है। वे इस देश के स्त्री-स्वातंत्र्य से बड़े प्रभावित मालूम होते थे, विशेषकर इस बात से कि उनकी यह स्वतंत्रता उन्हें पथभ्रष्ट नहीं करती। वे प्रायः बड़े प्रशंसात्मक ढंग से इसका उल्लेख करते थे।

मैं सोचता हूँ कि आपके पास कुछ ऐसे अन्य लोगों के भी पते होंगे, जिनके यहाँ अमरीका में स्वामी जी ठहरे थे और सम्भवतः वे आपको उनके कार्यों और उनके सुन्दर परिणामों के विषय में मुझसे कहीं अधिक बता सकेंगे। यह तो आप अवश्य जानती होंगी कि मिस्टर विलियम एच० गलवानी पोर्टलैण्ड (ओरगन) ओरगन सुसायटी के मंत्री हैं (या थे) और यदि आपने अभी तक उनसे पत्रव्यवहार न किया हो तो लिखिये, आपको उनके द्वारा स्वामी जी के कार्यों का यथेष्ठ परिचय मिल सकता है। यहाँ हम लोगों का विचार था कि स्वामी जी ने कभी ठीक ढंग से अनुभव नहीं किया कि वे अमरीका में कैसे लोगों के कंधों पर अपने काम का भार छोड़ रहे हैं जो स्वयं अपने उत्तरदायित्व एवं कार्यभार से इतने दबे हुए हैं। और ऐसा हो जाना बिल्कुल स्वाभाविक है, क्योंकि उनकी जाति, उनके देश और हममें जो इतना महान् अन्तर है।

—ऐनी एफ० हेस्टिंग्स।

डेनवर कोलो
जनवरी २५, १६०७

प्रिय मिसेज़ ह्विटमैन,

तीन वर्ष पहले की बात है, जब मैं उस सर्वश्रेष्ठ महापुरुष से मिला था। न उससे पहले, न उसके बाद फिर कभी मुझे वैसी महान् आत्मा के दर्शन हुए। उनकी उपस्थिति से मैं स्वयं कुछ ईश्वर के समीप, समीपतर पहुंचा हूँ। उनके शब्द, यद्यपि बहुत सीधे-सादे थे परन्तु उनके द्वारा मुझे यह निश्चय प्रतीति होती थी कि उन्होंने अन्तिम तत्व का साक्षात् किया है। इसीलिए वे 'स्वामी राम' के नाम से हस्ताक्षर करते थे।

कुछ उनके शब्दों के कारण से नहीं, कुछ उनकी भावनाओं के कारण नहीं, कुछ उनके व्यक्तित्व के कारण नहीं—हम लोग उनसे इतने प्रभावित हुए थे। सच तो यह है कि वे हमें ऐसे लगते थे, जैसे वे साक्षात् ईश्वर हों। इसीलिए जो भी उनके संपर्क में आया, उसके ज्ञान और अनुभव में वृद्धि हुए बिना न रही। वे यहां सुदूर पूर्व से आये थे—मझोला क़द और गेहुंवा वर्ण। किन्तु पश्चिम के बड़े से बड़े मनुष्य से भी उनका स्थान अधिक महत्वपूर्ण था। जहां से भी वे निकल जाते, फूल फूट पड़ते। उन बीजों को चारों दिशाओं में बिखेरने भर की देरी है कि सारा संसार सुन्दरतम उद्यान बन जायगा। उनके इस पुष्प का नाम है 'प्रेम'।

उन्होंने हमें ईसा के प्रेम की, कृष्ण के प्रेम की, ईश्वर के प्रेम की कथा सुनायी। पहले भी सुनी थी, पर उनके समझाने से वह हमारी समझ में आयी। उन्होंने हम में अपने हृदयकमल को विकसित करने की लालसा जाग्रत कर दी, उसकी पँखड़ियों को सूर्य की धूप दिखाने और सुरभि फैलाने की अभिलाषा पैदा की। हमने सोचा—जगत् में आये हैं तो उसे कुछ अच्छा बना जायं।

यदि हम तूफान में फंस जायं तो हमें प्रसन्न ही होना चाहिए। मेह

के झंझावात् के पश्चात् ही तो सुगंध में मिठास आता है। यदि हम भी वैसा रहना सीख लें तो हमारा जीवन व्यर्थ नहीं हुआ।

"बुलबुला फूटकर सागर रूप बन जाता है।" किसी ने मेरे कानों में कहा कि स्वामी राम का शरीर फूट गया। वे अखिल विश्व रूप बन गये। वे सब में समा गये और यदि हम अपने ही में उन्हें ढूंढेंगे तो उन्हें अवश्य पायेंगे। घोर हिम-वर्षा में वे हैं, उसके छोटे छोटे कणों में वे हैं। किंतु यह वर्षा ऐसे धीरे-धीरे होती है कि हमें उसकी ओर कान लगाना पड़ता है। नहीं तो हमें उस आगमन की खबर ही नहीं होती।

"उसने सब कुछ त्यागा, तब और मिला उसको !
सागर के तट पर, चंचल लहरों में बिखरा
वह मिला उसे घासों की चंचल नोकों पर,
वह मिला उसे तीव्रगामी झंझा की झोंकों पर—
जो उसकी मृदु भौंहों को छू चल देती थीं।
उसने जो पूछे प्रश्न, वही उत्तर बन बन
उसके जग से लौटे हैं उसकी प्रतिध्वनि में"

उन्होंने हमें उस शक्ति का पता दिया जो पेड़ों को उगाती है, नदियों को बहाती है और बताया कि यही शक्ति हमारे बालों को उगाती है और हमारे रक्त का संचालन करती है। सारे जीवन में केवल एक ही शक्ति काम करती है और वह शक्ति सर्वथा अनन्त है।

सूर्य हम से कहने नहीं आता कि मैं चमक रहा हूं किन्तु उसकी सुखद उष्ण किरणों से हमें स्वयं उसका पता चल जाता है। जब हम प्रेम की किरणें बाहर भेजते हैं, तब हमारे मिलने वाले उसका अनुभव किये बिना नहीं रह सकते। उसी प्रकार हमें स्वामी राम की स्मृति से सहायता मिलती है और उनकी सुगंध का अनुभव होता है।

फ्लोरेन्स के.

होनोलुलु टी० एच.
१०—१—१६०७.

प्रिय श्रीमती जी,

आपका गत मास के २६ तारीख का कृपा-पत्र प्राप्त हुआ। स्वामी राम ने यहां क्या काम किया, इसका पूरा पूरा वर्णन करने में मुझे अतीव प्रसन्नता होती किन्तु समयाभाव एवं अन्य परिस्थितियों के कारण यह मेरे लिये असम्भव है। स्वामी राम सन् १६०२ के नवम्बर-दिसम्बर में यहां ठहरे थे और इस निवास-काल में वे उन सभी लोगों के प्यारे बन गये, जो उनके सम्पर्क में आये। इनमें हमारी जाति के कुछ उच्चपदस्थ पुरुष और महिलायें भी थीं। यह तो कहने की आवश्यकता नहीं कि उनकी अकस्मात् मृत्यु से हम सब को कड़ा आघात लगा है किन्तु हम समझने लगे हैं कि हमारे इस संसार में सभी वस्तुयें एक अटल एवं अपरिवर्तनीय नियम से बंधी हुई हैं और ऐसी चीजें जिन्हें हम अकस्मात् घटना के नाम से पुकारते हैं, वे केवल शब्दों-शब्दों में ही रहती हैं—विशेष कर उस स्थिति में जब कि उन घटनाओं के कारण हमारी बुद्धि से बिल्कुल छिपे रहते हैं।

हमारी सुसायटी उस कार्य के संपादन में सच्चे दिल से सचेष्ट है, जो राम ने प्रारम्भ किया था। इसके लिये पत्र के साथ में सुसायटी के प्रस्तावों की एक प्रतिलिपि आपके पास भेजी जा रही है। मैं आपके पास कुछ समाचार पत्रों की कतरनें भी भेज रहा हूं जो उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं। सुसायटी के विवरणों के कुछ उद्धरण भी इस सम्बन्ध में आपको रुचिकर होंगे। जब राम यहां थे तब समाचार पत्रों में बहुत से संवाद निकला करते थे किन्तु बात इतनी पुरानी हो गयी है कि उनकी प्रतियां दुष्प्राप्य हो गयी हैं, इसलिए उनकी कतरनें नहीं भेजी जा सकीं।

इसके सिवा यदि कोई ऐसी बात हो, जिसमें मैं आपकी सहायता कर सकूं तो कृपया अवश्य सूचना दीजिएगा।

सम्पूर्ण शुभेच्छाओं और सप्रेम अभिवादनों के साथ।

डबल्यू० एम० एच० गजवानी

समाचार-पत्रों के कतरनों की प्रतिलिपियां

रोकी माउन्टेन न्यूज, डेनवर कोलो ४ जनवरी १६०४ के अंक में इस प्रकार लिखा था—

स्वामी राम नामधारी जो हिन्दू प्रोफ़ेसर आजकल डेनवर में आये हुए हैं, कल अपराह्न में उन्होंने 'यूनिटी चर्च' में अपने दर्शन शास्त्र के सिद्धान्तों पर व्याख्यान दिया था। प्रोफ़ेसर राम का 'मिशन' है हिन्दुओं की जाति-व्यवस्था को भंग करना। वे अपने इस उद्देश्य के साफल्य में अमरीका की सहायता चाहते हैं। उनका दर्शन शास्त्र भी सदाचार मूलक है। उन्होंने अपने धर्म को 'सार्वजनिक पथ' नाम दिया है। वे जहां कहीं जाते हैं, मुख्यतः इसी धर्म का प्रचार करते हैं। आज प्रातः काल प्रोफ़ेसर राम 'मिनिस्टीरियल एलायन्स' में भारतवर्ष की जाति-व्यवस्था पर एक भाषण देंगे और कल अपराह्न से 'यूनिटी चर्च' में उनके अपने धर्म पर एक व्याख्यान-माला प्रारम्भ होगी। व्याख्यान दो बजे प्रारम्भ होगा और उसका विषय होगा 'सफलता का रहस्य'। अन्य विषय हैं—प्रेम-द्वारा ईश्वर का साक्षात्कार, तुम क्या हो? आनन्द का इतिहास और निवास, पाप का निदान—कारण और निवारण। अपने कल के अपराह्न भाषण में स्वामी राम ने कहा था—

इस दर्शन शास्त्र का एकमात्र उद्देश्य यह है कि हम अपने वर्तमान जीवन के व्यवहार को कैसे संयम में लायें। इसके द्वारा हमें अपनी वर्तमान समस्याओं को सुलझाने में व्यवहारतः स्पष्ट सहायता मिल सकती है। यद्यपि मैं हिमालय के सघनतम अरण्यों से आया हुआ हूँ, यद्यपि चाहे आप समझते हों कि मैं कोई अलौकिक गुप्त रहस्यों को जानने वाला

योगी हूँ, चाहे आप इस विषय में निराश हो जायं किन्तु मैं स्पष्ट कहना चाहता हूँ कि मेरे पास 'गोपनीय' नाम की कोई चीज़ नहीं। मैं तो आपको वे बातें बताना चाहता हूँ जिनसे शक्ति का कम से कम दुरुपयोग हो, शरीर और मन को अकारण यंत्रणायें न भोगनी पड़ें, आप हर प्रकार के तमोगुण और प्रमाद से मुक्त हो जायं, जो ईर्ष्या-द्वेष, मिथ्या अहंकार, चिड़चिड़ाहट आदि से उत्पन्न होता है। आपको मानसिक अजीर्ण न हो, आप बौद्धिक दारिद्रय और आध्यात्मिक दासत्व से बच सकें, आप को सफल कर्मयोग का रहस्य ज्ञात हो जाय और प्रेम के द्वारा ईश्वर का साक्षात् कर सकें। एक शब्द में, मेरा सिद्धान्त आप को ज्ञान के आदि-स्रोत के पास ले जायगा और आप सदैव शान्ति और समन्वय का जीवन व्यतीत कर सकेंगे।

मेरा धर्म न तो हिन्दू धर्म है, न मुसलमान, न ईसाई, न कैथोलिक, और न प्रोटेस्टेण्ट किन्तु वह किसी का विरोधी भी नहीं। वह सर्वव्यापक क्षेत्र जो सूर्य, चन्द्र नक्षत्र, आकर्षण, विकर्षण, शरीर और मस्तिष्क से ढका हुआ है, वही विशाल क्षेत्र मेरे धर्म की भूमिका है। क्या कमल भी कभी 'प्रेसबीटेरियन' होते हैं अथवा किसी ने 'मेथोडिस्ट' प्राकृतिक दृश्य देखे हैं? इसीलिए मैं रंग-रूप, जातिपांत का कोई भेदभाव नहीं मानता और सूर्य की किरणों को, नक्षत्रों की रश्मियों का, वृक्षों की पत्तियों का, घास की कोपलों का, बालू के कणों का, शेरों के हृदय का, हाथियों, मेमनों, चीटियों, पुरुषों, स्त्रियों, और बच्चों—सभी का अपने सहधर्मी के रूप में स्वागत करता हूं। यह प्राकृतिक धर्म है। मैं कोई नाम नहीं रखता, किसी पर कोई बिल्ला नहीं बांधता और न किसी पर आधिपत्य ही जमाता हूं किन्तु सूर्य और प्रकाश की भांति सब की एक समान सेवा करता हूं। इसीलिए मैं उसे 'सार्वभौमिक पथ' कहता हूं।

इस 'सार्वभौमिक पथ' की केन्द्रीय शिक्षा को मैंने काव्य रूप में यों व्यक्त किया है—

"ओ प्यारे नन्हें से कमल ! अपनी ओस भरी आँख का—
जरा ऊपर उठाओ तो सही,
यहां तो अपने सिवा कोई और है नहीं,
फिर तू क्यों न मुझे बता दे सच सच,
तू असल में है कौन ?
कमल ने मीठी आह भर कर उत्तर दिया यह—
एकान्त में ही यदि तुम मुझसे पूछते हो ?
तो दुख से कहना पड़ता है मुझे—
तुम कभी न जान सकोगे—
मैं हूं कौन !
देखते नहीं, मेरे भाई और बहन चारों ओर हवा में—
और धरती पर बिखरे पड़े हैं सब !
और मैं हूं वही जो वे हैं !

उस सर्वोच्च जाति के सदस्य होते हुए, जो भारतवर्ष के राजा और महाराजाओं की जाति से अधिक श्रेष्ठ मानी जाती है, स्वामी राम ने अपना सारा जीवन अपनी जाति के उत्थान में अर्पण कर दिया है। छोटे से और दुबले-पतले, काली, उत्सुक और चमकीली आंखों वाले, गेहुंवा-वर्ण के, काले सूट के साथ हमेशा एक चमकदार लाल पगड़ी पहने हुए—बस, यही स्वामी राम की रूप-रेखा है। भारतवर्ष के यही सज्जन आज-कल पोर्टलेण्ड में पधारे हैं। यह भारतवर्ष का कोई साधारण व्यक्ति नहीं। भारतवासी तो वैसे प्रायः इस बन्दरगाह पर उतरा करते हैं किन्तु ऐसा विद्वान्, ऐसा विशालहृदय और उदार, ऐसा निस्पृह और निस्स्वार्थ कभी शायद ही यहां उतरा हो।

दो सप्ताह से अधिक हुए, स्वामी राम शान्तिपूर्वक यहां उपदेश दे रहे हैं। वे सभी प्रकार की और विभिन्न आदर्शों वाली श्रोतृमण्डली के सामने भाषण देते हैं—वीमेन्स क्लब, विशप स्कोट एकेडेमी, वी०

एम० सी० ए० यूनीटेरियन चर्च, स्प्रीच्युएलिस्ट क्रिश्चियन यूनियन और इसी प्रकार की अन्य संस्थाओं ने उन्हें निमंत्रण दिया है। क्योंकि उनके सिद्धान्त इतने विशाल हैं कि सभी प्रकार के विश्वास उसमें समा जाते हैं। उनके 'दर्शन' की तुलना उस बड़े भारी कम्बल से की जा सकती है, जो मनुष्य जाति के प्रत्येक मत-पंथ को स्थान देने के अनन्तर इतना बच जाता है कि सभी विश्वासी और अविश्वासी उसकी गरमी में आराम पा सकते हैं। स्वामी जी ने कभी यह सोचने का कष्ट नहीं किया कि इस चर्च अथवा उस संगठन के सिद्धान्त हमारे मत से मिलते हैं या नहीं। वे तो जिस किसी ने भी प्रार्थना की तुरन्त प्रसन्नतापूर्वक अपनी स्वीकृति दे देते हैं और जब कभी इस प्रकार की आशु स्वीकृति से उनके कार्यक्रम में गड़बड़ी होने लगती है तो वे बड़े धैर्य और मार्जन-पूर्ण हृदय से सौभाग्यवश प्राप्त अपने कुछ कार्यकुशल मित्रों की सहायता से सबको निभाने की चेष्टा करते हैं और यदि आवश्यकता पड़ जाती है तो कभी कभी लगातार कई दिनों तक प्रातः, अपराह्न और सायं तीनों समय बोलते रहते हैं। जहां कहीं और जब कभी वे किसी श्रोतृमण्डली अथवा कक्षा में बोलते हैं, तो उनकी इच्छा के अनुसार उसका प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता। वे मानों मनुष्य को क्षुद्रता के घेरे से निकालकर बाहर खड़ा कर देते हैं। मंत्री, न्यायाधीश, वकील, जिज्ञासु और संशयालु—सभी को उनका भाषण सुन्दर मालूम होता है।

संक्षेप में, मोटे तौर से स्वामी राम वहां खड़े हुए हैं, जहां दर्शन-शास्त्र और व्यावहारिक विज्ञान एक स्थान पर मिलते हैं। वे एक सुयोग्य भाषाविद् हैं—वे बहुत सी अर्वाचीन और प्राचीन भाषाओं में पारंगत हैं। उन्होंने प्राचीन गुप्त रहस्यों एवं धर्मों का बड़ा व्यापक अध्ययन किया है। सभी देशों के वर्तमान इतिहास, साहित्य, जनश्रुति एवं दर्शनशास्त्रों में उन की अबाध गति है। इसके पूर्व वे पंजाब के महान् विश्व-विद्यालय के केन्द्र लाहौर में गणित एवं धार्मिक दर्शन

शास्त्र के प्रोफ़ेसर थे। उनका धर्म क्या है ? उसे उन्होंने वेदान्त दर्शन का नाम दिया है, जो हमें दिव्यानुभूति के लिये एक भीतरी चेतना का पता देता है।

अमरीका में उनका उद्देश्य दुहरा है। मुख्यतः वे अपने देश— भारतवर्ष और भारतवासियों में अमरीकनों की अभिरुचि पैदा करना चाहते हैं जिससे हिन्दुओं को यहां शिक्षा प्राप्त करने में सहायता मिल सके। वे हिन्दुओं को अमेरीकन कालेजों में भरती कराना चाहते हैं, जहां वे केवल लौकिक विद्या ही ग्रहण न करें, वरन् अमेरीकन दिलेरी, और अमेरीकन स्वतन्त्रता का स्वच्छन्द भाव भी आत्मसात् करें, जिससे कि वे पुनः अपने देश को वापस लौटने पर अपने स्वदेश-वासियों को इन भावों की शिक्षा दे सकें। इस प्रकार उन्हें आशा है कि जो भयानक जाति पाँति की प्रथा वहां प्रचलित है, वह धीरे-धीरे अवश्य टूट जायगी।

उनका दूसरा उद्देश है अपने दार्शनिक विचारों का प्रचार, महामहिम संदेश, जो मनुष्य और उस परमात्मा की एकता प्रतिपादित करता है।

यहां अन्य बातों के साथ वे ओरगन एवं राष्ट्र की अन्य रियासतों के कालेजों को इस बात के लिये तैयार करना चाहते हैं कि उनमें हिन्दू विद्यार्थियों को निःशुल्क शिक्षा प्राप्त करने की व्यवस्था हो जाय।

सन् फ्रांसिस्को में वे दो मास ठहरे थे और वहां इस विषय में इन्होंने कुछ प्रभावशाली गण्यमान्य व्यक्तियों का ध्यान आकृष्ट भी किया था। वहां एक विद्यार्थी के लिये व्यवस्था हो गयी है। पोर्टलैण्ड के पश्चात् वे अन्य बड़े शहरों में जाना चाहते हैं और उन्हें आशा है कि वहां वे और भी बड़ी संख्या में लोगों की अभिरुचि इस विषय की ओर आकृष्ट कर सकेंगे।

पोर्टलैंड जनरल ने इस प्रकार लिखा है—

स्वामी राम, भारतवर्ष के उच्चतम महात्मा, गत दस दिन से यहां व्याख्यान और प्रवचन दे रहे हैं। और उन्होंने अपनी योजना को

ओर अधिकांश लोगों का ध्यान भी आकृष्ट किया है। वे कहते हैं कि उनकी योजना के द्वारा ही भारतवर्ष में यथार्थ और प्रभावशाली ढंग से प्रचार-कार्य हो सकेगा और वह भी उससे कहीं अधिक स्वल्प व्यय में, जो आज कल ईसाई प्रचारक उस देश में कर रहे हैं।

भारतवर्ष में प्रचार कार्य को और अधिक प्रभावशाली बनाने की अपनी योजना को राम अपने एक व्याख्यान 'भारतवर्ष की दशा' में जनता के समक्ष रखेंगे। यह व्याख्यान मारकान थियेटर में २० दिसम्बर को रविवार अपराह्न ३ बजे दिन से होगा। व्याख्यान बिल्कुल निःशुल्क होगा किन्तु रविवार के प्रातःकाल १० बजे से मारकान बोक्स आफिस में अपने लिये स्थान सुरक्षित कराया जा सकता है।

राम स्वयं अपने लिये कभी रुपया-पैसा नहीं मांगते। किन्तु व्याख्यान के पश्चात् कुछ चन्दा इकट्ठा किया जायगा; जिससे उपस्थित सज्जनों को उस निधि में दान देने का अवसर मिल सके जिसे वे उस प्रचार-कार्य में व्यय करेंगे, जो यहाँ उन्होंने उठाया है। यह धन भारतवर्ष नहीं भेजा जायगा, वरन् अमरीका में ही व्यय किया जायगा। क्योंकि राम की योजना यह है कि कुछ नवयुवक हिन्दू विद्यार्थी—विशेष कर भारतीय विश्वविद्यालयों के बी० ए० पास विद्यार्थी—यहां बुलाये जायं और उन्हें इस शर्त पर शिक्षा दी जाय कि अपनी शिक्षा के अनन्तर वे अपना समय और अपनी शक्ति अपनी जन्मभूमि भारतवर्ष में किसी समाज-सुधार के आन्दोलन में लगायेंगे।

स्टेण्डफोर्ड यूनीवर्सिटी के डाक्टर स्टार जोर्डन, केलीफोरनिया यूनीवर्सिटी के प्रेसीडेण्ट बी० आई० हेलर एवं केलीफोरनिया की यूनाइटेड स्टेट्स अपील कोर्ट के जज मेरो इस निधि के संरक्षक रहेंगे, जिसके लिये आज चन्दा मांगा जायगा।

सनफ्रांसिस्को के एक पत्र ने सनफ्रांसिस्को में स्वामी राम की व्याख्यानमाला के विषय में इस प्रकार लिखा था—

जगत् की प्राचीन परम्परा को लौटा देना होगा। उत्तर भारत के जंगलों से एक महान् आश्चर्यजनक ज्ञानसम्पन्न व्यक्ति आया हुआ है, जो पैगम्बर, दार्शनिक, वैज्ञानिक, धर्म-प्रचारक सभी कुछ है, जो यहां संयुक्त राष्ट्र अमरीका में अपने सिद्धान्तों का प्रचार करना चाहता है। वह शक्तिशाली डॉलर के अन्धभक्त पुजारियों को निस्वार्थ-भावसम्पन्न आध्यात्मिक शक्ति का एक नया संदेश सुनाना चाहता है। वह ब्राह्मणों में श्रेष्ठ ब्राह्मण, सर्वोच्च जाति का गोस्वामिन् है और वह अपने देश-भाइयों में स्वामी राम के नाम से विख्यात है।

हिमालय का यह उल्लेखनीय महात्मा दुबला-पतला, किन्तु मेधावी नवयुवक है। धर्म प्रचारक की संन्यास वृत्ति उसके चेहरे से टपकती है। उच्च वर्ण ब्राह्मणों में से होने के कारण शरीर गौरांग है। मस्तक चौड़ा और ऊंचा, मस्तिष्क अतिशय और अद्भुत रूप से विकसित, नासिका महिलाओं के सदृश पतली और ठोडी संकल्प शक्ति की महान् गम्भीरता की परिचायक किन्तु फिर भी हठधर्मी से एकदम शून्य! उसकी मुस्कराहट का वर्णन आसान नहीं। एक उसका चौड़ा, दयापूर्ण और अत्यन्त कोमल मुख जब उन्मुक्त होकर चकाचौंध करने वाली स्वच्छ दंतपंक्ति—पूर्ण निर्मल दंतपंक्ति के ऊपर खुलता है तब मानो आसपास का सारा वायुमण्डल आलोकित हो उठता है। उस समय जो कोई उसके इस प्रभामण्डल के बीच में आ जाता है वह तुरन्त ही उसके विश्वास और सदिच्छा का भक्त बन जाता है।

"मेरा जीवन कैसे चलता है?" कल वे बतला रहे थे, "यह बहुत ही सीधी सादी बात है। मैं संघर्ष नहीं करता। मेरे हृदय में विश्वास है। मेरी आत्मा मनुष्यमात्र के प्रेम-सामंजस्य से एकस्वर हो रही है। यही कारण है कि सभी मनुष्य मुझ से प्रेम करने लगते हैं। जहां प्रेम होता

है, वहां कोई अभाव, कोई यातना नहीं रह जाती। मन और विश्वास की यह अवस्था मुझ में ऐसा प्रभाव उत्पन्न करती है कि विना मांगे ही मेरी आवश्यकतायें पूरी हो जाती हैं। यदि मैं भूखा होता हूं तो सदा कोई न कोई मुझे खिलाने को मिल जाता है। मुझे रुपया-पैसा अथवा और कोई चीज़ मांगने की आज्ञा नहीं है। फिर भी सभी कुछ मेरे पास है, नहीं, अधिकांश लोगों से तो अत्यधिक है। मैं अधिकतर एक ऐसे जगत् में रहता हूं, जहां वहुत कम व्यक्ति पहुंचते हैं।

निम्नलिखित '*ओरेगोनियन*' पत्र में प्रकाशित हुआ था—

स्वामी रामतीर्थ भारत के एक विख्यात प्रवक्ता और विद्वान् धर्माचार्य हैं। वे आगामी रविवार को अपराह्न में मारक्वन थियेटर में 'भारतवर्ष की वर्तमान दशा' पर भाषण देंगे। वे स्वयं अपने विषय में, अपनी योग्यताओं के विषय में, भारतवर्ष में अपने गौरवान्वित पद के बारे में वहुत ही कम कहते-सुनते हैं।

राम वारम्वार अपने जाति-प्रथा की रुढ़ि में फंसे हुए पददलित देशवासियों की चर्चा किया करते हैं। वे कहते हैं कि आजकल योरप और अमरीका के मिशनरी पादरी जिस प्रकार वहां प्रचार करते हैं, उससे कोई लाभ नहीं होता।

भारतवासियों को वास्तविक सहायता पहुंचाने के कुछ प्रभावोत्पादक उपाव हो सकते हैं, और श्रेष्ठ, उदार-हृदय, सच्चे अमेरीकनों को ऐसा ही करना चाहिए। किन्तु वे यह नहीं जानते कि हम अमेरिकन 'व्यक्तित्व' के पुजारी हैं, हम उनके विषय में भी वहुत सी बातें जानना चाहते हैं। और इस प्रकार की वहुत सी ज्ञातव्य वातें हमें उनके उन विश्वसनीय मित्रों से मालूम हो सकती हैं, जो यहां पोर्टलैण्ड के अल्पकालीन निवास में ही उन्होंने अपनी सादगी, सच्चाई और हार्दिक लगन से पैदा कर लिए हैं।

अनेक भाषाओं में पारंगत, अपनी जन्म-भूमि के प्रसिद्ध वैज्ञानिक,

राम कुछ वर्षों तक भारतवर्ष के पंजाब विश्वविद्यालय में प्राकृत-दर्शन के प्रोफेसर रहे हैं। यह काम उन्होंने छोड़ दिया और अपनी ऊंची जाति भी। तदनन्तर संन्यासी बनकर कुछ वर्षों तक निरन्तर धार्मिक और दार्शनिक अध्ययन में स्वतंत्र अनुसन्धान करते रहे। इस समय वेदान्त साहित्य के ज्ञान एवं मनन-निदिध्यासन में उनकी जोड़ का दूसरा कोई विद्वान् नहीं। दिसम्बर १६०२ में उन्होंने मथुरा (इण्डिया) के सर्वधर्म-सम्मेलन-परिषद् का सभापतित्व किया था। इस गौरवान्वित पद के कार्यभार को उन्होंने किस सुन्दरता से निभाया था, उसके बारे में लाहौर से प्रकाशित होने वाले 'फ्री थिंकर' ने इस प्रकार लिखा था—

स्वामी रामतीर्थ एम. ए. के विषय में, जो अन्तिम सम्मेलन के जीवन और प्राण थे—लेखक का शब्द-कोष दारिद्र्य का अनुभव करता है कि वह उपयुक्त शब्दों में उनका ठीक वर्णन कर सके। व्यास गद्दी पर आसीन होने के कारण प्रत्येक अधिवेशन के अन्त में उन्हें प्रतिदिन के कार्य-विवरण की आलोचना करने एवं स्वयं अपने विचारों को प्रकट करने के लिये काफी समय मिलता था। और जब वे बोलने खड़े होते थे तो सब को इस प्रकार आकर्षित कर लेते थे जैसे वे उनके अपने वक्ता हों—विचारशील और गंभीर, समयानुसार प्रसन्नवदन और कठोर—विभिन्न, विपरीत और विरोधी विचारधारा वाली सम्पूर्ण श्रोतृमंडली को घंटों ऐसे मंत्रमुग्ध किये रहते थे कि किसी को तन-बदन की सुधि न रहती थी। तब कुछ अधिक रात्रि बीत जाने पर वे हार्दिक प्रसन्नतासूचक ओम्-ओम् की सुमधुर ध्वनि के बीच घोषणा करते थे—आज का अधिवेशन समाप्त! यौवन के मध्यान्ह में वे एक शान्त, नम्र और भीतर-बाहर से एक, सहृदय नवयुवक हैं—प्राचीन और अर्वाचीन दर्शन शास्त्रों में पारंगत, विवेचनात्मक विज्ञानों से सुपरिचित और साथ ही साथ एक ऐसी ठोस धातु से बने हुए, जिससे सभी सच्चे हृदय के व्यक्ति निर्मित होने चाहिएं। नम्र, सुशील, बच्चों जैसे सरल, व्यवहार और चाल-ढाल में एकदम पवित्र होने

पर भी उनकी स्वर्गिम वेष-भूषा के भीतर कठोरतम संकल्पशक्ति विद्य-मान है जिसके बल पर वे दूसरों की भावनाओं के प्रति अत्यन्त सावधान होते हुए अपने विचारों को स्पष्टतम रूप से व्यक्त करने में ज़रा भी आना-कानी नहीं करते, यहांतक कि उस परमपिता के नाम पर नामधारी साम्प्रदायिक धर्माचार्य भी निर्भीकता और स्पष्टता में उनकी बराबरी नहीं कर पाते। हमें पूरी पूरी आशा है कि सत्य और सहानुभूति के इस पुजारी को न तो कभी ऐसा अवसर आयगा कि जिस जीवन को उन्होंने स्वेच्छा से ग्रहण किया है उसके लिये कोई सोच हो और न धर्ममहोत्सव के आन्दोलन को अपनाने से किसी प्रकार का दुख हो, जिसके लिये एक विद्वान् संन्यासी की दृष्टि से वस्तुतः वे सर्वाधिक उपयुक्त और प्रशंसा के पात्र हैं।

तेरहवाँ परिच्छेद

राम का पुनरागमन

स्वामी राम मथुरा और पुष्कर में।

संयुक्तराष्ट्र अमरीका से लौटने पर स्वामी राम मथुरा में एक वृद्ध स्वामी शिवगणाचार्य के साथ यमुना के दूसरे किनारे पर स्थित शांति-आश्रम नामांकित भवन में ठहरे। मैं अपने एक मित्र के साथ उनसे मिलने लाहौर से वहाँ पहुँचा। प्रातः काल आठ बजे का समय होगा। मैंने देखा, वे इतने दिन चढ़े अपने कमरे में भीतर से जंजीर लगाये हुए हैं। उनके विश्राम में व्याघात होने की आशंका होने पर भी मैंने दरवाजा खटखटाया। उन्होंने पूछा - कौन है? मैंने कहा—मैं, तुम्हारा पूरन! वे उठे और द्वार खोल दिया। मैं उनसे तीन वर्ष बाद मिल रहा था। शीत काल था। वे भगवा रंग का कम्बल ओढ़े हुए थे। वे मुझसे मिले, किंतु उसमें वह अपनापन न था। उन्होंने मुझे अपने पास बैठने की आज्ञा दी। किंतु ज्योंही उन्होंने कुछ बोलना चाहा त्यों ही उनके नेत्र प्रकाश से चमक उठे। उन्होंने कहा—त्याग और बलिदान से ही देश की स्वतंत्रता प्राप्त की जा सकती है। राम का सिर जायगा, फिर पूरन का, फिर देश के सैकड़ों नवयुवकों

का; तभी देश स्वतंत्र होगा। भारतवर्ष, भारतमाता को स्वतंत्र करना होगा। मैं आश्चर्य में डूब गया। यह वह बात न थी, जो उन्होंने हमें टोकियो में सुनाई थी, जहाँ मैं सर्वप्रथम उनसे मिला था। स्वतंत्रता के झूले में झूलनेवाली अनेक भूमियों के निरीक्षण ने, ऐसा मालूम होता था, उनके धार्मिक उत्साह और प्रचार को आच्छन्न कर लिया था। यहाँ जो भी बातें उन्होंने की, उनसे मैं यही समझा कि वे इन दिनों राजनैतिक आन्दोलन को ही सबसे अधिक महत्व दे रहे हैं। थोड़ी देर बाद जब हम लोग कमरे से बाहर निकले तो दो भद्र पुरुष पट्टू का कोट पहने, काली टोपी लगाये और लम्बे-लम्बे मफ़लर गले में डाले मथुरा की ओर से उस स्थल पर प्रकट हुए। स्पष्ट ही वे 'स्वामी जी के दर्शन करना चाहते थे। उनके प्रणामों के उत्तर में स्वामीजी दिल खोलकर हँस पड़े और उनकी वह खिलखिलाहट बड़ी देर तक चारों ओर गूँजती रही। बड़ी देर के बाद जब उनका हँसना समाप्त हुआ तो वे कहने लगे—मेरे प्यारे देशवासियो! तुम लोग छिप-छिपकर राम की जाँच करने आते हो, राम तुम्हारे सामने हृदय खोल कर रख देता है। संसार में सबसे बढ़िया काम है, राम के हृदय की थाह लेना। उसकी जाँच पड़ताल करो, उसका पता लगाओ और दुनियाँ तुम्हारे चरणों पर लोटेगी।

उस विशेष परिस्थिति में इन लोगों से मिलते समय राम के इस विचित्र ढंग ने मुझको और मेरे साथी को कुछ आश्चर्य में डाल दिया। वे तुरन्त उनके पैरों पर गिर पड़े और बोले—स्वामीजी! क्षमा कीजिये। हम लोगों को सरकारी आदेशवश आना पड़ता है। आपका मुख-मण्डल देखकर हम आपके गुलाम हो जाते हैं। आपके प्रेम के आगे हमारी नहीं चल सकती। हम लोग तो पापी हैं। और फिर उन्होंने स्वीकार किया कि वे सर

कार के खुफिया पुलिस-विभाग के कर्मचारी हैं जिनको यहाँ नियुक्त किया गया है।

स्वामी शिवगणाचार्य घंटों राम के साथ एकान्त में बातें किया करते थे और, जैसा स्वामीजी ने मुझे बताया, कि वे स्वामीजी को राजनीति से पृथक्, सर्वथा दूर रहने का परामर्श देते थे और कहते थे—भारतवर्ष के राजाओं से मिलिये, बहुत सा धन-संग्रह कीजिये और अपना एक सम्प्रदाय और संघ चलाइये, जिससे कुछ शक्ति बढ़े। ये इसी प्रकार की और बहुत सी बातें जो अवसरवादियों की दरिद्री, अंधी और पुराणपंथी बुद्धि के अनुसार ठीक जँचती थी, राम को सुझाया करते थे। स्वामी राम को इनसे घृणा होती थी किंतु उन्होंने कुछ दिनों तक इस साधु के साथ रहना स्वीकार कर लिया था। इसलिए नहीं कि स्वामी राम इस आदमी को पहचानते नहीं थे, वरन् इसलिए कि जब वे भारतवर्ष में उतरे तो एक बार पुनः उन्होंने अपनी सहज उदारता के वश इस साधु के स्वेच्छा से किये हुए पूर्ण आत्म-समर्पण को स्वीकार कर लिया था। ये उन्हें लेने के लिये बम्बई गये हुए थे। वहां इन्होंने एक एकान्त कमरे में अपना शेप जीवन स्वामी राम को सौंप दिया था। स्वामी राम ने अपनी सच्चाई के अनुसार इसको भी सच्चा समझा। पर यह शीघ्र ही प्रकट होगया कि इस खुर्राट को तो इस प्रकार अपना मन्तव्य सिद्ध करने की इच्छा थी। वह भारतवर्ष में अपना नाम विख्यात करने के उद्देश से स्वामी राम के पवित्र चरित्र का उपयोग भर करना चाहता था। स्वामी राम ने अन्त में इस मैत्री को सदा के लिये तोड़ दिया। वे मथुरा से चुपचाप पुष्कर चिनक गये और वहां से उन्होंने स्वामी शिवगणाचार्य को पत्र लिखा (जैसा अधोलिखित पत्र से ज्ञात होगा) कि वे तो स्वयं अपनी

ही योजना के अनुसार कार्य करेंगे। उन्हें राजाओं से, उनकी धन-सम्पत्ति अथवा सम्प्रदाय आदि की स्थापना से कोई सरोकार नहीं। उनके यहां इन बातों का कोई मूल्य नहीं!

मथुरा में रहते समय स्वामी जी को यमुना की स्वच्छ, शुभ्र रेणुका पर बैठना बड़ा अच्छा लगता था। वे धूप में बैठे बैठे कुछ भी न करते हुए धूप-स्नान किया करते थे। एक बार उन्हें मथुरा की दिशा से यमुना के इस पार आती हुई कुछ नावें दिखाई दीं—उनमें स्त्री और पुरुष भरे हुए थे। वे भारतीय ईसाई थे जो उद्यान-भोज के निमित्त बाहर निकले थे। स्वामी जी ने उन्हें देखा और कहा—पूरन जी, वे सब राम के हैं और राम भी उनका है। क्या तुम उनसे कुछ बातचीत करा सकते हो? राम उनसे बात करना चाहता है। वे उस समय प्रायः नंगे—एक भगवा रंग की धोती पहने बैठे थे। मैं उस आगन्तुक टोली की ओर आगे बढ़ा। वे आगये और खड़े होकर सुनने लगे। राम की बातें उन्हें बहुत पसन्द आयीं। राम बड़े प्रेम और आनन्द के साथ बातें कर रहे थे। इसी बातचीत के क्रम में उन्होंने कहा था—राम ईसाई धर्म को धन्यवाद देता है, जो उसने तुम्हें इतना ऊंचा उठाया। जो कुछ हिन्दू धर्म तुम्हारे लिये नहीं कर सका, उसे ईसाई धर्म ने कर दिखाया। सामाजिक दृष्टि से तुम्हारा उत्थान, तुम लोगों की आनन्द-भरी चितवन राम को बड़ी प्यारी लगती है। तुम राम के हो और राम तुम्हारा है। इसके अनन्तर उन्होंने अपनी अमरीकन यात्रा के कुछ क़िस्से सुनाये और उन्हें अपनी मातृभूमि को प्यार करने का उपदेश दिया।

* * *

पुष्कर में उनके शिष्य, स्वामी नारायण उनसे आ मिले और मैं भी लाहौर से दो-एक मित्रों के साथ वहां पहुँचा। वे उस समय

मगरों से लबालब भरे हुए सुप्रसिद्ध पुष्कर सरोवर के किनारे किशनगढ़ राजभवन में ठहरे थे। उनके हाथ में एक छोटा सा बांस का खोखला डंडा था और ज्योंही मैं उनसे मिला त्योंही उन्होंने कहा—और तुमने यह बांस का डंडा तो देखा नहीं। यह बड़ा विचित्र है, यह राम की जादू की छड़ी है, जिसे देखकर मगर भाग खड़े होते हैं। और यही है कागज-पेंसिल आदि रखने के लिये राम की झोली (ऐसा कहकर उन्होंने दिखाया कि उसकी पोल में सचमुच ऐसी ही चीजें बड़ी सावधानी से रखी हुई हैं) बस, यही राम का सब कुछ है। इसके सिवा अब राम को और किसी भौतिक वस्तु की चाह नहीं। और खिलखिला कर हंस पड़े। 'मनुष्य सचमुच राजाओं का राजा हो जाता है, जब उसकी यात्रा की गठरी इतनी छोटी हो जाती है जितनी कि इस बांस की पोल और जब इस पोल की छोटी सी जगह में उसकी सारी आवश्यकतायें समा जाती हैं। वे मकान की छत पर धूप में बैठा करते थे। अभी तक शीत काल चल रहा था। वे कहते थे—राम को कमरे के भीतर बैठना अच्छा नहीं लगता। कमरे तो उसे कब्रों के समान शून्य मालूम होते हैं। वे हम सबको लेकर सायंकाल के समय पुष्कर की पहाड़ियों पर चढ़ते और वहाँ इधर-उधर घूमते-घामते और बराबर घूमते ही रहते। वे किसी को विश्राम न करने देते थे। साथ ही साथ सबको हर समय ॐ ॐ के जप का आदेश देते थे। इस जाप में जरा-सा भी व्यतिक्रम उन्हें सह्य न होता था। एक बार वे पर्वत के शीर्ष में पत्थर की चट्टान पर बैठ गये और पुकार उठे—अरे, ये लोग क्यों ईश्वर को नहीं देख पाते ? उन्हें बुलाओ, ये राम के पास आयें, उन्हें ईश्वर के दर्शन कराये जायें। उनकी आंखें बन्द हो गयीं, टप-टप आँसू झरने लगे, मुखमण्डल चमक उठा और फैली हुई

बाहें वायु में इस प्रकार काँपने लगीं जैसे सारे विश्व को ही अपने अंक में भर लेना चाहती हों। ईश्वर, जगदीश्वर, भगवान् तो यहाँ है। जो भगवान् के दर्शन करना चाहें वे यहाँ आयें।' ऐसा कहकर वे चुप हो गये और ऊपर के ओंठ से नीचे ओंठ को दबा लिया उनकी मुख-मुद्रा ऐसी खिल उठी जैसे किसी बच्चे को पुनः उसकी माँ मिल गयी हो। फिर उनका मुख बच्चों जैसे विश्वास, बच्चों जैसे आत्म-समर्पण से खुलता और बातचीत के बीच ही में ऐसा मालूम होने लगता जैसे मौन बरबस उन्हें आह्वान कर रहा हो। निर्झर फूटा, लहरें उठीं और देखते ही देखते विलीन हो गईं।

वे मुझे अपने साथ पुष्कर-ताल में नहाने ले गये। 'राम तुम्हारे आगे रहेगा, तुम राम के पीछे खड़े होकर नहाना। देखो, हमें इन्हीं मगरों के साथ नहाना होगा।' हम लोग पानी में उतरे, वे छाती तक पानी में घुस गये। मैं कुछ-कुछ उनके लिये और पूरी तरह अपने लिये डर रहा था। मुझे तैरना नहीं आता था, फिर भी मैं पीछे-पीछे गया—जैसे उन मगरों के लिये सुस्वादु भोजन के दो कौर बढ़े जा रहे हों। किन्तु स्पष्ट ही उनके हृदय में डर न था, वे मगरों के स्वभाव को भली भाँति जानते थे। उन्होंने अपना बाँस का डंडा पानी में छोड़ दिया, वह उन्हीं के सामने उतराने लगा, मानो मगरों को आगे बढ़ने से रोकने के लिये उन्होंने जादू की छड़ी पानी में छोड़ दी हो और खूब नहाते रहे। फिर अपनी दो उँगलियों से अपने नथने दबाकर डुबकी लगायी। बाहर निकलते ही उन्होंने कहा—पूरन जी, देखो, मगर हमारी ओर लपक रहे हैं। चलो, बाहर चलें, वे नहीं चाहते कि हम उनके पानी में देर तक ठहरें। हम लोग जल्दी-जल्दी बाहर आये। स्वामी राम अपना बाँस का डंडा बराबर हाथ में

दबाये हुए थे। पत्थर पर उसे खटखटाते हुए उन्होंने कहा—यह बड़ा पक्का साथी है, राम की ख़ूब ही सेवा करता है। रात्रि में राम प्रायः मोमबत्ती अथवा मिट्टी के देशी दीपक से कवि 'नज़ीर' की कवितायें पढ़ा करते थे। वे इस कवि की स्वतंत्र-वृत्ति के बड़े प्रशंसक थे। कहा करते थे—नज़ीर राम का बालक है उन्मुक्त, बन्धनों से सर्वथा निर्द्वन्द्व। उसमें यत्र-तत्र कुछ भद्दापन है सही, किन्तु राम को उसकी परवाह नहीं। उसके मुख से जो स्वर निकले हैं उनसे ईश्वर की ध्वनि आती है।

पंजाब के जनश्रुति-साहित्य में वे गोपालसिंह की काफ़ियों के बड़े प्रेमी थे। आँखें बन्द करके वे प्रेम से उन काफ़ियों को गाया करते थे। उनके हृदय में वही भाव लहराने लगते जिनसे अभिभूत हो कवि ने उनकी रचना की थी। "राम स्यालकोट निवास में ही गोपालसिंह को जानता है। वह साधु हृदय वहां से पांव-पांव ही वृन्दावन तक गया था। वह आजीवन भगवद्-प्रेम के नशे में झूमता रहा।'

वे अपने सामने किसी को किसी के विरुद्ध कुछ कहने-सुनने की अनुमति नहीं देते थे। उनका कहना था—दूसरों की बुराई करना, किसी के बारे में दुच्चे, गंदे; व्यक्तिगत आलोचनात्मक विचार प्रकट करना श्रेयस्कर नहीं होता। हमें हर एक चीज़, हर एक मनुष्य का उज्ज्वल पहलू देखना चाहिए। जैसी हम अपनी आलोचना करते हैं उसी प्रकार सब की करें, यही उचित है।

किन्तु कभी कभी जब बहुत से आदमी इकट्ठे होते और भारतवर्ष और इसके नेताओं की चर्चा चलती तो अनायास ही उनके मुख से इधर-उधर के व्यक्तिगत आक्षेप होने लगते। वे झट से ॐ का उच्चारण करने लगते और कहते—सावधान; मन्दिर की घंटी बज रही है। कभी किसी व्यक्तिगत आक्षेप को पास न

फटकने देना। स्वयं ॐ ॐ कहते और हम लोगों से भी ॐ की ध्वनि कराते—'तुम सब क्यों सुस्त पड़ जाते हो? ॐ का जाप तो बराबर चलते रहना चाहिए।' बार बार वे यही आदेश दिया करते थे। इस सम्बन्ध में मुझे एक छोटी सी मनोरंजक घटना याद पड़ती है जो यहां दी जा सकती है।

मेरे साथ लाहौर टेकनिकल स्कूल का एक मद्रासी बालक वहां गया हुआ था। नाम था नायडू। मेरी समझ में, बड़े होने पर वह प्रयोगात्मक रसायन विद्या सीखने अमरीका भी गया था। उसने वहां अच्छी सफलता भी प्राप्त की थी। हां, तो इस नायडू से चौके के बाहर भोजन करते समय स्वामी जी कहते —नायडू, जरा दाल लाओ और नायडू झट से पहले उत्तर में कहता— ओम् और फिर दाल लेकर आजाता किन्तु फिर भी वह यह न कहता—स्वामी जी, दाल लीजिये, वरन कहता केवल—ओम्! इस प्रकार प्रत्येक अवसर पर उसका उच्चारण इतना तत्पर और इतना उत्साहपूर्ण हो गया था कि एक बार हम सब घंटों उसके ओम् पर हँसते रहे और वह हँसते हँसते लोट-पोट हो गया। हर एक चीज़ को ओम् कहना और हर एक प्रश्न का एक ही उत्तर देना—ओम्!

* * *

राम हम लोगों को पुष्कर की यज्ञभूमि में लिवा गये और बताया कि यह पुष्कर का तालाब क्यों पवित्र हो गया है। 'यहां किसी समय ब्रह्मा ने यज्ञ किया था, जिसका अनुष्ठान बड़े समारोह से सम्पन्न हुआ था। सभी देवता और मनुष्य एकत्र हुए थे किन्तु शंख नहीं बजा था। उस समय शंख-ध्वनि ईश्वर की आकाशवाणी मानी जाती थी, जिसके द्वारा यज्ञ की सफलता और असफलता का निर्णय होता था। जिस समय यहां सविधान इस यज्ञ का अनुष्ठान हो रहा था, उस समय पास ही के जंगलों

में एक घसियारे के एकान्त हृदय में भी सच्चा 'ब्रह्म यज्ञ' चल रहा था। वह यज्ञ में नहीं जा सकता—नीच जाति का जो था! किन्तु वह भगवान् के ध्यान में डूबा हुआ था; इतना अधिक डूबा हुआ था कि यदि कभी घास काटते समय संयोगवश हँसिये से उसकी उंगली कट जाती और घाव लग जाता तो उसके बदन से मनुष्य का लाल-लाल रक्त नहीं निकलता; निकलता वही घास की नसों का हरा हरा पानी। घाव लगने पर वह घसियारा भगवान् की मस्ती से पागल हो उठता और नाचने लगता। जब वह नाचता तो आस-पास के पेड़ और पर्वत भी उसके साथ नाच उठते। उसकी ऐसी दशा देखकर यज्ञ के होता आदि आये और इस पवित्र-हृदय व्यक्ति के चरणों पर गिर पड़े। उन्होंने प्रार्थना की कि चल कर हमारे यज्ञ को पवित्र कीजिये; आप की दया से ही यज्ञ का शंख बजेगा। और लो; जब यह पवित्रात्मा यज्ञ में आया तो शंख अपने आप बजने लगा। देवताओं को भी उसकी इस कृति पर बड़ा आश्चर्य हुआ।' यही सच्चा वेदान्त है, यह कह कर राम चुप हो गये। जब कभी राम ऐसी ही आत्म-साक्षात्कार सम्बन्धी कोई सुन्दर कथा सुनाते तो अन्त में कहते—'यही तो सच्चा वेदान्त है'!

* * *

मथुरा में स्वामी जी अपने भक्तों के झुण्ड को यमुना की रेती पर ले जाते और छोटे बड़े सभी से, यहां तक कि दाढ़ी वाले वृद्ध सज्जनों से भी कपड़े और जूते उतारने के लिये कहते और उनसे व्यायाम करवाते। एक भी व्यक्ति न छोड़ा जाता। कहते—शारीरिक व्यायाम सब के लिये परमावश्यक है। कूदते कूदते ही रुक जाते और आनन्द-विभोर होकर अनन्त रूपों में नाचना सा आरम्भ कर देते। और उनके भक्त उनके हृदय कमल को आनन्द की अनन्त पँखुड़ियों में खिलते देख देखकर मुग्ध हो जाते।

पुष्कर में साथियों की संख्या अधिक न थी। केवल आधे दर्जन—जो सत्संग के हेतु वहां इकट्ठे हुए थे—राम उनको घूमना, विना प्रयोजन के, केवल घूमने का आनन्द लेने के लिये घूमना सिखलाते थे।

* * *

इन दिनों स्वामी राम ने जितने व्याख्यान दिये उनमें देश-भक्ति, स्वदेश प्रेम की अत्यन्त तेज ज्वाला है। विशेषकर नवयुवकों को दिये हुए संदेश तो देश सेवा की लगन से पूर्णतः ओत-प्रोत हैं। उदाहरणार्थ आलोचना और विश्व-प्रेम, यज्ञ, राष्ट्रीय धर्म, ब्रह्मचर्य, देश-भक्ति आदि संदेश। वह प्रस्तावना, जो उन्होंने राय बैजनाथ की पुस्तक 'हिन्दू धर्म—नूतन और पुरातन' के लिये लिखी थी, इस दिशा में उनकी सर्वश्रेष्ठ कृति है। वहां वे हमें भारत-माता के एक सच्चे सुपुत्र के रूप में दिखायी देते हैं। किन्तु उनके पत्रों में हम उनके वास्तविक हृदय का दर्शन करते हैं।

उनके इन लिखित उपदेशों और संदेशों में हमें मनुष्य-जाति के उस सर्वोच्च आदर्श की रूप-रेखा की झलक स्पष्ट दिखायी देती है जिसे लेकर वे हिमालय के पर्वतों से पाश्चात्य देशों में प्रचारार्थ निकले थे किन्तु अपने इस संदेश को उन्होंने अलौकिक ज्ञानपूर्ण व्यक्तित्व की मुद्रा के साथ एक गंभीर और निजी तौर से संसार को सुनाया था। देखने में यही मालूम होता है कि वे अमरीका से पाश्चात्य राष्ट्रों द्वारा प्राप्त 'सफलता' से अत्यधिक प्रभावित होकर लौटे और चाहने लगे कि उनके विपन्न देशवासी भी उत्थान के पथ पर अग्रसर हों। यदि एक धर्म उन्हें एक सूत्र में नहीं बांध सकता तो अपने एक सामान्य देश का प्रेम ही उनमें जीवन फूंक दे। यद्यपि वह उनका अपना इच्छित विषय न था, फिर भी उनके संदेश ने, उनके आग्रह ने, उनकी अपूर्व अलौकिकता के संयोग

ने ज़ोरों से लोगों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया। स्वामी राम का यह स्वयं अपना विषय न था और इस दिशा में वे स्वामी विवेकानन्द के प्रभावशाली भाषणों से आगे नहीं बढ़ सके। स्वामी विवेकानन्द एक जन्मजात राष्ट्रनिर्माता थे और स्वामी राम थे एक आनन्द-विभोर महान् आत्मा, जिसे न कल का कोई ध्यान था और न मनुष्यों के कामों से कोई प्रयोजन। यदि न होती कहीं उनमें आत्म-चिन्तन की इतनी गहराई तो शायद् पाश्चात्य जगत् के संसर्ग से सामान्यतः स्वामी राम में कुछ शैथिल्य आ जाता। यह उसी आत्मनिष्ठा का निश्चित प्रभाव था कि अपने हृदय की वैचित्र्यपूर्ण कोमलता और हृदयस्थ परमात्मा की धड़कन को काट-काटकर उन्होंने देशभक्ति और राष्ट्र-निर्माण के साधारण बौद्धिक साधनों की छूछी भावनाओं को भी रस-रंजित और अलंकृत कर दिया। काश, वे अधिक दिन जीवित रहते! यदि उन्होंने आध्यात्मिक आनन्द के स्थान में इस दिशा की ओर अपने मस्तिष्क का विकास किया होता तो निस्संदेह वे एक महान् लौकिक राष्ट्र-निर्माता बन जाते, क्योंकि उनमें इस कार्य के लिये सभी योग्यतायें विद्यमान थीं। किन्तु जैसा उन्होंने चाहा, इस परिमित सहानुभूति के विचार को भी उन्होंने अपने हृदय से वैसे ही झाड़कर अलग कर दिया जैसे चिड़िया पंख फड़फड़ाकर वर्षा की बूंदों को दूर फेंक देती है। और राम के यहाँ तो निरन्तर भगवान् और भगवद्प्रेम की ज्वाला प्रज्ज्वलित रहती थी, जिसके बल पर उन्होंने पाश्चात्य देशों से भी इन भावनाओं को भगाने का प्रयत्न किया था। अब वे एकान्त पाकर उसी के लिये संस्कृत-साहित्य के अध्ययन में भी जुट पड़े।

उनकी चेतना के निर्मल दर्पण में कहीं किसी धब्बे की गुंजायश न थी। कोई उसे धूमिल न कर सकता था। जब निकेत

वैलमेन अमरीका-प्रस्थान करने से पहले व्यास आश्रम पर उनके दर्शन करने गयी, तो वे उससे मिलने आये। गंगाजी की तेज धारा को पार करने के लिये वे स्वयं टोकरी में बैठे और रस्सी द्वारा खींचे गये—यह इसलिए कि इस विचित्र और भयप्रद ढंग से गंगा को पार करना उन्होंने उस देवी के लिये ठीक न समझा। मिसेज़ वैलमेन ने अमरीका जाते समय, राम के निर्वाण से एक वर्ष पूर्व, मुझसे कहा था कि राम अब पर्वतों से नीचे मैदानों में न उतरेंगे। विदा होते समय राम अस्ताचलगामी सूर्य की ओर अभिमुख हुए थे, जो एक ओर बहती हुई गंगा की नीलवर्ण धारा में प्रतिबिम्बित हो रहा था और दूसरी ओर जिसने इस ब्रह्मज्योतिमय मुखमण्डल को अपने पूर्ण प्रकाश से जगमगा दिया था। राम बोले—सूर्यानन्द (स्वामी राम मिसेज़ वैलमैन को इसी नाम से पुकारते थे) विदा, जाओ! देखो, सूर्य डूब रहा है, यही तुम्हारा राम है। इस स्वर्णभूमि को कभी भूलना नहीं। चाहे जहाँ जाओ, इसे सदा अपने हृदय में अंकित रखना। उनकी वाणी के उतार और संकेत से मिसेज़ वैलमेन ने समझ लिया कि वे उससे अन्तिम, उससे क्या, संसार से अन्तिम नमस्कार कर रहे हैं। मिसेज़ वैलमेन का हृदय भर आया। उसने कहा—भारतवर्ष ने उन्हें खो दिया, स्वामी राम अब कभी पहाड़ों से नीचे उतरेंगे—इसकी अब कोई आशा नहीं रही। एक वर्ष के बाद उन्होंने मुझे भी प्रायः उन्हीं हृदय बेधनेवाले शब्दों के साथ विदा किया था। उस समय वे उत्तराखण्ड में निवास करते थे। उन्होंने कहा था—यह हेमकुण्ड है—स्वर्णभूमि! चाहे जहाँ जाओ, रहना यहीं पर—इस स्वर्णभूमि को सदा अपने हृदय में जमाये रखना।

जो पत्र उन्होंने विभिन्न व्यक्तियों के नाम पुष्कर से लिखे थे (उनमें से कुछ परिच्छेद १६ में दिये गये हैं) वे अधिकांश में

अपने निवासस्थान की छत पर शीतकालीन सूर्यताप में नहाते समय लिखे गये थे। इन पत्रों में हम आज भी उनके हृदय का प्रखर प्रकाश देख और सुन सकते हैं। इन दिनों उन्होंने जो गद्य और पद्य लिखा था उसे ध्यानपूर्वक पढ़ने से मुझे यही समझ पड़ता है कि उनकी सर्वोत्तम कविता इन्हीं और ऐसे ही छोटे-छोटे पत्रों में—जो समय-समय पर उन्होंने अपने मित्रों को लिखे थे - शायद उनकी छन्दोवद्ध कवितासे भी अधिक काव्यमयता इनमें विद्यमान है। और उनके इन पत्रों के बाद आते हैं उनकी उर्दू और फ़ारसी की शेरों और ग़ज़लों के संग्रह जिनमें साक्षात् स्वयं इस पुष्प-रसिक भ्रमर के महान् आत्मा की सुगंध है—एकदम मधुर और मनहरण !

चौदहवां परिच्छेद

गंगा के किनारे व्यास-आश्रम में स्वामी राम

मैदानों में जनता के सामने भाषण करते करते जब थक जाते, शक्ति का ह्रास सा होने लगता तो वे समाज से दूर पर्वतीय एकान्त में भाग जाते। वही उन्हें सर्वाधिक प्रिय था। वे जंगलों के बीच एकान्त वास के निमित्त उपयुक्त स्थान चुनने में बड़ा परिश्रम और प्रयास करते थे। एक बार उन्होंने ऋषिकेश से कुछ ऊपर बदरी-नारायण के मार्ग में गंगा के जंगल वाले तट पर जहां लोगों का आना-जाना बहुत ही कम होता है, अपने निवास के लिये एक पठार पर व्यास-आश्रम को पसन्द किया था। वहां लगातार एक वर्ष तक निवास करने से उनके दाढ़ी बढ़ गयी। वहां जो उनके दर्शन करने जाता, वे उससे कहते—देखो, राम के व्यास जैसी दाढ़ी निकली है। यहां उन्होंने नियमित रूप से संस्कृत व्याकरण और साहित्य का अध्ययन प्रारम्भ किया, शांकर भाष्य और वेद पढ़े। प्रयाग और काशी में वेदान्त विषय पर व्याख्यान देते समय कुछ स्थानीय पण्डितों ने ऐसे कटाक्ष किये थे कि स्वामी जी, आप संस्कृत के पण्डित नहीं, फिर आप कैसे वेदान्त दर्शन का समुचित प्रचार कर सकते हैं? स्वामी राम को यह बात लग गयी। हृदय

के भीतर का कवि तिलमिला उठा, जन्मजात विद्यार्थी ने उत्तर देने के लिये कमर कस ली। उन्होंने निश्चय किया कि चाहे जो हो, मैं कठिन से कठिन परिश्रम करके वेद का हर एक मंत्र पढ़ूंगा और समझूंगा, संस्कृत साहित्य का अध्ययन करके वेदान्त को प्राचीन परिपाटी के अनुसार सिद्ध कर दिखा दूंगा। वही उन्होंने किया भी। व्यास आश्रम के निवास के पश्चात् जो पण्डित उनसे मिले, उन्होंने उनमें आश्चर्यजनक परिवर्तन पाया। वे संस्कृत के पण्डित हो गये थे। उन्होंने प्राचीन प्रणाली के अनुसार वेदों के परम्परागत भाष्यों का अध्ययन किया, साथ ही पाश्चात्य जगत् की आलोचनात्मक एवं नूतन शोधात्मक पद्धतियों से उन पर नया प्रकाश भी डाला।

संस्कृत के अध्ययन से स्वामी राम के ज्ञान-भाण्डार की गरिमा बढ़ गयी। ऊपरी तौर से भले हो इसने उनकी पक्षियों जैसी सहज स्वच्छन्द एवं आह्लादात्मक वृत्ति को कुछ ठंडा किया हो, किन्तु अब उनकी गहराई इतनी गंभीर हो गयी थी कि उसकी कुछ थाह नहीं लगायी जा सकती थी। उनके इस अध्ययन के प्रारम्भ में मैंने साहस बटोर कर उन्हें यह पत्र लिखा था—जिन पण्डितों ने आपकी आलोचना की है वे तो पीछे की ओर देखने वाले मुर्दा हैं, उनमें जीवन कहां ? फिर क्यों आप उनकी विचारशून्य आलोचनाओं से ऐसे परेशान होते हैं और प्राचीन संस्कृत की व्याकरण के बासी और धूल-भरे वातावरण के चक्कर में फंसकर क्यों अपने स्वयं सिद्ध आनन्द को किरकिरा करते हैं ? इसका उन्होंने उत्तर दिया था—राम की क्रियाशक्ति आज भी वैसी ही अक्षय है, फिर क्यों न उसे संस्कृत के अध्ययन में लगाया जाय !

व्यास आश्रम के निवास के अनन्तर उनका अधिकांश समय संस्कृत शब्दों की व्युत्पत्ति और व्याकरण के नियमों में ही बीतता

था। वे वदिक मंत्रों के सौंदर्य के उपभोग में ही तल्लीन रहते थे। कभी कभी वेदों के उन उल्टे-सुल्टे ऊपरी अर्थों और भ्रमजन्य व्याख्याओं पर वे जी खोल कर हंसा करते थे जो वेदों के अकाट्य और अतर्क्य होने की अंध श्रद्धा के साथ उन दिनों भारतवर्ष के कुछ क्षेत्रों में फैलायी जा रही थीं। और जब वे यह देखते थे कि उसी श्रद्धा के बल पर वेदों में आधुनिक विज्ञान के सभी सिद्धान्तों को खोजने की व्यर्थ चेष्टा हो रही है तब तो उनकी हंसी रोके नहीं रुकती थी। उन्होंने कहा था—बेशक, हर एक व्यक्ति को हर एक चीज़ का अपने लिये अपने इच्छानुसार अर्थ लगाने का अधिकार है। जैसे राम हाफिज़ की हाला का अर्थ करता है भगवद्-प्रेम का उन्माद और इसी प्रकार उसे ग्रहण भी कर राम हाफिज़ की शराब का अपने ढंग से खूब मज़ा भी लेता है। किंतु उसे हाफ़िज़ के उस शब्द को यह अर्थ देने का तो कोई अधिकार नहीं हो सकता। इसी प्रकार वैदिक संस्कृत के प्राचीन परम्परागत अर्थों को लौटने-पौटने का किसी को क्या अधिकार! स्वामी राम वेदों के अध्ययन के लिये सायणाचार्य को एकमात्र पथ-प्रदर्शक मानते थे। वे पाश्चात्य विद्वानों की शैली के भी बड़े प्रशंसक थे और हिन्दू पण्डितों के प्रमादजन्य अज्ञान की निन्दा करते थे। उन्होंने वशिष्ठ आश्रम में मुझे से कहा था राम की इच्छा एक पुस्तक लिखने की है, जिसमें वेद के सभी सुन्दर मंत्रों का प्राचीन प्रणाली के अनुसार भी अर्थ हो और उन पर राम की अपनी व्याख्या भी। "एक दिन राम पाषाण की शिला पर बैठा हुआ था, आकाश मेघाच्छन्न था और रिमझिम रिमझिम बूंदें पड़ रही थीं। बड़ा सुहावना समय था। राम स्नान करके उठा ही था कि उसे ऐसा लगा कि वह एक स्त्री है जो अपने पति—ईश्वर की बाट में बैठी है। इस दिव्यभाव के आवेश से राम का सारा

हृदय हिल उठा, रक्त में सनसनी फैल गई, और हर एक नस और नाड़ी वीणा के तार की भांति झंकृत हो उठी। सारी प्रकृति शृंगार रस से ओत-प्रोत होने लगी। राम—स्त्रीरूप राम—चुपचाप आशा लगाये बैठा था कि कब उसका पति, ईश्वर आकर उसे अपने दर्शनों से निहाल कर दे। राम का हृदय मन ही मन प्रार्थना करने लगा—हे प्रभु, मेरे भगवन्! आओ, जल्दी आओ और मुझे सनाथ करो, मैं तुझे अपने गर्भ में धारण करना चाहती हूँ; अब तो ये प्राण तेरे हाथ में हैं।" जागते ही संकल्प हुआ कि राम वेद पढ़ेगा और पुस्तक खोली कि पुस्तक खोलते ही जो भी मंत्र किसी भी पृष्ठ पर सामने दिखायी देगा, उसी को पढ़ने लगेगा! देखता क्या है कि पुस्तक खोलते ही वही मंत्र सामने है जिसमें ठीक राम के हृदय की तात्कालिक अवस्था का दिग्दर्शन कराया गया है। अपने लिये वेदों के पढ़ने और उनकी व्याख्या करने का यही ढंग है और प्राचीन परम्परागत पद्धति के अनुसार उनकी व्याख्या करना विद्वानों का ढंग है। और इसी तरह विद्वानों को करना भी चाहिए परन्तु ज्यों ज्यों मनुष्य का मस्तिष्क और उसके विचार उन्नत होते जाते हैं त्यों त्यों इन प्राचीन परम्परागत अर्थों में से एक से एक नूतन सैकड़ों हजारों उत्तम व्याख्यायें अपने आप निकलती रहती हैं और सदा निकलती रहेंगी, ठीक ऐसे जैसे हम अपनी आंखों के सामने देख रहे हैं कि मूल बाइबिल जो पहले थी सो अब भी है किन्तु समयानुकूल विचारों के अनुसार उसकी सैकड़ों व्याख्यायें बराबर होती चली जाती हैं।

जीवन की इस वेला में स्वामी राम के हृदय में शंकराचार्य के उस दर्शन-शास्त्र ने जिसे मायावाद कहते हैं, पूरी तरह घर कर लिया था और उसका प्रत्यक्ष फल यह दिखायी देता था कि उनके

हृदय के उस जीते जागते सवाक् आह्लाद की जड़ें सूखती जाती थीं। जो भोजन वे फ़ारसी और अंग्रेजी साहित्य से खींचा करते थे, उसे छोड़ कर उन्होंने संस्कृत शब्दशास्त्र और व्याकरण को अपना भोज्य बना लिया था। संस्कृत शब्दशास्त्र और व्याकरण के अध्ययन के अनन्तर हुआ चाहे जो हो, एक बात प्रत्यक्ष थी कि वह आदेश, वह गुह्य प्रेरणा जो दूसरों को चुम्बक की भांति खींचती थी, उनके शरीर और हृदय से कुछ दूर होती जाती थी। सचमुच इस समय उनकी गहराई की थाह नहीं ली जा सकती थी। जो वहां तक नहीं पहुँचे, वे कुछ नहीं कह सकते। वैसे तो यह भी कहा जा सकता है कि मायावाद के सिद्धान्त ने उनके तन, मन और मस्तिष्क को इतना आयत्त कर लिया था कि फिर जलसमाधि के द्वारा प्राण छोड़ते अधिक देर नहीं लगी।

* * *

उन दिनों, व्यास आश्रम में, स्वामी जी लेख भी बहुत लिखा करते थे। उन्होंने एक डूप्लीकेटर (कई कापियां निकालने वाली मशीन) भी मंगाया था, जो मैं अपने साथ ले गया था। इस काल के उनके लेखों में भक्ति पर विशेष जोर दिया गया है। उसे उन्होंने 'अनन्त जीवन के नियम' के रूप में समझाया है। इन दिनों स्वामी नारायण को उन्होंने जो पत्र लिखे थे उनमें इस विषय की सुन्दर व्याख्या हुई है, जिसे उन्होंने अपने प्रवचनों में पहले जनता के सामने व्यक्त नहीं किया था।

वसून के आस-पास रहने वाले पहाड़ी आते और उन्हें दूध और फल दे जाते। मैंने उन लोगों से बातें की थीं। वे कहते थे—स्वामी जी आदमी नहीं, देवता हैं। वे उनकी दार्शनिक बातों का एक शब्द भी नहीं समझते थे किन्तु उन्होंने राम के लिये एक झोपड़ी बनाकर तैयार करदी थी और बराबर उनके लिये कुछ

न कुछ भोजन लाया करते थे। राम से बातें करते उन्हें बड़ी प्रसन्नता होती, उनके चेहरे खिल उठते। वे उनके सच्चे साथी, प्रेमी बन गये थे।

पर रामकी स्वाभाविक प्रफुल्लता, हँसी और उत्साह का इतना अधिक अभाव मुझे खटकता था। मैंने साहस कर उनसे पूछा—स्वामी जी, आपमें इतना परिवर्तन कैसे हुआ; मुझे आप एकदम उदास मालूम होते हैं।

"पूरनजी! लोगों को केवल मेरे फूलों से मतलब है। मुझे तभी सूंघना चाहते हैं जब मैं फूलों के रूप में खिलता हूँ। किन्तु उन्हें इस बात का पता नहीं, कि मुझे पृथ्वी के भीतर, अंधेरी गुफाओं में, अपनी जड़ों को पुष्ट करने में कितना घोर परिश्रम करना पड़ता है; जिसमें फूल और फल बराबर खिलते रहें। इस समय मैं अपनी जड़ों में हूँ। मौन एक महान् कार्य है, संसार को अपने विचार प्रदान करने से, उसके सामने उपदेशों की फुलझड़ियाँ छुड़ाने से यह महत्तर कार्य है। गौड़पाद और गोविन्दाचार्य की मौन तपस्या का ही यह सुफल था कि शंकराचार्य को ऐसी देदीप्यमान सफलतायें मिलीं। उनके मौन के बिना यह कैसे संभव होता?"

हिन्दू जीवन का जो आदर्श है, वेदान्त-दर्शन के अनुसार जो आत्म-निष्ठ का स्वरूप है, वे उसके समीप पहुँच गये थे। कई दिन तक लगातार पद्मासन लगाये बैठे रहते, न शरीर का ध्यान और न शीत-उष्ण आदि द्वन्द्वों की परवाह! कह उठते—कहाँ कौन है कि संसार है! जो न कभी हुआ, न है और न कभी होगा! जब हम लोग पास पहुंच जाते तो वे कहते—तुम लोग आ आकर राम को यह भुलावा देना चाहते हो कि तुम भी सच्चे हो किन्तु राम अब नहीं भूल सकता। जितने भी सम्बन्ध हैं वे प्रभु को, अपने अन्तर की सच्ची आत्मा के विस्मरण के बहाने बन जाते हैं। न

स्पष्ट था कि ज्यों ज्यों उनका दार्शनिक अध्ययन गम्भीर होता जाता था त्यों त्यों वे बाहर से उदासीन होते जाते थे। वे बार बार, क्षण क्षण में एक सच्चे भक्त की भांति मन को आत्मा में लीन करते थे। उस समय उनके हृदय में प्रेम की प्रधानता थी। वे आत्मा को प्रेम के रूप में ही देखते-सुनते और प्रेम-रूप आत्मा में ही रहना-सहना और श्वास लेना चाहते थे।

* * *

एक दिन बात है, हम लोग देवदार वृक्षों की छाया में घूम रहे थे। राम मुझसे बोले—तुमने विवाह करके अच्छा किया है। गृहस्थ जीवन में स्थायित्व है। तुम्हारी पत्नी को आत्म-साक्षात्कार में तुम्हारा सहायक बनना चाहिए। आओ, दोनों दुनिया को छोड़ दो और आकर यहां इन पहाड़ियों की चोटी पर निवास करो। जैसे राम इस पहाड़ी पर रहता है, उसी तरह तुम लोग भी यहां से कुछ दूर दूसरी पहाड़ी पर रह सकते हो।

मुझे यह याद नहीं कि फिर कैसे हरिद्वार में उनकी पत्नी और बच्चे के आने की बात चल पड़ी। वे मुझसे कहने लगे—ब्रह्मानंद की माँ का चेहरा कैसा दिव्य था! उस दिन तो वह ज्योतिर्मयी मालूम होती थी, तुमने इस पर ध्यान दिया था क्या?

"तुम्हें याद होगा, राम ने तुमसे हरिद्वार में कहा था कि राम के घर वालों को वापस लौटा दो और तुम इतने क्रुद्ध हो गये थे। राम के भी हृदय है किंतु उस समय राम ने उस भेष के नियमों को मानना ही ठीक समझा, जिसे उसने स्वेच्छा से धारण किया है। उन लोगों से मिलना अस्वीकार करना केवल नियम की बात थी। मनुष्य तब तक अपने व्यक्तिगत संबंधों को कैसे भूल सकता है जब तक उसके वक्षस्थल में हृदय की धड़कन विद्यमान है, फिर वह तड़प चाहे राम के लिये हो, चाहे मनुष्य के लिये।

कवियों को जड़ पत्थरों के रूप में कैसे बदला जा सकता है ? आध्यात्मिक विकास का यह अर्थ नहीं कि हम भावना-शून्य हो जायँ। कवि 'कोट्स' बेचारा केवल कटु शब्दों से मारा गया। उत्थान जितना ऊँचा होता है भावना भी उतनी ही प्रबल और सतेज हो जाती है।"

राम कहते गये—पूरनजी ! राम को यह मालूम न था कि अब इस देश में यह भगवा वस्त्र स्वतंत्रता का बाना नहीं रह गया है। गुलामों ने यह भेष लेना प्रारम्भ कर दिया है और उन्होंने इसे नियमों से इतना अधिक जकड़ दिया है, उसे ऐसा दिखाऊ बना दिया है कि अब राम को उससे बेचैनी मालूम होने लगी है। अब की बार जब राम नीचे मैदानों में जायगा तो जनता के सामने भरी सभा में इस वेष के टुकड़े-टुकड़े कर डालेगा। राम घोषणा करेगा कि अब संन्यासी के रक्तवर्ण वेष द्वारा स्वतंत्रता की साधना नहीं की जा सकती, क्योंकि वह परतंत्रता का द्योतक बन गया है।

और वशिष्ठ आश्रम में जब उन्होंने यह रंग उतार दिया तो उसमें आश्चर्य की कोई बात न रह गई। वे भूरे पट्टू का अँगरखा और काले धूमिल वर्ण का रंगीन साफा बांधे थे। संन्यासी का लम्बा चोड़ा झांगा उतार कर उन्होंने कुरता और पायजामा पहनना प्रारम्भ कर दिया था।

"देखो अब तो राम भारी इमामा (मुस्लिम साफा) बांधे हुए मौलवी जैसा मालूम होता है न ?" वे मुझसे पूछने लगे।

पन्द्रहवाँ परिच्छेद

अन्तिम दिन : वशिष्ठ आश्रम में

(उत्तरखण्ड, हिमालय)

वे अब बहुत बदल गये थे, उनका आह्लाद कम हो रहा था! क्षण-क्षण पर फूट पड़ने वाला प्रफुल्लता का प्रवाह नीचे गहराई में पैठ गया था। चलते समय वे जब कभी फिसलते और गिर पड़ते तो झट उनके मुंह से निकलता—ओ, देखा, राम ने अपने प्रियतम को भुला दिया है, तभी तो गिरा है, नहीं तो गिरना कैसा! पहले हम भीतर गिरते हैं और फिर बाहर। बाह्य पतन तो केवल परिणाम है। तुम सदैव भीतर का ध्यान रखो। श्वास-श्वास पर प्रियतम की याद करो। इसके बिना एक भी क्षण व्यतीत न हो। संध्या समय वे अपने आप गाने लगते, ताली बजाते और नाचते। वे एक पक्के वैष्णव जैसे हो गये थे। इन्हें देखकर हमें कुछ कुछ चैतन्य महा प्रभु के हरिकीर्तन का स्मरण हो आता था। उनका हृदय भक्तिरस से सराबोर हो रहा था। इन्हीं दिनों उन्होंने स्वर्गीय जज लाला बैजनाथजी की प्रार्थना विषयक हिन्दी पुस्तक के लिये भूमिका लिखी थी। यह छोटा सा

परमहंस स्वामी रामतीर्थ

लेख स्वामी जी की तत्कालीन मानसिक दशा का यथार्थ चित्रण करता है, जब कि वे वशिष्ठ आश्रम में निवास करते थे।

एक दिन नहाते समय उन्होंने कहा—यदि वेदान्त का पूर्ण साक्षात् कर लिया जाय तो यह भौतिक शरीर भी अनादि बनाया जा सकता है। मैं उनकी बात न समझ सका। मैं समझता हूं कि जो यह बात उन्होंने कही थी शायद उसका पूरा समन्वय अभी उनकी कल्पना में विकसित हो रहा था।

स्वामी राम बड़े पढ़ने वाले थे। मैं उनके लिये कुछ पुस्तकें ले गया था। वे अधिकांश अपने झोंपड़े में बैठे या लेटे रहते। मैं उन पुस्तकों की ओर ध्यान दिलाने की चेष्टा करता। कभी कभी उनमें से एकाध उठाकर उनके हाथों पर रख देता किन्तु मैंने देखा कि अब उनसे कुछ भी नहीं पढ़ा जाता। थोड़ी ही देर में पुस्तक उनके हाथों से गिर पड़ती थी, आँखों से अपने आप आँसू बहने लगते और कुछ प्यार भरे निरपेक्ष शब्द उनके मुंह से निकलते—राम से अब पढ़ना नहीं हो सकता। आत्यन्तिक थकावट और गंभीर आत्मनिष्ठा की बाह्य दशा बिल्कुल पहली दिखाई देती है।

उनके शिष्य स्वामी नारायण का कहना था कि यह सब शथिल्य सा उनके अपचन के कारण है। वे बहुत दिनों से अनुचित भोजन-पान कर रहे हैं। राम के प्रति अपनी अनन्य भक्ति होने के कारण वे कभी कभी उन से उलझ पड़ते थे और वाद-विवाद करने लगते थे कि स्वामी जी ठीक राह पर आ जावें।

वास्तव में उन दिनों स्वामी नारायण को राम की उस शांति से बड़ी बेचनी हो रही थी। एक दिन हम सब ने निश्चय किया कि पावली कान्ता में होकर 'बुद्ध केदार' की हिमशिला को भी देखने चलेंगे। स्वामी जी भी तैयार हो गये। यहाँ। आनन्द

हुआ। हम लोग वसून की चोटी पर चढ़ गये और हिमरेखा के ऊपर विस्तृत हरे-भरे मैदान में पहुँचते पहुँचते हम लोगों को संध्या हो गयी। सामने एक गड़रिये की झोपड़ी थी। गड़रिये ने बड़ी अभद्रता दिखायी। वह हम लोगों को ठहराने के लिये किसी प्रकार तैयार न होता था। मैंने प्रार्थना की। स्वामी नारायण ने भी बहुत समझाया। पर सब व्यर्थ! तब जब स्वामी राम सीधे आगे बढ़े और उनके पीछे पीछे हम सब हुए तो गड़रिया बड़ी प्रसन्नता से हमारा स्वागत करने लगा। हम लोग रात्रि भर गड़रिये के चटाइयों के तम्बू में बड़े आराम से रहे। प्रातः स्वामी राम बाहर निकले और मुझे हिमालय की हिमशिलाओं के श्रेष्ठ और सुन्दरतम दृश्य दिखलाने लगे जो बदरीनारायण से यमुनोत्री तक फैले हुए थे। प्रातः कालीन सूर्य के स्वर्णिम प्रकाश में उनकी शोभा देखते ही बनती थी। उसी समय मुझे मालूम हुआ कि वे और आगे जाने के लिये तैयार नहीं है, क्योंकि उनका कहना था कि इस घूमने से—निरुद्देश घूमने से लाभ! "यदि हम अपने प्रियतम को ही भूल जायं तो पहाड़ियों पर विचरण करने से क्या लाभ हो सकता है? घर पर पड़े रहना सौ बार धन्य है यदि वह प्रियतम सदा हमारे साथ विद्यमान रहे!" मानो उनकी इस इच्छा की पूर्ति करने के लिये मैंने उन्हें अपनी घायल ऐड़ियाँ दिखायीं और आगे चलने में अपनी असमर्थता प्रकट की। उन्होंने नारायण स्वामी को बुलाया और कहा—पूरन जी आगे नहीं जा सकते, उन्हें इतनी दूर दूर तक घूमने का अभ्यास नहीं, इसलिए हमें आश्रम में वापस लौट चलना चाहिए। स्वामी नारायण मेरी ओर अभिमुख होकर बोले—सचमुच आप जैसों के साथ में चलना बुद्धिमानी नहीं हुई, आप पैरों के इतने कच्चे हैं। स्वामी जी! आप तो स्वयं नहीं चलना चाहते और

पूरन जी का बहाना करते हैं। मुझे विश्वास है, यदि आप चलेंगे तो वे अस्वीकार नहीं करेंगे।

स्वामी नारायण की बात काफ़ी कठोर थी किन्तु स्वामी राम ने केवल इतना कहा—नहीं, नारायण जी! हम लोगों को लौट ही जाना चाहिए। सो हम सब लौट पड़े।

अनेक अवसरों पर स्वामी नारायण इसी प्रकार के कठोर वाद-विवादों में उलझ जाते थे। स्वामी राम उन्हें सदा यही याद दिलाते—कृपया वाद-विवाद बन्द कीजिए! उन्होंने आज्ञा दे रखी थी कि हम लोग अपनी बातचीत के बीच में कभी किसी व्यक्ति विशेष की चर्चा न करें, चाहे हमारे हृदय में उसके विरुद्ध किसी प्रकार की कटु आलोचना का विचार ही क्यों न हो। पर हम सब बार बार ऐसी ग़लतियां कर बैठते थे और राम रोकते रहते थे।

एक बार स्वामी नारायण बड़ी निर्दयता से किसी व्यक्ति की काट-छांट कर रहे थे, स्वामी राम ने उन्हें आश्रम के आदेशों की याद दिलायी। "नहीं, स्वामी जी, मैं उसकी आलोचना नहीं करता, केवल उसकी मानसिक दशा का मनोवैज्ञानिक अध्ययन कर रहा था।" इस पर बड़ी देर तक हंसी का फ़व्वारा छूटता रहा।

इन दिनों स्वामी राम को स्वयं अपनी आलोचना अच्छी न लगती थी और नारायण स्वामी कोई वाद-विवाद न चला सकें, इसलिए उन्होंने पहले ही से उन्हें अलग रहने का आदेश दिया था।

यहां पर उन्हें एक दिन एक पत्र मिला। लिखा था—अंग्रेज़ पुलिस आपके पीछे पड़ी है, वह आप को एक बड़ा विद्रोही राष्ट्रीय नेता मानती है, जो भारत में वृटिश शासन के तख्ते को उलट देना चाहता है। वे बोले—उनसे कह दो, राम अपनी रक्षा में एक शब्द भी नहीं कहना चाहता। वे इस शरीर के साथ चाहे

जैसा व्यवहार कर सकते हैं। मैं जो कुछ हूँ, उससे अन्यथा नहीं हो सकता। एक भारतीय होने के नाते मैं सदा अपने देश की स्वतन्त्रता चाहता हूँ। स्वतन्त्र तो वह एक दिन होगा ही किन्तु यह राम देश को स्वतंत्रता प्राप्त करेगा या दूसरे हजारों राम उसे प्राप्त करेंगे—कोई नहीं कह सकता!

जिस दिन मैं वशिष्ठ आश्रम से चलने वाला था, उस दिन उन्होंने कहा—मुझे नहला दो। मैंने उनका कमण्डल और तौलिया उठायी और निर्झर की ओर उनके पीछे पीछे चल दिया। वे स्वयं कोई काम नहीं करना चाहते थे। मैंने उनके वस्त्र उतारकर उनका बदन उघाड़ा। वे जाकर निर्झर में खड़े हो गये। मैंने अपने हाथों उन्हें नहलाया। प्रातः काल से ही आकाश मेघाच्छन्न था। जब हम लोग कुटिया पर वापस पहुँचे तो मेरे चलने का समय हो चुका था। "पूरन जी! चाहे जहां जाओ, रहो सदा इसी स्वर्णभूमि में—अपने अन्तर के प्रकाश में। और उस कार्य को आगे बढ़ाते रहना, जो राम ने प्रारम्भ किया है, क्योंकि राम अब मौन हो जायगा।"

"स्वामी जी, जब मैं आऊंगा, तो आपको गुदगुदाऊँगा और आप हंसेंगे और बोलेंगे। मैं आपकी मौन-प्रतिज्ञा भंग कर दूंगा।" मैंने उत्तर में कहा।

उनके नेत्र लाल हो उठे। उन्होंने अत्यन्त गंभीर होकर कहा—मौनी को कौन फिर से बुलवा सकता है? मैं डर के मारे आगे एक शब्द भी न बोल सका।

चलने का समय हुआ, वे कुछ दूर तक मुझे छोड़ने आये। नारायण स्वामी भी, जिनसे राम ने कहा था, और एक दूसरे मित्र पहाड़ी के नीचे बहुत दूर तक मेरे साथ आये। वे जैसे बैठे थे, वैसे ही चल खड़े हुए—नंगे बदन, कमर में केवल गमछा बांधे

जैसे कि वे निर्झर से नहाकर लौटे थे। बाहर मन्द मन्द फुहार पड़ रही थी और मेरी आँखों से आँसुओं की झड़ी लगी थी। ज्योंही मैंने अन्तिम नमस्कार के लिये सिर झुकाया त्योंही वे यकायक बड़ी तेजी से पीठ फेर पहाड़ी की ओर दौड़ने लगे। पीछे मुड़कर फिर देखा भी नहीं, मानो मेरे साथ अपने सभी व्यक्तिगत सम्बन्धों को एक ही झटके में तोड़ दिया। वह तेजी उनकी अपनी थी, मैंने अन्यत्र कहीं वैसी देखी नहीं।

नारायण स्वामी ने मुझे बताया कि जब एक मास के बाद राम नीचे उतर कर टेहरी (गढ़वाल) आये और टेहरी-नरेश के अतिथि बनकर उनके सिमलसू वाले चन्द्र-भवन में रहने लगे तब उन्होंने नारायण को आज्ञा दी कि वे जायें और गंगा किनारे अपनी ही देख-रेख में अपने लिये एक झोपड़ी बनवाये। उस समय वे भवन से बहुत दूर तक स्वामी नारायण को छोड़ने आये और उन्हें ठीक वही संदेश दिया, जो ठीक एक मास पूर्व उन्होंने मुझे दिया था।

स्वामी नारायण फिर उनके दर्शन न कर सके और न मैं। ये दोनों विदाइयां उनकी समीपवर्तिनी मृत्यु की झलक थीं।

सिमलसू में निवास करते समय वे सामयिक पत्रों के लिये लेख लिखा करते थे। अन्तिम लेख जो उनकी लेखनी से निकला, वह है—मनुष्यों और राष्ट्रों की 'तरक्क़ी का तसल्लुक़' अर्थात् 'उन्नति का निश्चित विधान'। उसका अन्तिम अंश कुछ स्याही, कुछ पेन्सिल दोनों से लिखा गया था। हिन्दुओं के पवित्र त्योहार, दीपावली का दिन था। भिलंगना गंगा निचाई में बहती है, उसके ऊंचे उभरे हुए तट पर स्थित है यह सिमलसू भवन। सदा की भांति वे नीचे जाकर पहले व्यायाम करते और फिर गंगा में स्नान करते थे। पर एक दिन उसे तैर कर पार करने और

एक ऊंची चट्टान से धारा में कूदने से उनके घुटने में चोट आ गयी। इसलिए उक्त नियति-निर्धारित दीपावली के कुछ दिन पूर्व से वे गंगाजल ऊपर मंगाकर स्नान किया करते थे। दीपावली के दिन उन्होंने पुनः गंगाजी में स्नान का संकल्प किया। अन्तिम संदर्भ पूरा हो चुका था। उसे एक किनारे रख दिया और नीचे उतरे। बस, फिर वे ऊपर नहीं आये। गंगा जी में छाती-छाती जल में खड़े हुए थे और जैसी उनकी टेंव थी, उँगलियों से दोनों नथने बन्द करके उन्होंने जल के भीतर डुबकी लगायी। ऐसा मालूम होता है, वहां उनका पैर फिसल गया। दुर्बल और क्षीण-शक्ति तो थे ही, क्योंकि महीनों से पेय पदार्थों के अतिरिक्त कोई ठोस भोजन करते ही न थे और साथ ही घुटने में भी पीड़ा थी, वे तैर न सके और न अपने आप को संभाल ही सके। इसके अतिरिक्त वे वहाँ पानी की सितह के नीचे भँवर में फंस गये। बड़ी देर बाद वे पानी के ऊपर दिखायी दिये—ऐसा मालूम हुआ, जैसे निकलने की चेष्टा कर रहे हों किन्तु वह शीघ्र ही समाप्त हो गयी। ज्योंही वे चेष्टा कर के भँवर से निकलकर पानी के ऊपर आये त्योंही उनका शरीर गंगा की तेज धारा में ऐसे बहने लगा, जैसे निष्प्राण हो गया हो।

अन्तिम संदर्भ जो उनकी लेखनी से निकला, इस प्रकार है—

ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र, गंगा, भारत !

ओ मौत ! बेशक उड़ा दे इस एक जिस्म (शरीर) को; मेरे और शरीर ही मुझे कुछ कम नहीं। सिर्फ चांद की किरणें, चांदी की तारें पहन कर चैन से काट सकता हूँ। पहाड़ी नदी-नालों के भेस में गीत गाता फिरूंगा, बहरे-मव्वाज (आनन्द के महासागर) के लिबास में लहराता फिरूंगा। मैं ही बादे-खुश-खराम (मनोहर वायु) और नसीमे-मस्ताना गाम (प्रातः कालीन समीर की मस्ती) हूँ। मेरी यह

सूरते-हैजानी (मनमौजी मूर्ति) हर वक्त रवानी (हलचल) में रहती है। इस रूप में पहाड़ों से उतरा; मुरझाते पौधों को ताज़ा किया; गुलों (फूलों) को हंसाया, बुलबुल को रुलाया, दरवाजों को खटखटाया, सोतों को जगाया, किसी का आंसू पोंछा, किसी का घूंघट उठाया। इसको छेड़, उसको छेड़, तुमको छेड़। वह गया ! वह गया !! वह गया !!! न कुछ साथ रक्खा, न किसी के हाथ आया !

मैंने उस समय सोचा था कि इस संदर्भ के द्वारा राम ने हमें अपनी ही मृत्यु की पूर्व सूचना दी है। किन्तु कुछ कहा नहीं जा सकता। वे इसी शैली के लेख लिखा करते थे। हां, यह ध्यान देने की बात है कि उन्हें मृत्यु की याद आयी, उन्होंने उसके बारे में सोचा और वह आ गयी ! संभव है कि महासमाधि के विचारों ने ही, जो इधर कुछ दिनों से उन पर छाये रहते थे और जिन्हें हम लोग उनके मन और मस्तिष्क की उदासी और थकावट समझते थे, उनमें उस आत्यन्तिक वैराग्य का भाव पैदा किया हो, जिसे उस समय न मैं और कोई दूसरा ही खोलकर सांगोपांग देख सकता था। उससे उन्हें लौटाने की बात तो बहुत दूर थी।

सोलहवां परिच्छेद

स्वामी राम के पत्रों का संक्षिप्त संग्रह

स्वामी राम पत्र-व्यवहार में बड़े नियमित न थे। लिखते थे, पर बहुत ही कम। उनके पत्र-व्यवहार का क्षेत्र भी सीमित था। अपने परिचितों या मित्रों में से केवल उन घनिष्टतम व्यक्तियों को ही, आध्यात्मिक संबंध के कारण जिनके प्रेम और सहानुभूति से वे आकर्षित हुये थे, केवल उन्हीं को वे यदा-कदा अपने संदेश भेज दिया करते थे। उन्हीं में से कुछ पत्र, जिनमें से अधिकांश मिसेज वैलमेन द्वारा प्राप्त हुये हैं, आगे सविस्तार उद्धृत किये जाते हैं।

पत्र साहित्यिक आत्मचरित्र के अंग माने जाते हैं और साधारणतः इसी लिए जीवन चरित्रों में स्थान पाते हैं कि उनमें नायक की आत्मचरित्र विषयक सूचनाओं की कुछ न कुछ झलक अवश्य विद्यमान रहती है। किन्तु स्वामी राम के पत्रों में और चाहे जो हो, यही आत्म-चरित्र विषयक तत्व ऐसा है जिसका उनमें नाम-निशान भी नहीं। उनमें कोई ऐसी बात नहीं, जो कुछ गुप्त, कुछ प्रकट होती हुई पत्र की शोभा बढ़ाती है, जिनके द्वारा हमें लेखक के अनुराग और विराग, इच्छाओं और अनिच्छाओं,

स्वभावों और भावनाओं का पता चलता है, हमें साग-भाजी से लेकर राजाओं तक के विषय में लेखक के विचार ज्ञात होते हैं। स्वामी राम ने जो कुछ लिखा और जो कुछ हमें सिखाया, उसमें व्यक्तिगत प्रवृत्ति नहीं के बराबर है। अतः यदि उनके पत्रों में भी इन व्यक्तिगत संपर्कों और संबन्धों का पूर्ण अभाव सा है तो इसमें आश्चर्य ही क्या!

स्वामी राम के हर एक पत्र में, उनके सब पत्रों में एक प्रधान विशेषता है। वे किसी न किसी रूप में हमें उस संदेश की झलक दिखाते हैं, जिसे संसार को सुनाने के लिये उनका हृदय सदैव उद्वलित रहता था। हर एक पत्र हमें डंके की चोट सुनाता है—"तुच्छ स्वार्थ, क्षुद्र अहम् की केंचुली उतार फेंको और वेदान्त के धरातल पर निजात्मा, परमात्मा में निवास करो।" स्वयं राम का जीवन इस आदर्श का पूर्ण प्रयोगात्मक उदाहरण था। उनके प्रत्येक पत्र में हमें इसी आदर्श की झलक मिलती है। 'इमरसन' लिखता है—सच्ची शक्ति वाले मनुष्य सदैव एक ही विचार के प्राणी होते हैं। वे अपने जीवन की सम्पूर्ण शक्ति एक ही दिशा में लगाते हैं। उसका यह कथन स्वामी राम के उदाहरण में अक्षरशः सत्य बैठता है। वे एक विचार के आदमी थे, उनके व्यक्तित्व में कुछ इधर का, कुछ उधर का जोड़-तोड़ न था। उनकी जीवन-शक्ति मात्र एक ही प्रबल धारा में बह रही थी। उसमें इधर-उधर, गुप्त-प्रकट और अन्य उपधाराओं का विक्षेप न था। हर एक बात जो उन्होंने कही, हर एक चीज़ जो उन्होंने लिखी, हर एक काम जो उन्होंने किया, उन सब में एक ही, केवल एक ही आत्म-ज्ञान का संदेश गूंज रहा है; जिसे प्रदान करने के हेतु संसार में उनका जन्म हुआ था।

इन पत्रों के विषय में, अन्त में एक बात यह भी कही जा

सकती है कि उनमें अपना एक साहित्यिक आकर्षण भी है। राम का अध्ययन विशाल था, उनकी संस्कृति महान थी—जितनी ही व्यापक, उतनी ही संवेदनशील। इसी लिए उनके पत्र-साहित्य में एक निराला स्वाद है। जो साहित्यिक सौंदर्य और सुषमा हमें उनके पत्रों में देखने को मिलती है, वह परिश्रम और अध्यवसाय द्वारा अर्जित नहीं, वरन् वह तो उनके श्रेष्ठ, शोध और विचारपूर्ण व्यक्तित्व का सहज और स्वाभाविक उभार जैसा है। इस साहित्य सुषमा के साथ साथ इन पत्रों की शैली में एक ऐसा सीधा चुटीलापन है जो विचारों की गम्भीरता और पूर्णता के एक ही साथ फूट पड़ने से उत्पन्न होता है। इन पत्रों में भावनाओं और विचारों का प्रवाह इतना तेज है, उदाहरणों और तर्कों का संग्रह इतना अधिक है कि लेख को कांट-छांट कर प्रांजल बनाने का अवकाश कहां! और यह एक प्रकार से और भी सुन्दर हुआ क्योंकि इस प्रकार बाह्य चमक-दमक में जो कमी हुई है वह शैली की शक्ति और सजीवता के द्वारा और भी अत्यधिक रूप में पूरी हो जाती है।

निम्नलिखित पत्र मिसेज वैलमेन को लिखे गये थे।

ॐ

शास्ता स्प्रिंग्स, केलीफोर्निया

८ अक्टूबर १९०३.

परम कल्याणमयी भगवती,

...राम आपके हर एक कार्य को पूर्णतः पसन्द करता है। राम स्वार्थी नहीं कि तुम्हारे अभिप्राय को ग़लत समझने की चेष्टा करे और न इस बात की कभी कोई संभावना हो सकती है कि राम उसे भूल जाय जो भारतवर्ष के प्रेम में, सत्य के और पीड़ित मानवता के प्रेम में राम-रूप हो रही है। सूर्यानन्द 'सूर्य' का द्योतक है। "बुराई का प्रतिरोध

मत करो" इसका यह मन्तव्य नहीं कि तुम बिल्कुल अवस्तु, एकदम निष्क्रिय बन जाओ, कदापि नहीं, कदापि नहीं। यह वचन शरीर के कामों से कोई सम्बन्ध नहीं रखता, यह आदेश मन के लिये, केवल मन के विषय में है। इसके द्वारा हमें मन को शान्त रखने की शिक्षा दी जाती है। मानसिक प्रतिरोध, विरोध और विद्रोह के द्वारा सदैव वैमनस्य, व्यग्रता और अशांति की उत्पत्ति होती है। इसलिए भीतर ही भीतर खीझने और चित्त को अस्थिर करने के बदले उस दिखावटी बुराई को प्रेम से जीतना चाहिए (प्रेम 'त्याग' और दानशील वृत्ति का दूसरा नाम है)। और इससे बढ़कर कोई दूसरी शक्ति नहीं!

'बुराई का प्रतिरोध न करो' और दाता के उत्साह के साथ सभी घटनाओं का स्वागत करो। महान् आत्मायें कभी, कदापि अस्थिरचित्त नहीं होतीं। शान्ति को स्थिर करके हम सदैव ठोकर देने वाले पत्थरों को ऊपर चढ़ाने वाली सीढ़ियों में बदल सकते हैं। कभी नहीं, कदापि नहीं कोई ऐसा अवसर मत आने दो कि लाचारी और दैन्य का भाव तुम्हारे चित्त में स्थान पाने लगे।

अभी अभी राम को यह ध्यान आया कि भारतवर्ष पहुंचते ही तुम्हें सब से पहले अपने सुभीते के अनुसार पूरन का पता लगाना चाहिए। वह कहीं पंजाब में होगा। वह 'थंडरिंग डॉन' का सम्पादक है। उसके लिये तुम्हें किसी परिचय-पत्र की आवश्यकता नहीं।

आशा है, वर्ष निकलते ही तुम राम को तुरन्त लिखोगी।

तुम्हारा ही शुद्ध वीर हृदय आत्मा
राम स्वामी

(यह पत्र मिसेज़ वैलमेन को उस समय लिखा गया था, जब उसे अपनी भारतवर्ष की चिरभिलषित यात्रा के बारे में बड़ा मानसिक संघर्ष करना पड़ा, क्योंकि लोग उसकी इस यात्रा का कड़ा विरोध कर रहे थे।)

ॐ

शास्ता स्प्रिंग्स, कैलीफ़ोरनिया
अक्टूबर १०, १९०२

स्नेहमयी माता,

तुम्हारा प्रेम भरा पत्र, काग़ज़ और लिफ़ाफ़े प्राप्त हुए। (उसने काग़ज़ और लिफ़ाफ़ों का एक बक्स भेजा था)। ज्योंही तुम उस प्रेम भरी धरती (भारत माता) पर पैर रखोगी, निस्सन्देह वहां तुम्हारा हार्दिक स्वागत होगा। राम ने पहले ही से भारत को सूचना दे दी है। वहाँ पहुंचने की दशा में तुम्हारा नाम वहाँ पहले ही से पहुंचा रहेगा। जहां भी तुम यात्रा के बीच रुकोगी, वहां तुम्हारा स्वागत होगा। (अब प्रश्न के उत्तर के विषय में) जब हम भोग-विलास, हंसी-ख़ुशी और ओछी बातों के गर्त में फंस जाते हैं तब प्रकृति के उस अदृश्य विधान के अनुसार हमें प्रतिघात रूप दुख और यातना सहना पड़ती है, जो हमें नीचे गिराती हैं। अतः बुद्धिमान् कभी अस्थिर-चित्त और उदास नहीं होता। वह तो सदैव उस एक सर्वश्रेष्ठ परमतत्व में निमग्न रहता है।

दुनियां की चीज़ों की ओर तो वह केवल एक निष्पक्ष व्यक्ति की भांति ध्यान देता है, जैसे वह एक निष्काम, उदासीन, आत्मनिष्ठ, उदार-हृदय राजकुमार हो।

अपने सभी क्रियाकलापों में इसी श्रेष्ठ भाव का अवलम्बन करो। अनिच्छित अनुभवों के समय स्वतन्त्र आत्मा सदैव निर्द्वन्द्व, अविचलित और प्रसन्नचित्त रहता है, अपना जन्मजात गौरव एक क्षण के लिये भी उसके चित्त से नहीं उतरता। वह निरन्तर स्पष्ट सोचता रहता है कि मैं तो एक अद्वितीय ब्रह्म हूँ, सूर्यों का सूर्य। तुम भी निरन्तर अपने वास्तविक 'सूर्य-रूप-प्रकाश' पर ध्यान केन्द्रित करो और उसे जीवन के हर एक व्यवहार में उतारो और लो, तुम अपने जीवभाव को शीघ्र ही प्रेम, प्रकाश और जीवन के सर्वोच्च अवतार में परिणत कर दोगी। जहाज़ पर प्रस्थान

करने से पहले तुम राम को लिखना और जापान और हांगकांग पहुँचने पर भी राम को पत्र देना। भारतवर्ष में तुम्हारी सहायता करने से राम को सदा बड़ी प्रसन्नता होगी।

तुम्हारी ही श्रेष्ठ प्रेममयी आत्मा
राम

ॐ

शास्ता स्प्रिंग्स, केलीफ़ोरनिया
अक्टूबर १६, १९०३.

कल्याणमयी सर्वश्रेष्ठ पूर्णानन्द,

आज मध्याह्न तुम्हारे दोनों पत्र एक साथ राम के हाथ आये। सभी कुछ सुन्दर और सन्तोषजनक है। अब जब तुम लम्बी यात्रा पर जा रहे हो, तब तुम्हें मानव-प्रकृति का ज़रा बारीकी से अध्ययन करना चाहिए। उससे बड़ा लाभ होगा। किन्तु यह सदा ध्यान रहे कि हर समय सदा शान्त, स्थिर और आत्मा-निष्ठ रहना तुम्हारा सर्वप्रथम कर्तव्य है। ऊपर से जो बातें तुम्हें बाधा और विलम्ब डालने वाली प्रतीत होती हैं वे वास्तव में तुम्हारी आन्तरिक शक्ति और पवित्रता को बढ़ाने वाली हैं। प्रकृति-विज्ञान-विशारदों ने यह भले प्रकार सिद्ध कर दिया है कि यदि मार्ग में संघर्ष और विरोध न होता तो विकास अथवा उन्नति का कहीं नामोनिशान ही प्रकट न हो सकता।

क्या तुम्हें रोबर्ट ब्रूस और मक्खी का क़िस्सा याद नहीं? "क्या प्रत्येक महान् आविष्कार के पूर्व हमें सैकड़ों, नहीं, सहस्रों असफल क्रियाओं में होकर नहीं गुज़रना पड़ता है? प्रातःकाल ब्राह्म मुहूर्त में इस मंत्र (मंत्र यहां उद्धृत न करने के लिये क्षमा) को लगभग आध घंटे तक मन ही मन दुहराने से तुम्हें बड़ा लाभ हो सकता है। इस मंत्र का जाप करते समय इसकी सचाई, इसका यथार्थ अर्थ निरन्तर

अपने हृदय में पैठाते रहो। इस प्रकार लगातार आत्म-निर्देश करते रहने से तुम पूर्ण संन्यासिन् (स्वामी) बन जाओगे। हां, कृपया यह शीघ्र ही लिखना कि तुम्हारी यात्रा के लिये क्या क्या प्रवन्ध हो चुका है। हार्दिक प्रेम और सच्ची सहानुभूति के साथ—

तुम्हारी ही आत्मा
राम स्वामी

ॐ

शास्ता स्प्रिंग्स, केलीफ़ोरनिया
अक्टूबर २१, १९०३.

कल्याणमयी भगवती सूर्यानन्द,

कल का पत्र अभी अभी मिला।

ओ, कैसा हर्षदायक समाचार! भारतवर्ष के लिये प्रस्थान!! हांगकोंग में यदि तुम वासियामल असूमल जी (घंटाघर के पास) से मिलो तो वहां के हिन्दू व्यापारियों को राम (तीर्थ) स्वामी की इस आनन्दमयी स्थिति का समाचार सुनकर बड़ी प्रसन्नता होगी। उनसे अपने इस उत्तम और उदार प्रयोजन की भी चर्चा करना!

राम ने बहुत से लोगों को पहले ही पत्र लिख छोड़े हैं। वे तुम्हें स्थानीय विषयों में हर प्रकार की सूचना प्रेम से देते रहेंगे। तुम्हें तो कार्य का आरम्भ भर कर देना है और बाद में हर एक बात अपने आप बनती जायगी। केवल एक बात याद रखो। जब तुम किसी भी सम्प्रदाय के व्यक्ति से मिलो तो कभी नहीं, कदापि नहीं, भूलकर भी नहीं, भिन्न भिन्न दलों की पारस्परिक आलोचना-प्रत्यालोचना पर रंच मात्र ध्यान देना, स्वप्न में भी उसका स्मरण न करना। हां, जहां कहीं तुम्हें भक्ति, उदारता, प्रेम अथवा आध्यात्मिक ज्ञान की कोई बात मिले तो उसे तुरन्त ग्रहण कर लेना, पचा लेना, अपना बना लेना। दूसरों के राग-

द्वेष से तुम्हें कभी कोई सरोकार न होना चाहिए। उनकी कमज़ोरियों और त्रुटियों पर कभी भूलकर भी दृष्टि न डालना।

कलकत्ते में सेठ सीताराम से मिलना न भूलना। कलकत्ते में रहते समय तुम 'ज्ञान' के विद्वान् सम्पादक से भी भेंट कर सकती हो। वे एक सीधे-सादे, शुद्ध, भक्त और पक्के वेदान्ती हैं। वे एक विद्यालय और छात्रालय का सफल संचालन कर रहे हैं। कलकत्ते में तुम संकीर्तन का आनन्द उठा सकती हो। भक्ति के आवेश में लोग कैसे आत्म विभोर होकर नाचने लगते हैं।

भारतमाता सदैव ठीक उसी भांति तुम्हारा स्वागत करने के लिये तैयार है, जैसे कोई माता वर्षों से बिछुड़े हुए अपने बच्चे के लौटने पर उसे गले लगाती है। सम्प्रति विदा! राम तुम्हारे साथ है!

भारत के पथ पर

लौट रहे हैं हम अब भारत को!
और प्रतीक्षा न हो सकेगी अब
हम भी जलयान पर चढ़े, ओ आत्मा मेरी—
तेरे हित हम भी पथहीन सिन्धु की लहरों पर उतरे
निर्भय अज्ञात तटों हित बढ़ते
महानन्द लहरों पर हो सवार
तिरता जलयान मन्द मन्द पवन से मिलकर।

गाते हम महानन्द के गायन—परमात्मा के गायन
गाते हम अति प्रसन्न सुखदायी 'ओम्' नाम के गायन
लौट रहे हैं अब भारत को
सागर यात्रा करते या पर्वत पर चढ़ते
निशि में आते जाते

दिशाकाल और मृत्यु के विचार शान्त परम
जल प्रवाह जैसे बहते आते
मुझको अज्ञात लोक में कभी बहा देते
मैं जिसकी वायु सांस में भरता।

सिक्त करो मुझको निज से ओ ईश्वर!
चलकर पहुंच सकें
मैं औ मेरी आत्मा तेरी सीमा भीतर।
लौट रहे हैं हम निज भारत को।
आगे बढ़ती जाओ आत्मा, जब निश्चित तिथि पर पहुँचो।
पार सिन्धु कर सारे, अन्तरीप पार अन्त हो जब इस यात्रा का,
ईश्वर हो जब समक्ष प्रकट, करो आत्म-समर्पण तब तुम—
लक्ष्य प्राप्त होने पर झुक जाओ!
भर कर प्रिय-बन्धु भाव से लिये अनन्त प्रेम।
अग्रज भ्राता है वह स्नेहपूर्ण,
उसकी बाहों में जा लघु भ्राता आंसू में बह जाता।

लौट रहे हैं हम अब भारत को!
इस महान यात्रा हित ओ आत्मा!
सचमुच क्या है तेरी पाँखों में समुचित बल?
क्या सच तुम निकल पड़े हो ऐसी यात्रा पर?
क्या गुंजित करते तुम संस्कृत-वेदों के स्वर?
तो फिर तुम निस्संशय उड़ जाओ।

ओ पहेलियो भीषण पराचीन—
तुम अपने तट की दो राह बता,
ओ उलझे प्रश्नों, जलयान यह बढ़े तेरे भीतर से।

लौट रहे हैं हम अब भारत को !
ओ पृथ्वी और गगन के रहस्य,
लौट रहे हैं तेरे पास अरे सागर-जल,
वक्र खाड़ियो, ओ माता गंगे,
ओ जंगल, मैदानो, उन्नत हिमवान् अरे !
अरुण प्रात, बादल, वर्षा, हिम ओ
ओ निशि-दिन पास तुम्हारे हम हैं लौट रहे !
सूर्य, चन्द्र, तारको, बृहस्पति, ग्रह
पास तुम्हारे मैं हूं लौट रहा !
आ रहा तुरन्त आ रहा हूं मैं।
नस नस में उबल रहा उष्ण रक्त।
अब तुरन्त लंगर उठ जाये मेरी आत्मन् !
काटो लम्बी रस्सी, खींचो, झकझोरो इन पालों को !
कब से हम जड़ वृक्षों जैसे हैं यहां खड़े
खेते जाओ, अथाह सिन्धु बीच बढ़ते जाओ।
क्योंकि हमें जाना है वहां जहां—
कोई नाविक न आज तक पहुंचा !
खतरे में डालेंगे हम निज को, नौका को, सब कुछ,
अरे बहादुर तू आत्मा मेरी !
ओ पिता, हमें खेकर पार करो।
ओ साहसपूर्ण महानन्द, पर सुरक्षित न
ओ पिता ! हमें खेकर पहुंचा दो—
अपने असली घर तक पहुंचा दो !

ॐ

शिकेगो इलीनोइज
फ़रवरी १५. १६०४.

कल्याणमयी आत्मन्,

तुम्हारे बहुत से पत्र, तार—सब के सब राम को यथा समय मिले। जब केवल एक सत्, एक तत्व है तब कौन किसको धन्यवाद दे। राम आनन्द से भरा हुआ है, राम स्वयं आनन्दरूप है। हर समय दिन रात राम परम शान्तिमय रहता है। राम कोई काम नहीं करता! तुम तो सुगन्धित गुलाब बन जाओ और मधुर पराग अपने आप तुम्हारे चारों ओर बिखरने लगेगा।

क्या तुम सम्पूर्ण हृदय से अपने को हिन्दू मानते हो। क्या उनकी भूलें, उनके अन्धविश्वास तुम्हें बिल्कुल अपने मालूम होते हैं? क्या तुम भाई बहिनों की भांति उनका विश्वास कर सकते हो? क्या कभी तुम्हारे चित्त से अपने आन अमरीकन जन्म की कथा उतर जाती है? क्या तुम कभी अपनें आप को एक नव जात हिन्दू के रूप में अनुभव करते हो। राम कभी कभी अपने आप में एक गंभीर वृत्ति-सम्पन्न कट्टर ईसाई के दर्शन करने लगता है। यदि इस स्थिति में पहुंच गये हो तो सचमुच अपने आप तुम अद्भुत कार्य्यों के स्रोत बन जाओगे।

तुम हो कौन? तुम्हें गिरे हुओं को उठाने का क्या अधिकार? क्या स्वयं तुम्हारा उद्धार हुआ है?

क्या तुम्हें वह वचन याद नहीं कि 'जो अपने जीवन को बचाने की चेष्टा करेगा, अवश्य मारा जायगा।' अच्छा, तो तुम क्या गिरे हुओं में से हो? तब तो उठो और मुक्तिदाता बनो। पापी है, तो उसके साथ भी अपनी एकता का अनुभव करो और तुम उसके रक्षक बन जाओगे। इसके सिवा और कोई मार्ग नहीं, प्रेम के सिवा और कोई गति नहीं, वही सब पर विजय प्राप्त करा देता है।

तुम्हारी ही आत्मन्,
स्वामी राम

ॐ

मिनीपोलिस एम. एन. यू. एस. ए.
अप्रेल ३, १६०४.

कल्याणमयी आत्मन्,

तुम कहां हो ? नववर्ष के स्वागत-पत्र के सिवा जो मथुरा से लिखा गया था—कोई पत्र फिर कल्याणमयी माता से प्राप्त नहीं हुआ। शान्ति, शान्ति, शान्ति सदा भीतर ही से मिलती है। स्वर्ग का साम्राज्य केवल हमारे अन्तस्तल में है। पुस्तकों में, मन्दिरों में, पीर पैगम्बरों और महात्माओं में आनन्द की खोज करना व्यर्थ, बिल्कुल व्यर्थ है। अब तुम्हें भी इस बात का अनुभव हो गया होगा। यदि यह पाठ एक बार सीख लिया जाय तो चाहे जिस मूल्य पर भी, यह कभी महंगा नहीं पड़ता। एकान्त में बैठो और अपनी हार्दिक वेदना को दिव्य आनन्द में बदल डालो। तुम्हें 'थंडरिंग डॉन' वेदान्त का मासिक पत्र जैसी पुस्तकों से भी स्फूर्तिदायक सूचनायें मिल सकती हैं। ॐ पर ध्यान जमाओ और मनुष्यमात्र को शान्ति बाँटने की तैयारी करो। कभी किसी बात के इच्छुक, भिखारी मत बनो। प्रिय आत्मन्, क्या तुम्हें वह अन्तिम उपदेश याद है जो राम ने तुम्हें शास्ता स्प्रिंग्स की समीपवर्ती पहाड़ी पर दिया था। उसमें चाहने, मांगने का लेश भी न था। वह तो प्रकाश और प्रेम के शाश्वत दाता का दृष्टिकोण था। ज्योंही हम किसी चाह में, किसी की खोज में फंस जाते हैं, त्योंही हमारा हृदय फटने लगता है। हाँ, भारतवर्ष की इस समय कैसी दारुण अवस्था है, इसका तुम्हें प्रत्यक्ष अनुभव हुआ होगा। राम ने अपनी 'अमरीकनों से अपील' में जो चित्र खींचा है, ठीक वैसा ही तुमने पाया न ? यदि चाहो तो एक बार पुनः उसे पढ़ जाओ। कृपया अपने प्रेम के परिश्रम से किसी तात्कालिक, प्रकट परिणाम की आशा मत करो। ईसा की आत्मा ने कहा है—केवल सेवा से ही सन्तुष्ट रहो। सेवा के अधिकार से बढ़कर हमें किसी उपहार पुरस्कार

और वरदान की आशा न करना चाहिए। यदि तुम अभी तक 'एडवोकेट' (सामयिक पत्र) के सम्पादक बाबू गंगा प्रसाद वर्मा से नहीं मिलीं, तो लखनऊ में उनसे अवश्य मिलो।। हाँ, यह बताओ कि तुम्हारे हृदय को दीन-हीन भारतवासियों के दुख में हिस्सा बटाने में अधिक आनन्द मिलता है या अमरीका के आमोद-प्रमोदों का उपभोग करने में ?'

* * *

राम एक मास ओरेगन, और पोर्टलेण्ड में रहा, एक मास डेनवर में. दो सप्ताह शिकेगो में और एक पक्ष मेनीपोलिस में। इन सभी स्थानों में वेदान्त सभाओं का संगठन किया गया। विभिन्न विश्वविद्यालयों में कुछ धनहीन भारतीय विद्यार्थियों के निःशुल्क अध्ययन का भी प्रबन्ध हुआ है। यहां से राम बुफैलो एन-वाई जाता है। वहां से बोस्टन, न्यूयार्क फ्लेडेलफिया, वाशिंगटन डी० सी० जायगा। जून २६, ३१ और ३१ को राम सेंट लुई में विश्व एकता-परिषद के अधिवेशनों में भाग लेगा। जुलाई में राम लेक जेनेवा में पहुंच जायगा। इसके पश्चात् राम लण्डन, इंग्लेण्ड में उतरेगा। ऐ प्यारी माता ! तुम अपना साहस न छोड़ना। प्रत्येक वस्तु के केवल उज्ज्वल पहलू पर अपनी दृष्टि रखो। ऐसा कोई गुलाब नहीं, जिसमें कांटा न हो। विशुद्ध भलाई कहीं इस संसार में मिल नहीं सकती। पूर्ण कल्याण रूप केवल परमात्मा है। यदि भारतवर्ष वेदान्त का, सत्य का व्यवहार करता होता, तो फिर उसकी ओर से अमरीका को अपील करने की क्या आवश्यकता रह जाती ? जब तुम्हारा हृदय उस सर्वव्यापक सौंदर्य से पूर्णतः रँझ जाये, तो तुम्हें सर्वत्र हर एक वस्तु देदीप्यमान दिखाई देगी। शान्ति ! शान्ति !! शान्ति !!!

हार्दिक कल्याण ! अन्तरंग आनन्द !!
सर्वत्र और सदैव तुम्हारी ही आत्मा
स्वामी राम

ॐ

विलियम्स बे अथवा लेक जेनोवा

जुलाई ८, १९०४.

परम कल्याणमयी दिव्य आत्मन्,

तुम्हारे पत्र प्राप्त हुए। धन्यवाद। राम तुम्हारी स्थिति को पूर्णतया समझता है। शान्ति, आह्लाद और साफल्य सदैव तुम्हारा साहचर्य करेंगे। शुद्ध आत्मा को, जिसने सम्पत्ति का भाव और इच्छा की लालसा हृदय से दूर कर दी है, ऐसी शुद्ध आत्मा को भय, संकट अथवा कठिनाई की आशंका कैसे हो सकती है? राम पैर फैलाकर ब्रह्मांड में विश्राम करता है—स्वतंत्र, पूर्ण स्वतन्त्र! हमारे वक्षस्थल में "मैं" का घुन लगा हुआ है। उसे परे फेंक दो और सारा संसार तुम्हारे सामने नत-मस्तक होगा। मिनीपोलिस से लौटने पर एक लम्बा टाइप किया हुआ पत्र "प्रेक्टीकल विज़डम" में प्रकाशित करने के लिये तुम्हारे नाम भेजा गया था। विषय भी उसका था—व्यावहारिक ज्ञान। विश्व-एकता परिषद् का प्रथम अधिवेशन राम की अध्यक्षता में हुआ था। विश्व परिषद् के व्याख्यानों के अतिरिक्त इधर राम ने सेन्टलुई में थियोसोफीकल सुसायटी एवं व्यवहारात्मक ईसाई संघ के तत्वावधान में भी अनेक भाषण दिये। कुछ दिनों में राम शिकागो पहुँचेगा और फिर वहां से बुफैलो, लिलीडेल, गिनीकर मेनी आदि। सितम्बर में राम अमरीका से कूच करेगा।

शान्ति, कल्याण और प्रेम सब को—

तुम्हारा ही निजात्मा
स्वामी राम

ॐ

जेक सनविली, फ्लोरिडा
अक्टूबर १, १६०४.

परमकल्याणमयी देवी,

राम ने कुछ दिनों से तुम्हें कोई पत्र नहीं लिखा। कारण—

(१) राम इधर इतना अधिक कार्य-व्यस्त रहा।

(२) सामयिक पत्रों के सिवा भारतवर्ष में कोई व्यक्तिगत पत्र डाला ही नहीं।

(३) यह सोच कर कि तुम भले लोगों के साथ हो उसने अपनी ओर से किसी पत्र की आवश्यकता ही नहीं समझी।

(४) मिनीपोलिस छोड़ने के अनन्तर राम को तुम्हारा कोई पत्र नहीं मिला।

शान्ति. कल्याण, प्रेम और आनन्द सदैव तुम्हारा साहचर्य करेंगे।

अपनी ही अन्तरात्मा की भीतरी ध्वनि का पालन करने से तुम संसार में किसी के भी प्रति दोषी नहीं हो सकते। हम किसी के ऋणी नहीं। हम परिश्रम करें, क्योंकि परिश्रम से हमें प्रेम है। सदैव स्वस्थ्य और दाता बनना ही हमारा लक्ष्य होना चाहिए।

प्रत्येक पुरुष, प्रत्येक स्त्री स्वतन्त्रता पूर्वक अपना अनुभव करे। हमें तो केवल सेवा करने का अधिकार है। हमें अपने साथियों को सहायता करके आगे बढ़ाना है। किन्तु यह प्रगति वस्तुतः उन्नतिशील होना चाहिए, न कि दिखावटी और मन समझाने वाली! जब मैं स्वेच्छा से अपने मित्रों की आध्यात्मिक उन्नति में सहायता देने की चेष्टा करता हूँ, तो मैं भी उनके साथ नीचे गिरता हूँ। चाहे जो करो, चाहे जहां रहो, राम का आशीर्वाद और प्रेम तुम्हारे साथ है। परसों राम न्यूयार्क के लिये चलेगा और कदाचित् ८ अक्टूबर को ही *प्रिसेज इटीन* में जिवराल्टर के लिये सवार हो जाय। फिर भी भारतवर्ष पहुंचने में अभी

कुछ समय लग सकता है, क्योंकि मार्ग में कई स्थानों पर रुकने की संभावना है।

लक्ष्य जिसे याद रखना और व्यवहार में लाना है—

यदि मित्र की कोई अनुचित बात ज्ञात हो जाय तो उसे भूल जाओ।

यदि उसके बारे में कोई अच्छी बात ज्ञात हो, तो उसे सुना दो अवश्य। उसका मुखमण्डल तुरन्त दीप्त हो उठेगा, और वह उसको ग्रहण करने योग्य बनेगा।

जैसे सूर्य है, पूर्ण निर्भय, चिरन्तन दाता, प्रत्युपकार की आशा से रहित, सेवक, हार्दिक प्रेम से प्रकाश और जीवन देने वाला, वैसे ही प्रभु के प्रताप की प्रभा से खिल उठो। अपना कहीं कुछ भी नहीं, अहंकार भी अपना नहीं, सर्वथा स्वार्थशून्य! बस, यही मोक्ष है, और यही है जीवन का परम उद्धार!

मैं स्वर्गीय षट्रस खाता हूँ,
और दान करता हूँ स्वर्गीय सुरा।
ईश्वर ही मेरे भीतर और ईश्वर ही मेरे बाहर—
ईश्वर सदा-सर्वदा मेरा अपना है।

तुम्हारा ही निजात्मा
स्वामी राम

निम्नलिखित पत्र स्वामी राम ने भारतवर्ष में लौटने पर पुष्कर से मिसेज वैलमेन को लिखे थे—

ओ३म्! ओ३म्!

पुष्कर
फरवरी १४, १९०५

परम कल्याणमयी माता भगवती,

बम्बई विश्वविद्यालय के एक ग्रेजुएट ने, एक सुन्दर नवयुवक ने

आज राम के काम के लिये अपना जीवन अर्पण किया है। वह साहित्यिक कार्यों में सहायता देने के लिये राम के साथ रहेगा। परम पिता भगवान् सचमुच कितना दयालु है। वह पिता, वह शक्ति उसे कभी धोखा नहीं देती, जो पूर्णतः उस पर अवलम्बित होकर काम करते हैं।

नारायण स्वामी शीघ्र ही विदेशों में व्याख्यान देने के लिये भेजे जायंगे।

छिपे हुये और नगण्य कोनों में काम करना उतना ही गौरवशाली है जितना भव्य और सुन्दर केन्द्रों में। रहट के चक्र में एक छोटी सी दांत जैसी लकड़ी की कील, जिसे कुत्ता कहते हैं, उतनी ही महत्वपूर्ण है जितनी कि उस विशाल यंत्र को चलाने वाले बैल। कुत्ता के हटा लेने पर वह सारा का सारा विशाल यंत्र ठप हो जायगा। नहीं, वही क्यों, धुरी में लगने वाली प्रत्येक तीली उस यंत्र में अत्यन्त महत्वपूर्ण है। देखने में ऐसी छोटी छोटी चीज़ों का महत्व बच्चे भले ही न समझें, तो उससे क्या? ईश्वर की आंखों में तो छोटे से छोटे काम का भी मूल्य, यदि उसे प्रेम की प्रेरणा से किया जाता है तो उतना ही प्रभावपूर्ण होता है। छोटी सी ओस की बूंद भला सूर्य के सामने क्या चीज़ है? किन्तु बारीकी से देखने वाली आंख देख सकती है कि इस छोटी सी बूंद में भी, उसके नन्हें से मोठे वक्षस्थल में पूरा का पूरा सूर्य-मण्डल अपनी प्रभा डालता है। सो, मेरी कल्याणमयी माता, नगण्य और अलक्षित क्षेत्रों में मधुर और शान्त कार्य भी, नाम और यश से सर्वथा हीन, ठीक उतना ही महत्वपूर्ण एवं श्रेष्ठ है जितना कि वह ज़ोर-शोर से चलने वाला कोलाहल पूर्ण कार्य, जो मनुष्यमात्र का ध्यान आकर्षित कर लेता है। मैं भी उदास रहा करता था—अपने छोटे-मोटे काम को देखकर जो मैं किया करता था। "वे भी सेवा करते हैं, जो केवल खड़े रहते और बाट देखते हैं।" माता बच्चे की सेवा में पसीना बहाती है। एक समय आता है, जब वही बच्चा विश्वविद्यालय में पहुंचता

है और बड़े बड़े प्रोफेसर्स उस किशोर को व्याख्यान देते हैं। निस्संदेह माता का आसन मंच जैसा उच्च और उतना यशोमण्डित नहीं होता, जितना कि प्रोफेसर का। फिर भी माता का कार्य प्रोफेसर के कार्य से सैकड़ों गुना मधुर और गंभीर होता है। क्या हम बचपन में ही माता की गोद और लोरियों को छोड़ कर प्रोफेसर के कमरे में उसका व्याख्यान सुनने के लिये जा सकते हैं?

वेदान्त का कहना है कि एक साधारण से साधारण कुली को भी अपना छोटा सा काम उतना ही गौरवान्वित और पवित्र मानना चाहिए जितना ईसा मसीह अथवा कृष्ण का माना जाता है। जब हम कुर्सी का एक पाया हिला देते हैं तब क्या पूरी कुर्सी नहीं हिल उठती? सो जब हम एक आत्मा को उठाते या उन्नत करते हैं तो उसके द्वारा सारा संसार उठने और उन्नत होने को बाध्य होता है। मनुष्य—मनुष्य जाति ऐसी ही ठोस और घनीभूत है।

"अपने आप में ही घिरे हुये, भगवान् के दूसरे काम किस दशा में चल रहे हैं उस ओर से निश्चिन्त रहते हुये, अपनी सारी शक्तियां अपने ही काम में जुटाते हुये जो चलते हैं उन्हीं का जीवन महान् होता है।"

ओ वायु के गर्भ में रहने वाली ध्वनि!
न जाने कब से तू साफ़ साफ़ नहीं सुनाई दी।
तेरे ही तरह एक झनझनाहट सुनाई देती है—
मुझे अपने छोटे से हृदय में!

अपना आप बनने का निश्चय करो और देखो कि जो अपने को पा लेता है, वह दुखों से छूट जाता है।

ॐ! आनन्द! ॐ शान्ति! आशीर्वाद और प्रेम

राम

ओम् ! शान्ति ! आशीर्वाद ! प्रेम ! आनन्द !

परम कल्याणमयी माता भगवती,

तुम्हारा मीठा स्वर्गीय पत्र मिला। कल्याणमयी सूर्यानन्द ने शरीर पर जैसा सुन्दर नियमन किया है, वह निस्संदेह परमात्मा के साथ उस अद्भुत ऐक्य, प्रेम के साथ आश्चर्यजनक सामञ्जस्य का द्योतक है।*

ओम् ! आनन्द ! जय ! जय !

* * *

तुम्हारा ही निजात्मा
स्वामी रामतीर्थ

ओम् ! आनन्द ! आनन्द ! ओम् ! शान्ति !

कल्याणमयी माता,

राम उसी छत पर लेटा हुआ है, जिस पर तुम उस दिन उसके साथ बैठी थीं।

* * *

ब्रह्मानुभूति में तल्लीन, अचेत, जब कि तुम्हारा पत्र कुछ अन्य पत्रों के साथ लाकर राम के हाथों में रखा गया। तब पत्र खोलने से पहले एक हार्दिक उल्लास भरा दीर्घ अट्टहास तुम्हारी कल्याणमयी आत्मा के पास भेजा गया। ओम् ! शान्ति, शान्ति ! सबसे प्यारी माता ! लो, राम तुम्हारा पत्र पढ़ने के बाद पुनः उल्लासमयी हंसी की एक दूसरी गूंज तुम्हारे पास भेज रहा है।

माता, तुम्हारी हर एक बात बिल्कुल ठीक है। राम पूर्णतः तुम्हारे शुद्ध, मधुर सुकोमल स्वभाव को समझता है। ईश्वर के आदेशानुसार वह इस समय विभिन्न विषयों पर कुछ गद्य और कुछ पद्य लिख रहा है।

---

* मिसेज़ वैलमेन अस्वस्थ थीं और दिव्यशक्ति से अच्छी हो गईं।

बाबू गंगा प्रसाद वर्मा को भारत के अन्य प्रान्तों में वहां की कन्या पाठशालाओं को देखने एवं स्त्री शिक्षा-प्रचार सम्बन्धी योजनाओं के अध्ययन के लिये जाना था, जिससे लखनऊ एवं अन्य स्थानों में स्त्री-शिक्षा सम्बन्धी सुधार शीघ्र से शीघ्र व्यवहृत किये जा सकें। प्रान्तीय सरकार ने उन्हें यह काम सौंपा है। इस कारण वे मार्च से पहले राम से मिलने नहीं आ सकते। राम कदाचित् ग्रीष्म ऋतु में मैदानों में न ठहरे। राम को कश्मीर से प्रेम है और यदि इस यात्रा में तुम्हारा सुखद साथ रहा. यदि राय भवानीदास एवं अन्य मित्र साथ चलें तो बड़ा आनन्द हो। निस्संदेह वहां राम की उपस्थिति और संभाषणों से हजारों—लाखों प्यासी आत्माओं को आत्मिक तुष्टि मिल सकती है, इसलिए राम तुम्हारे साथ कश्मीर जा सकता है। किन्तु ऐ कल्याणमयी माता ! सर्वोच्च अधिकार तो मनुष्य का केवल इतना है कि उसका शरीर, मन और हृदय निरन्तर सत्य और मनुष्यता की वेदी में होम होता रहे और तभी उस परमात्मा को हमारी भेंट एक निरहंकार, विशुद्ध, क्षीण और शान्त अन्तर्ध्वनि के रूप में स्वीकार होती है।

"यदि कर्तव्य लोहे की तप्त दीवारों का सामना करने के लिये आह्वान करे, तो वहां से हटने वाला कितना मूर्ख, कितना निन्दनीय होगा ?"

माता ! उत्सर्गपूर्ण जीवन तो किसी अज्ञात, अद्भुत दिव्य प्रज्ञा के आधार पर चलता है, हम उसका विश्लेषण नहीं कर सकते।

राम कश्मीर-यात्रा में तुम्हारा साथ दे सकेगा किन्तु ठीक चलने की घड़ी के पूर्व तक कुछ निश्चित नहीं कहा जा सकता।

तुम्हारा निजात्मा

रामतीर्थ

ॐ

जयपुर
मार्च ६, १६०५

परम कल्याणमयी भगवती,

राम के चलने के विषय में तुम्हारी भविष्यवाणी यहां तक तो ठीक निकली कि राम ने पुष्कर छोड़ दिया। अब यहां से राम किस दिशा में चल पड़ेगा यह उसने ठीक चलने के समय तक सूर्यों के सूर्य—उस परमात्मा के हाथों में सौंपा हुआ है। अजमेर के टाउन हाल में दो व्याख्यान दिये गये। लोग जयपुर के टाउन हाल में भी व्याख्यानों की व्यवस्था कर रहे हैं। पूरन पुष्कर आया था और दो-तीन दिन तक राम के साथ पहाड़ियों पर घूमता रहा। दिलजंगसिंह कितना कोमल है! राम के दर्शन के लिये लोगों की भीड़ लगी रहती है किन्तु यह तो बन्द होना चाहिए। रहे केवल राम और उसका ईश्वर!

आज हम दिन भर साथ ही साथ रहेंगे और रात्रि में भी प्रेम वृत्ति से, जो कभी तृप्त नहीं होती, हम साथ ही साथ सोयेंगे। प्रातः उषाकाल में ही हम चल खड़े होंगे, फिर चाहे जिस ओर पैर ले जायं—एकान्त में अथवा भीड़-भाड़ में—वह सब कल्याणरूप होगा। न तो हम कभी यात्रा की समाप्ति की कामना करेंगे और न ही सोचेंगे कि हमारा अन्त कहां होगा। क्या सचमुच यहां की सारी वस्तुओं का ऐसाही अन्तिम परिणाम नहीं होता?

ओम्! ओम्! ओम्!

शीघ्र ही राम जंगलों में, पहाड़ों पर, परमात्मा में, तुम्हारे भीतर पहुंच जायगा, जहां पत्रों की पहुंच नहीं हो सकती। नहीं कहा जा सकता, दुबारा तुम्हें कब लिखना होगा? तुम्हारा ही निजात्मा

राम

शान्ति, कल्याण, प्रेम सदा तुम्हारा साहचर्य करे!

ॐ

हरिद्वार
बृहस्पति सायंकाल

परम कल्याणमयी माता,

तुम्हारी भविष्यवाणी सच हुई। राम देहरा और अपनी दिव्य माता के पास जा रहा है। किन्तु अतिशय प्रेम के मारे लोग उसे स्थान स्थान पर रोक लेते हैं। अलवर, मुरादाबाद, अजमेर, जयपुर आदि कई स्थानों में व्याख्यान हुए। रेलगाड़ी में ही अपने प्यारे भाग्यवान् बाबू ज्योति स्वरूप को विदा करके राम हरिद्वार में रुका है और लोगों ने राम की उपस्थिति का पता लगाना प्रारम्भ कर दिया है। वे कैसी उत्सुकता और प्रेम से यहाँ कुछ काल तक ठहरने का आग्रह करते हैं। और राम भी इस सुअवसर को हाथ से जाने देना ठीक नहीं समझता। यहां अन्य लोगों के साथ बहुत से नवयुवक सन्यासी हैं, जो राम के वचन सुनने के लिये बेतरह भूखे और प्यासे हैं। उनकी दशा सुधारने के हेतु कुछ करना ही चाहिए। माता! मथुरा में अपनी भेंट के समय तुम ने भी राम से इस काम का अनुरोध किया था। अनेक पवित्रहृदय साधु संन्यासी राम की शिक्षाओं को ग्रहण कर रहे हैं।

राम आज गंगा के दूसरे किनारे पर चण्डी के मन्दिर गया हुआ था। यह मन्दिर एक छोटी सी सुन्दर पहाड़ी पर है। गंगा के उस तट पर बड़ा सघन जंगल है और दृश्य अत्यन्त मनोहर! गंगा का अनेक छोटी-छोटी धाराओं में फूट फूट कर फिर एक में मिल जाना, कैसा अनुपम! कैसा सुन्दर! चण्डी के मन्दिर से हिमालय की हिमशिलाओं का जगमगाता हुआ स्वर्णमयी दृश्य मन को मोह लेता है।

कल्याणमयी आत्मन्!

न प्रशंसा से काम और न निन्दा से मतलब!

न है कोई मित्र, न कोई शत्रु;
न किसी से प्रेम, न किसी से घृणा,
न शरीर और न उसके सम्बन्धी,
न है घर और न है परदेश !

नहीं, इस संसार की कोई भी बात महत्त्व की नहीं होती। ईश्वर है, ईश्वर ही सच्चा है, ईश्वर ही एक मात्र सच्चाई है।

किसी की परवाह नहीं, सब कुछ चला जाय ! केवल परमात्मा, मात्र परमात्मा ही सब कुछ है। अनादि शान्ति जल-बुन्दों के साथ बरसती है, अमृत की वर्षा हो रही है। राम का हृदय शान्ति से भरा हुआ है और चारों ओर आनन्द का प्रवाह बह रहा है।

आनन्दमय राम सदा आनन्द-मग्न है,
तुम भी, प्यारी माता, शान्ति और कल्याण का भण्डार बनो !
प्रेम ! आनन्द ! आनन्द ! ओम् ! ओम् ! ओम् !
प्रेम और आशीर्वाद, तुम्हारे शिष्यों को,
तुम्हारे मेजबान और मेजवानी को—
(श्रीमान् और श्रीमती ज्योतिष् स्वरूप)

तुम्हारा ही निजात्मा
राम

जुलाई ५, १६०५

परम कल्याणमयी आत्मन्,

राम का एक सप्ताह पूर्व मसूरी के पते पर भेजा हुआ पत्र पहले ही तुम्हारे श्रेष्ठ करों में पहुंचा होगा। इस वर्ष गरमी में राम तुम्हारे साथ कश्मीर न जा सकेगा। इसलिए तुम आनन्द के साथ कैलाश, मानसरोवर आदि स्थानों में भ्रमण करो, कोई जल्दी नहीं। इन सुन्दरतम पर्वतीय दृश्यों में निस्संदेह अपने घर जैसा आनन्द मिलता है। इन

प्राकृतिक दृश्यों से तुम्हें अपने कल्याणमय अमरीका के मनोहर दृश्यों का स्मरण होता होगा—कैसा अपूर्व सामंजस्य !

मुझ में आ मिलती शान्ति सरित-धारा वन-वन,
मुझ तक बहती है शान्ति मधुर वन मलय पवन,
है शान्ति बह रही मुझमें ज्यों गंगा निर्मल ।
प्रति रोम, अँगुलियों से झरती है शान्ति विमल ।
उत्तुंग तरंगे शान्ति-महासागर की उठ,
जन जन के सिर-पद-उर से होकर बह जायें
ओम् परमोल्लास ! ओम् महानन्द ! ओम् महा शान्ति !

× × ×

राम है महा प्रसन्न ।
जीवन की बाढ़ और कर्मों की आंधी में—
ऊपर नीचे मैं उड़ता फिरता,
इधर उधर सभी ओर
जन्म से मरण तक बुनता रहता
अन्तहीन जाली मैं !
परिवर्तनशील सिन्धु—
यह परम प्रकाश भरे जीवन का !
इसी भाँति काल के सतत स्वरमय करघे पर,
परमात्मा का सजीव वस्त्र मैं बुनता रहता ।

तुम्हारा ही निजात्मा
राम

ॐ

अगस्त १०, १६०५.

कल्याण ! प्रेम ! आनन्द !

शान्ति ! शान्ति !!

परम कल्याणमयी भगवती,

कुछ दिन पहले तुम्हारा पत्र मिला था। किन्तु राम ने इधर किसी पत्र का उत्तर नहीं दिया। आज तीन बड़ी ही उपयोगी पुस्तकें समाप्त हुई हैं, जो जनता के लाभार्थ राम हिन्दी में लिख रहा था। तुम्हारा स्वास्थ्य कैसा है ? राम की इच्छा है—तुम पूर्ण स्वास्थ्य, पूर्ण बल प्राप्त करो।

ओम् ! ओम् ! ओम् !

तुम्हारी अमरीका यात्रा के व्यय के लिये रुपया जुटाना कोई कठिन काम नहीं किन्तु हम लोग तुम्हें अपने साथ रखना चाहते थे। शायद यह हमारा स्वार्थ हो किन्तु तुम स्वयं यहां के लोगों को प्यार करती हो। क्या तुम्हें पूरा निश्चय है कि तुम्हारे शारीरिक शैथिल्य का एकमात्र कारण भारत का जलवायु है और अमरीका लौटने पर वह अपने आप जाता रहेगा ! यदि ऐसा है तो हम में से किसी को भी तुम्हें यहाँ रोकने का आग्रह न करना चाहिए। तुम चैन से कैलीफ़ोरनिया पहुंच जाओ—हम सब इसके लिये उद्योग करेंगे।

शान्ति, हार्दिक आशीर्वाद ! प्रेम !!

आशा है, यह पत्र तुम्हें उत्तम स्वास्थ्य में पायगा।

ओम्

तुम्हारा ही निजात्मा

राम

नीचे कुछ पत्र दिये जाते हैं जो स्वामी राम ने मिसेज़ पोलिन ह्विटमैन, उसकी मां और उसकी वहन को लिखे थे। स्वामी राम अपने निराले ढंग से मिसेज़ पोलिन ह्विटमैन को 'कमलानन्द' और उसकी मां को 'चम्पा' के नाम से पुकारते थे।

ॐ

१५ सितम्बर, १६०३.

सब से प्यारी बच्ची कमला,

तुम शुद्ध, पवित्र और पूर्ण निर्दोष हो। कोई त्रुटि नहीं, कोई धब्बा नहीं, दुनियादारी गायब, न कोई शंका, न कोई पाप!

यदि तुम्हारा जी चाहे तो तुम निम्नलिखित विचारों को अपने काव्य में पिरो सकती हो। ऐसे प्रयास में लगे रहने से तुम्हारा चित्त सर्वोच्च लोकों में विचरण करने लगेगा।

राम ने आज प्रातः काल एक फ़ारसी कविता बनायी थी। यह उसी का भावार्थ है। पोर्टलेण्ड या डेनवर में रहते हुए भी तुम उसे कविता रूप में ढाल सकती हो। ऐसा प्रयास करके देखो तो सही!

तुम्हें विचारों को अपने अनुकूल करने का पूर्ण अधिकार है।

१. ऐ तूफ़ान, उठ और ज़ोर शोर से आंधी पानी बरसा कर। ओ आनन्द के महासागर! पृथ्वी और आकाश को तोड़-फोड़ कर एक कर दे। गंभीर से गंभीर गोता लगा, जिससे विचार और चिन्तायें छिन्न-भिन्न हो जायं, जिससे कहीं उनका पता ही न चले। भला, राम को उनसे क्या काम?

२. आओ, हम लोग पियें, ख़ूब पियें, इतना अधिक पियें कि बेसुध हो जायँ। आओ, अपने हृदय से द्वैत की भावना को चुन-चुन कर निकाल डालें, अपने ससीम अस्तित्व की दीवालों को जड़ से ढहा दें, जिससे आनन्द का वह महासागर प्रत्यक्ष लहराने लगे।

३. आओ, प्रेम की मादकता! जल्दी चढ़ो, प्रेम की मस्ती! तुरन्त

हमें डुबा दो, विलम्ब करने से प्रयोजन ! मेरा मन अब एक पल, एक निमिष के लिये भी इस दुनियादारी में फंसना नहीं चाहता। ओ, इस मन को तो अपने में, उसे प्यारे प्रभु में डूब जाने दो, शीघ्रता करो, शीघ्रता करो और उसे जलते हुए तन्दूर की अग्नि से बचा लो, बचा लो।

४. इस मैं और मेरे, तू और तेरे के झमेले में आग लगा दो। आशाओं और आशंकाओं को उतार फैंको। टुकड़े टुकड़े करके गला दो, द्वैत की भावना जड़ से उड़ा दो, हवा में काफूर हो जाय। कहां सिर, कहां पैर, कहीं कुछ पता न रहे।

५. रोटी नहीं, न सही। पानी नहीं, न सही। आश्रय और विश्राम नहीं, न सही। पर मुझे तो चाहिए प्रेम की, उस दिव्य प्रेम की प्यास और तड़प। एक इस ढांचे की क्या, तेरे प्रेम की बलिवेदी पर ऐसे लाखों, करोड़ों ढाँचे—हड्डियों के ढांचे स्वाहा जायँ तो भी थोड़ा है।

वह देखो, पश्चिमीय क्षितिज—
कैसी रंग-बिरंगी प्रभा से जाज्वल्यमान हो उठा है।
अरे, क्या सूर्य की आभा इसे सुशोभित कर रही है प्यारे!
वह तो तेरा अपना प्रकाश है।

तुम्हारा निजात्मन्
राम

ॐ

शास्ता स्प्रिंग्स
जुलाई २२, १९०३.

परम कल्याणमयी चम्पा,

शायद तुम को इस प्रकार पुकारा जाना पसन्द न आये। किन्तु तुम पसन्द करो या न करो, राम को तुम्हें इस नाम से पुकारना अच्छा प्रतीत हुआ है। हिन्दुस्तान की भाषा में प्रत्येक नाम का एक विशेष अर्थ

होता है और चम्पा नाम (जो प्रायः श्रेष्ठ परिवारों की लड़कियों को दिया जाता है) का शाब्दिक अर्थ है मधुर सुगंध से पूर्ण खिला हुआ पुष्प विशेष !

राम ने ज्यों ही इस पत्र को लिखने के लिये कलम उठाई त्यों ही अनायास भीतर से यह नाम राम के सामने प्रकट हुआ।

हाल ही में तुम्हारे सभी प्रश्नों के उत्तर में एक लम्बा पत्र कमला (पोलिन) को लिखाया गया था। वह पत्र तुम्हें दिया गया या नहीं? उसमें राम की कुछ नूतन रचनायें भी थीं।

वेदान्त के आदेश

१. वेदान्तिक धर्म का निचोड़ केवल एक ही आदेश में संग्रहीत किया जा सकता है—

अपने आप को सदैव पूर्ण शान्त और आनन्दमग्न रखो, चाहे जैसी घटना हो, उसमें व्याघात न होना चाहिए। भूख-प्यास, रोग दुख, अपमान, लज्जा और मृत्यु! सदैव प्रसन्नचित्त और शान्त रहो, क्योंकि तुम तो परमात्मा, परम तत्त्व हो, जिसे तुम कभी नहीं भूल सकती, जिसकी तुम कदापि अवहेला नहीं कर सकती।

२. यदि तुम अपनी वास्तविक आत्मा के राज-सिंहासन पर बैठने के लिये तत्पर हो जाओ तो संसार, उसके निवासी, उसके सम्बन्ध—सभी कुछ न जाने कहां लोप हो जायंगे।

जांच करो, देखो और परखो अथवा कोई और भी काम करो किन्तु करो उसे अपनी वास्तविक आत्मा के प्रकाश में—अर्थात् यह कभी मत भूलो कि तुम्हारी आत्मा इन सब से ऊपर है, सारी आवश्यकताओं से परे है।

तुम्हें वास्तव में किसी चीज़ की आवश्यकता नहीं है। तुम्हें किसी चीज़ की इच्छा ही क्यों होना चाहिए? अपने सारे काम संसार के स्वामी के महिमामय गौरव से करो, खुशी के लिये, खेल के लिये, केवल

मनोरंजन के हेतु। कदापि, कदापि इसका अनुभव न हो कि तुम्हें किसी बात की आवश्यकता है।

३. जब तुम वेदान्त के इन सिद्धान्तों को जीवन में उतार लोगे, अपने आप उस सत्य की मधुरतम ज्योति तुम्हारे अन्तर से चारों ओर बिखरने लगेगी।

सोने से पहले—जब आंखें बन्द होने लगे—दोपहर हो या रात्रि हो, तब अपने मन में ऐसा दृढ़ निश्चय करो कि तुम जागने पर वेदान्त की, सत्य की साक्षात् मूर्ति के रूप में प्रकट होगे।

जब तुम जागो तब अन्य कोई काम करने के प्रथम अपने अन्तःकरण में पुनः उस संकल्प का चित्र खींचो, जो सोने के पहले किया था।

जब भी संभव हो, तभी ज़ोर से या मन ही मन ओम्! ओम्! ओम्! गाओ और गुनगुनाओ।

इस प्रकार तुम सचमुच असली चम्पा के फूल की भांति हर समय अपने चारों ओर मधुर चित्ताकर्षक सुगंध बिखेरती रहोगी।

तुम्हारे रूप में—
राम स्वामी

पुष्कर, ज़िला अजमेर
फ़रवरी २२, १९०५.

परम कल्याणमयी भगवती,

यहां जहां राम है, वहां कैसी सुन्दर और मनोहर ऋतु है! प्रति दिन वर्ष का नव दिन और प्रति रात्रि क्रिस्मस की रात्रि बनी हुई है। नीलाम्बर है मेरा प्याला और चमकदार किरणें मेरी सुरा।

मैं पहाड़ियों की मन्द मन्द वायु हूँ, जो उड़ती है, बराबर उड़ती ही रहती है। पहाड़ियों से मैं शहरों और नगरों में उतर जाती हूं—हरी भरी और स्वच्छ—मैं सड़क-सड़क में फैल जाती हूँ।

उसे छुआ, पुरुष को छुआ, स्त्री को छुआ, तुम्हें छुआ, यह सब मेरा खेल और मनोरंजन चलता ही रहता है।

"मैं प्रकाश हूँ—अपने प्यारे बच्चों—फूलों और पौधों को प्रेम से खिलाता रहता हूँ। मैं उन्हीं की आंखों में, उन्हीं के हृदय में रहता सहता हूँ, जो सुन्दर और सबल हैं।

तुम मेरे साथ रहो तब करूंगा मैं प्रार्थना
तुम मेरे ही संग रहो सदा दिन भर निशि भर—
औ तब तक जब कि दिवा-निशि हो जाते विलुप्त
तुम चुपके चुपके साथ रहो, अब दूर यहाँ से मत जाओ!
मुझको तुम छोड़ न जा सकते।
मैं भी हूँ वहीं, जहाँ तुम हो।
दृढ़ता से मैंने तुम्हें पकड़ रक्खा है।
बालुका तटी पर? नहीं, न सागर-लहरों पर
प्रत्युत अपने प्राणों में मैंने बाँध रखा है तब प्राणों को।

प्रकाशों के प्रकाश में निवास करने से मार्ग अपने आप खुल जाता है। जब प्रेम और ब्रह्मज्ञान के मधुर प्रकाश की छटा फैलती है तब काम-काज अपने आप सुचारु रूप से सम्पादन होने लगते हैं (जैसे गुलाब की कली सूर्य-ताप से स्वतः अपना मुंह खोल देती है।)

आशा है, तुम्हें Thundering Dawn थंडरिंग डान (घनघोर प्रभात) का जनवरी अंक पूरन, सूत्रमंडी, लाहौर से प्राप्त हुआ होगा।

तुम्हारा अपना आप
स्वामी रामतीर्थ

जनवरी के अंक में तुम्हारी कवितायें 'कमलानन्द' के नाम से—पूरे संन्यासी के नाम से—प्रकाशित हुई हैं।

आगे यदि तुम कोई नूतन रचना भेजो तो, यदि तुम्हें पसन्द पड़े, ओम् के नाम से प्रकाशित करना।

प्यारी कल्याणमयी गिरिजा और सब को प्रेम, आशीर्वाद, आनन्द,

शान्ति ! शान्ति !! शान्ति !!!

ॐ ॐ ॐ

पुष्कर, जिला अजमेर, भारतवर्ष

आनन्द ! आनन्द ! आनन्द !

शान्ति, कल्याण, प्रेम !

परम कल्याणमयी प्रियतम आत्मन्,

शान्त, स्वच्छ, गम्भीर और गहरी झील के किनारे राम का डेरा जमा है। उसके चारों ओर प्रायः एक सी ऊँचाई की पहाड़ियों की एक लम्बी पंक्ति फैली है जिन पर मानों एक सुन्दर हरित वर्ण शाल चढ़ा हुआ है। राम के निवासस्थल में दो फुलवगियाँ हैं जहां शानदार मोरों के झुण्ड निरन्तर आलाप किया करते हैं। बतखें झील में गोता लगाती तैरती हुई मौज लूटती हैं। नारायण स्वामी (जिसके बारे में राम ने तुम्हें बताया होगा) यहां राम के लेखों की प्रतिलिपि में सहायता दे रहा है।

यह झील पृथ्वी की आंख कहलाती है। जंगल से भरी हुई पहाड़ियों और चट्टानों को उसकी लटकती हुई भवें समझो। वह एक दर्पण है जिसे कोई पत्थर तोड़ नहीं सकता, जिसका पारा कभी उतरता नहीं. ऐसा दर्पण जिसमें फेंकी हुई सारी गन्दगी नीचे बैठ जाती है, जो सूर्य के चंचल प्रकाश के झाड़न से निरन्तर स्वच्छ और परिष्कृत होता रहता है।

यह सरोवर सचमुच एक सुन्दरतम चरित्र है, जो राम के देखने में आया है। कितनी सुन्दरता से उसकी पवित्रता स्थिर रहती है। इतनी अधिक लहरों के पश्चात् क्या कहीं उसमें एक भी सिकुड़न पड़ती है? जब देखो तब पूर्ण तरुण।

बस ऐसा ही हो जाय हमारा हृदय !

ये हरे लाल पंछी पेड़ों पर बैठे गाया करते हैं,
या वक्र पंक्ति में बैठ झुका सिर सपने देखा करते हैं;
हर एक वृक्ष पर इन्द्र धनुष छा जाता है।
मेरे सिर के ऊपर डालों पर गाते थे—
मृदु गायन ज्यों गाते गाते सो जाते थे।
ध्वनि क्षीण कि ज्यों दूरागत झरने का स्वर हो!
ये पंछी कभी नहीं देखा करते हमको—

अपनी आत्मा का आशीर्वाद, प्रेम, और शान्ति।

स्वामी राम।

निम्न लिखित दो पत्र स्वामी राम ने मिसेज़ ई. सी. केम्पबेल (डेनवर, कोलारेडो) अमेरिका की अपनी एक भक्तिनिष्ठा शिष्या को लिखे थे।

पोर्टलेंड ओर

मिसेज ई. सी. केम्पबेल,

जब मनुष्य किसी चीज़ पर अपना दिल लगाते हैं और जब बाधायें सामने आती हैं, तो वे बहुत भड़भड़ाते और क्रुद्ध होते हैं। ऐसी स्थिति में बिना अपवाद के उत्तेजना और भड़भड़ाहट का एकमात्र यह कारण होता है कि हम तुरन्त सामने दिखायी देनेवाली बाधा के विरोध की चेष्टा करते हैं। देखो तो, ईसा के हृदय में उस समय कितनी शांति होगी जब उसने कहा था—'अशुभ का विरोध मत करो।' सदा शान्त रहो और जो कुछ भी सामने आवे, प्रसन्नता से उसका स्वागत करो, फिर वह चाहे तुम्हारी इच्छा की धारा के विपरीत ही क्यों न जावे। जब हम केन्द्रच्युत न होकर अपनी आत्मा में निवास करते हैं, तब राम ने स्वयं अपने निजी अनुभव से देखा है कि प्रत्यक्ष बुराई भलाई में बदल जाती है। क्या तुम्हें याद नहीं कि कैसे एक प्रत्यक्ष बुराई के अनन्तर

१० रुपये उस हिन्दू विद्यार्थी को भेजे गये थे। अपने ही चिड़चिड़ेपन एवं अनात्मवृत्ति के द्वारा हम अपने लिये, शुभ वरदानों, उत्तम विचारों और सौभाग्य के अवसरों का द्वार बन्द कर देते हैं, जो अन्यथा हमें अवश्य ही प्राप्त होते। हर एक बुराई और हर एक कठिनाई का एक ऐसे हृदय से सामना करो, जो शरीर और सांसारिक जीवन को सदा अपनी हथेलियों पर लिये रहे। दूसरे शब्दों में, जो हृदय पूर्णतः प्रेम में सराबोर हो, उससे बढ़कर संसार में और कोई शक्ति नहीं।

तुम्हारी ही प्रियतम आत्मन्,
राम स्वामी

पोर्टलेण्ड, ओर.

ओम्! ओम्!!

मिसेज ई० सी० केम्पवेल,

तुम निरन्तर राम की स्मृति में निवास करती हो।

तुम इतनी सच्ची, शुद्ध, उत्तम, सरलहृदया, स्वामिभक्ता और कितनी अच्छी हो! तुम क्या इसे अनुभव नहीं करती?

१. मन में एक व्यक्ति की किसी दूसरे व्यक्ति से तुलना करना, उसे अपेक्षाकृत श्रेष्ठ अथवा विरोधी ठहराना।
२. किसी दूसरे व्यक्ति के साथ मन ही मन स्वयं अपनी तुलना करना।
३. भूतकाल को वर्तमान के सामने रखना और भूतकाल की गलतियों पर पश्चात्ताप करना।
४. भविष्य की योजनाओं पर मनन करना और किसी चीज़ से डरना।
५. केवल एक परमतत्व परमात्मा के सिवा अन्य किसी वस्तु में दिल लगाना।
६. बाहर के दिखावों पर विश्वास करना और व्यवहार्यतः पूर्ण हृदय से उस आन्तरिक सामंजस्य और समता में विश्वास न करना, जो सबका शासक है।

७. लोगों के शब्दों को सुनकर अथवा उनके ऊपरी व्यवहार को देख कर झट से परिणामों पर कूदना।

८. लोगों से बातचीत करते हुए इतने आगे बढ़ जाना कि अन्त में इन बातों से मन में असंतोष पैदा होने लगे।

अतः दुःख का सूत्रपात करने वाली इन आठ बातों से सदा दूर रहो। ओम्।

तुम्हारा ही श्रेष्ठ आत्मन्
राम स्वामी

निम्नलिखित पत्र में स्वामी राम ने कोमल किन्तु दृढ़ स्वर में स्वामी शिवगणाचार्य को बतलाया है कि उनका उद्देश कोई आडम्बर बनाकर स्वार्थपूर्ण व्यक्तिगत अभ्युदय करना नहीं है, वरन् वे उससे कहीं उच्च आदर्श की पूर्ति करना चाहते हैं।

किशनगढ़

नारायण,

डाक्टर लोग कहते हैं कि जब तक हमें अन्दर से भूख न हो तब तक कदापि भोजन न करना चाहिए, फिर भोजन चाहे जितना मधुर और स्वादकर क्यों न हो, अथवा हमारे मित्र एवं सम्बन्धी खाने के लिये कितना ही अधिक आग्रह क्यों न करें ? आपने जो कुछ लिखा, वह सब ठीक है। यदि मैं तुरन्त चल पड़ूं तो निस्संदेह स्वयं आप के एवं किशनगढ़ राज्य के सुयोग्य मन्त्री के सहवास का उत्तम अवसर प्राप्त हो सकता है। आप दोनों के सद्परामर्शों का भी लाभ मुझे मिल सकता है। किन्तु मेरी अन्तरात्मा इस समय मुझे ठहरने के लिये कहती है— यह आशा दिलाकर कि शायद भविष्य में, जब मैं पूर्णतः स्वतन्त्र हो जाऊं तब इससे भी बढ़कर उपयोगी अवसर मेरे हाथ आवें। अपनी पहले की असफलताओं से—यदि उन्हें मैं असफलताओं का नाम दूं— मैं किसी प्रकार उद्विग्न नहीं होता। मुझे पूर्ण आशा है कि मेरे भविष्य

जीवन में सफलताओं की कमी न रहेगी! मैं यहां जो कुछ कर रहा हूं, वही मैं समझता हूँ कि किशनगढ़ में हम लोगों की मित्रगोष्ठीका परिणाम होगा। इसमें कोई संदेह नहीं कि हमें उपयोगी सुअवसरों से लाभ उठाने में कभी असावधान न होना चाहिए। किन्तु साथ ही हम कभी अधीर भी न हों। हम सब काम चाहते हैं। इस उद्देश के हेतु कि मैं अपने देशवासियों में शक्ति और क्रियाशीलता का संचार कर सकूं, मैं समझता हूँ कि मेरे पास स्वयं शक्ति का अति विशाल संचय होना चाहिए। समय आने दीजिये, आप संभवतः अवश्य मेरे साथ होंगे।

यदि मुझे केवल छोटी-मोटी बातों के बारे में ही 'हो हल्ला' नहीं मचाना है, यदि सचमुच अपनी मातृभूमि की कोई ठोस और वास्तविक सेवा करनी है, यदि मैं वास्तव में देश के लिये उपयोगी बनना चाहता हूँ तो मुझे ऐसा लगता है कि इस भारी काम के सर्वथा योग्य बनने के लिये अभी मुझे कुछ और तैयारी की आवश्यकता है।

मैं यहां पर अपने शास्त्रों एवं सर्वोच्च पाश्चात्य विचार-धारा का गहन अध्ययन कर रहा हूँ, साथ ही मेरी स्वतन्त्र शोध भी चल रही है। मुझे इस काम में सारा जीवन न लगाना होगा। वरन् मैं शीघ्र ही उस ज्ञान को, जिसे मैं इतने निरन्तर दुस्साध्य परिश्रम के द्वारा संचय कर रहा हूँ, मनुष्यमात्र के हृदय और व्यवहार में पैठाने के लिये निकल पड़ूंगा। मुझे पूरा निश्चय हैं कि यदि मैं चाहता तो इससे बहुत पहले ही देश में एक छोर से दूसरे छोर तक घनघोर हलचल मचा देता किन्तु मेरी अन्तरात्मा है। मैं व्यक्तिगत नाम, वा लाभ के लिये अथवा किसी भय और किसी तात्कालिक संकट से, यहाँ तक कि मृत्यु के भय से भी— किसी ऐसी बात का प्रचार नहीं करना चाहता जिसे मैंने स्वयं सत्य के रूप में अनुभव न किया हो।

यदि सत्य में कोई शक्ति है—और निस्संदेह वह अनन्त शक्ति है— तो राजा लोग भी और साधुगण भी, उच्च श्रेणी के लोग और साधारण

जनता—सभी को उस सत्य और धर्म के आगे सिर झुकाना और आदर करना होगा, जो रामतीर्थ स्वामी उन्हें बतलाना चाहता है। मैं इस काम के सर्वथा योग्य हूँ और यदि मैं किसी उतावली या अधैर्य के वश होकर किसी छोटे-मोटे काम में अपने को जुटा देता हूँ तो मैं अपनी शक्तियों का दुरुपयोग ही करूँगा।

मुझे प्रचार करना है; अन्यथा बचपन से ही क्यों मैं इस इच्छा को हृदय के भीतर इतने प्रेम से पालता रहा हूँ। मुझे प्रचार करना होगा, अन्यथा मैंने अपने माता-पिता, स्त्री-बच्चे, लौकिक—पारलौकिक उज्ज्वल भविष्य को तिलांजलि ही क्यों दी? ज्ञान की दिव्य प्रभा को अपने भीतर संचित करके, मुझे बाहर प्रचार करना होगा—वीरता से और निर्भीकता से—यहां तक कि सभी प्रकार की यातनाओं और विरोधों की उपेक्षा करते हुए मुझे उस ज्ञान का प्रचार करना होगा—जिसे मैं यहां अपने में अनुभव कर रहा हूँ।

अपने भविष्य के कार्यों के लिये रुपया रखने के आपके परामर्श को साधुवाद और धन्यवाद!

नियमित व्यायाम, स्वास्थ्य उत्तम, जलवायु अत्यन्त रुचिकर! आपको और बाबू साहब को शान्ति की कामना के साथ—

—रामतीर्थ स्वामी

निम्नलिखित अवतरण में कुछ वे पत्र हैं जो उन्होंने स्वामी नारायण को लिखे थे और जो प्रकाशन के लिये 'अनन्त जीवन का नियम' शीर्षक से संक्षिप्त कर लिये गये। उनके इन पत्रों में उनके हृदय की गम्भीरता को भेदना अति दुष्कर है। ये उन्होंने अमेरिका से लौटने पर लिखे थे। इनमें उनके जापान और अमरीका के भाषणों जैसा आनन्द-विभोर हृदय का अनायास फूट पड़ने वाला आह्लाद उतना नहीं दिखाई देता जितनी कि ज्ञान की गरिमा।

राम किसी 'मिशन' का दावा नहीं करता। उसे देवदूत बनने की इच्छा नहीं। काम मात्र तो ईश्वर का है। हमें बुद्ध और अन्य देवदूतों के उदाहरणों और प्रमाणों से क्या करना है? हमारे मन को तो सीधे 'ईश्वरीय नियम' की आज्ञाओं के वशवर्ती होना चाहिए। बुद्ध और ईसामसीह को भी मित्रों और अनुयायियों ने छोड़ दिया था। देखो, अरण्यजीवन के सात वर्षों में से बुद्ध को अन्तिम दो वर्ष बिल्कुल एकाकी बिताने पड़े थे और तब कहीं उन्हें देदीप्यमान प्रकाश प्राप्त हुआ था। और उसके बाद शिष्यों के झुण्ड के झुण्ड उनके पास जुटने लगे। तब उनका स्वागत हुआ। अपने शुभचिन्तक आदरणीय परामर्श-दाताओं की रायों और विचारों से प्रभावित होना व्यर्थ है। यदि सच-मुच उनके विचार उस 'ईश्वरीय नियम' से एकस्वर होते तो उन्होंने न जाने कब के ढेरों के ढेर 'बुद्ध' संसार में पैदा कर दिये होते।

धीरे-धीरे और दृढ़ता के साथ जैसे मधु में फंसी हुई मक्खी एक-एक करके अपने पैरों को खींचने की चेष्टा करती है, उसी प्रकार हमें नाम-रूप और व्यक्तियों के प्रति अपनी आसक्ति के कण-कण को हृदय से दूर करना होगा। एक के बाद एक सभी नाते-रिश्ते काटने होंगे, सभी सम्बन्ध तोड़ना पड़ेंगे—उसके पहले कि ईश्वर की कृपा के रूप में मृत्यु हमें अनिच्छा-पूर्वक सब कुछ त्याग करने के लिये बाध्य न कर सके।

'ईश्वरीय नियम' का चक्र बड़ी निर्दयता के साथ घूमता है। वह उस पर सवारी करता है, जो उसके विरुद्ध अपनी इच्छा को खड़ा करता है। ऐसा व्यक्ति अवश्य कुचला जायगा और नारकीय यातनायें भोगेगा।

ईश्वरीय नियम अग्निरूप है। वह सभी सांसारिक आसक्तियों को जला डालता है। वह अज्ञानी मस्तिष्क को झुलसा देता है किन्तु वह हृदय को शुद्ध करके आत्मा को आवृत करने वाले सभी विषैले कीड़ों को भी समूल नष्ट करनेवाला है।

धर्म हमारे प्राणों का प्राण है और हमारे जीवन में उसी प्रकार

राम शिष्य श्रीमन्नारायण स्वामी

सर्वव्यापक है जैसे भोजन की क्रिया। धर्म से विमुख नास्तिक मानो स्वयं अपनी ही पाचन-क्रिया से अनभिज्ञ है। ईश्वरीय नियम हमें तलवार की मार से धार्मिक बनाता है। वह हमें कोड़े मार-मार कर जगावेगा। इस नियम से किसी प्रकार हमारा छुटकारा नहीं हो सकता। ईश्वरीय नियम ही सत्य है, और सब मिथ्या। सभी नाम-रूप और व्यक्तियां उस ईश्वरीय नियम के महासागर में बुलबुले मात्र हैं। सत्य की परिभाषा है 'वह जो सदा विद्यमान रहे।' अब देखो कि क्या संसार की कोई भी चीज़, कोई नाम-रूप, कोई सम्बन्ध, कोई शरीर, कोई संगठन, कोई समाज उतनी ही दृढ़ता से विद्यमान रह सकता है, जितनी दृढ़ता से त्रिशूल का यह नियम स्थिर है!

प्रश्न यह है कि क्यों भ्रान्त, अदूरदर्शी जीव उस आदर्श नियम की अपेक्षा नाम-रूपात्मक व्यक्तियों को अधिक प्यार करते हैं। इसलिए कि अज्ञान के कारण उनको संसार के व्यक्ति एवं अन्य दृश्य पदार्थ सदा टिकने वाले ठोस मालूम होते हैं और वे ईश्वरीय नियम को हवाई, क्षण-क्षण में बदलने वाला, बादल जैसा अवास्तविक समझते हैं।

प्रकृति उन्हें यह पाठ पढ़ाना चाहती है कि एक मात्र 'त्रिशूल' का नियम ही अन्तिम तथ्य है और संसार के सभी व्यक्ति एवं हमारे प्यार की सभी वस्तुयें थोड़ी देर का तमाशा, केवल छाया या माया जैसी काल्पनिक हैं। यदि वे सीधे सीधे उस पाठ को सीखने लगते हैं तो कठोर ठोकरों और दुखद धक्कों से बचा लिये जाते हैं। प्रकृति-नियामक 'शिवजी' खेल खेलने में बड़ा पटु है। हमारे जीवन की मीठी और कड़वी चीज़ें, ऊपरी सौंदर्य एवं भयंकरता उसी के विभिन्न भेष हैं, जो वह हमें अपने दर्शन, अपना प्रकाश दिखाने के लिये धारण किया करता है।

जब हम अपने मित्रों और शत्रुओं के रूपों को सत्य मान बैठते हैं, तब वे हमें धोखा देते और विश्वासघात करके साथ छोड़ बैठते हैं। और जब हम बदला लेना प्रारम्भ करते हैं, उन्हें दुष्टप्रकृति समझ कर

उनके प्रयोजनों पर संदेह करते हैं, तब मामला और भी बिगड़ जाता है। उनका पहला विद्रोह तो इस कारण हुआ था कि प्रेम के मारे हम उन्हें वह सचाई, वास्तविकता प्रदान कर बैठे थे, जो एकमात्र उस ईश्वर का स्वरूप है। अब जब हम उनका विरोध करते हैं तो मानो हम अपनी पहली भूल को और गम्भीर बनाते हैं, उनसे घृणा करके हम उनके रूपों को और भी सच्चा मानते हैं और इस प्रकार अपने ऊपर और अधिक दुख-दर्द बुलाते हैं। सावधान हो जाओ! पूर्ण त्याग, पूर्ण सन्यास, 'शिवरूप' ही जीवन का अन्तिम प्रयोजन है। वही एक-मात्र जीता-जागता तथ्य है, ठोस कहलाने वाले पत्थरों से भी वह कहीं अधिक कठोर है! अतः पाषाणलिंग द्वारा उसे व्यक्त करना कुछ अनुचित नहीं हुआ। असावधान हृदय को ठीक मार्ग पर लाने के लिये वह पत्थरों से अधिक कठोर चोट करता है। उसे निरन्तर ध्यान में रखना हमारी अनिवार्य आवश्यकता है।

मुसलमान और ईसाइयों ने इस ईश्वरीय नियम को घय्यर (ईर्ष्यालु) और क़हर (भयानक) कहने में कोई गलती नहीं की। यथार्थ में वह व्यक्तियों का शील रखने वाला नहीं। चाहे कोई हो, जो भी संसार की किसी चीज़ में दिल लगायगा, प्रकृति का क्रोध अवश्यमेव उसे भोगना पड़ेगा और फिर भोगना पड़ेगा। लोग सत्य का यह पाठ सीखने में प्रमाद करते हैं, क्योंकि उनमें ठीक-ठीक निरीक्षण की शक्ति नहीं होती। वे अधिकतर जब स्वयं उनके व्यक्तित्व से सम्बन्ध की कोई बात होती है, तब उसका कारण स्वयं अपने में नहीं ढूंढते अपितु तुरन्त दूसरों को उन अपराधों के लिये दोष देने लगते हैं। वे एक निष्पक्ष साक्षी की भांति स्वयं अपने ही अन्तःकरण की वृत्तियों और भावनाओं और उनसे होने वाले दुष्परिणामों का विश्लेषण और आत्म-निरीक्षण करना नहीं जानते। धोखा और प्रवंचना हमें मिलेगी, और फिर मिलेगी, जब तक हम नाम-रूप का विश्वास करेंगे अथवा जब हम अपने हृदय के अन्तस्तल में उन झूठी

चीज़ों और व्यक्तियों को वह आदर प्रदान करेंगे, जो एक मात्र उस अन्तिम तथ्य परमात्मा को मिलना चाहिए। दूसरे शब्दों में, जब हम अपने हृदय-मन्दिर में भगवान् के बदले केवल पाषाण की प्रतिमा प्रतिष्ठित कर बैठते हैं। तर्कसंगत अन्वयव्यतिरेक का नियम बिना किसी अपवाद के सदा अनात्म पदार्थों का मिथ्यापन, खोखलापन ही सिद्ध करना है।

ऐसे कितने ही अवसर आते हैं, जब हम सब भांति शिष्ट और भद्र पुरुषों के वचनों पर अवलम्बित होकर, उन लोगों में ईश्वर की अपेक्षा कहीं अधिक विश्वास जमा कर उनको ऐसा बना देते हैं कि वे फिर अपने वचनों का पालन नहीं कर पाते। कितनी ही बार हम स्वयं ईश्वर के नियम को भूलकर अपने बच्चों के शरीरों को इतना अधिक प्यार करने लगते हैं कि स्वयं उनके नाश अथवा मृत्यु का कारण बनते हैं। कितनी ही बार हम अपने सच्चे मित्रों पर इतना अवलंबित होते हैं, उनके व्यक्तित्व पर इतना आंतरिक विश्वास जमाते हैं जो केवल उस ईश्वर को, त्रिशूल को मिलना चाहिए। हम ही उन्हें झूठा, वचन-भंग करने वाला बना देते हैं। कितनी ही बार हम अपने जीते-जागते गुरुओं को उनकी आध्यात्मिक ऊँचाइयों से नीचे घसीट लाते हैं, क्योंकि हम उन्हें अपने में इतना अधिक विश्वास करने के लिये विवश करते हैं और हम स्वयं उन पर इतना अधिक अवलम्बित हो जाते हैं! ईश्वरीय नियम स्पष्ट है कि हमें अपने गुरुओं के व्यक्तित्व को भी प्रभात होने से पहले—मुर्गे के बांग देने से पहले तीन बार, तीन से भी अधिक बार—सत्यता प्रदान करने से नमस्कार कर लेना चाहिए। कितनी ही बार हम अपनी स्त्रियों को दिल सौंपकर, उन पर पूर्णतः अवलम्बित होकर, स्वयं गृहस्थी के झगड़ों का कारण बनते हैं और अनेक विपत्तियां बुलाते हैं। एक शब्द में, उस ईश्वर की अपेक्षा किसी भी वस्तु को अधिक महत्व दो और वह ईश्वरीय 'प्रेम' अपने तीक्ष्ण कटाक्ष से तुम्हारे हृदय को भेदे बिना, क्षत-विक्षत किये बिना न रहेगा, न रहेगा!

अन्य लौकिक अयोग्य प्रेमों की क्या चर्चा की जाय, स्वयं गोपियों का उदाहरण क्यों नहीं देखते। उन्होंने भगवान् विष्णु के अवतार श्रीकृष्ण के मनोहरतम स्वरूप पर अपना दिल लगाया था फिर भी उन्हें अपनी इस भूल के कारण रक्त के आंसू बहाने पड़े! हाथ क्या लगा? शुद्ध एवं पवित्र प्रेम की अवतार सीतादेवी भगवान् राम के देदीप्यमान स्वरूप की सत्यता में विश्वास कर बैठीं! लो, उन्हें भी, अपनी इस भूल के कारण उस निष्ठुर अमूर्त राम के द्वारा, वास्तविक राम के द्वारा अपने स्वामी, संसार के स्वामी के द्वारा घनघोर वनों में घसिटना पड़ा।

* * *

यह ठीक है कि लोगों ने मुहम्मद को ग़लत समझा और प्रायः ग़लत ढंग से ही उसका अनुकरण किया। किन्तु वह जो सत्य के दर्शन करता है, अवश्यमेव उसके आगे झुकेगा। यद्यपि उसका सत्य एकांगी ही था कि और नहीं तो (तलवार की धार से ही) तुरन्त उसका नाश कर दिया जाय, जो एक मात्र सत्य में—ईश्वर के सिवा और कोई चीज़ सत्य नहीं—व्यवहार्यतः विश्वास न करने के कारण धीरे धीरे अनेक आधि-व्याधियों का शिकार होता हुआ तिल-तिल करके मृत्यु के मुख में प्रवेश कर रहा है। ईसा मसीह ने सत्यता का यही पाठ पढ़ाया है, बुद्ध का भी यही उपदेश था और निस्सन्देह हमारे अपने ऋषियों में से प्रत्येक ने किसी न किसी रूप में इसी सत्य का उद्घोष किया है। किन्तु क्या उतने से काम चलता है? क्या उनके उपदेश और शिक्षायें इतने दिन जीवित रह सकती थीं, यदि उनके श्रोताओं के निजी अनुभवों द्वारा भी उनका हार्दिक स्वागत न हुआ होता! यदि युग-युगान्तरों में उस प्रकाश के सच्चे और शुद्धहृदय भक्तों ने बारम्बार उनके उपदेशों की परीक्षा न की होती और बारम्बार उसको अटल सत्य, एकमात्र सत्य न पाया होता।

त्याग और सन्यास का नियम एक कठोर सत्य है। कोई हवा में उड़नेवाली कल्पना-जल्पना नहीं। राष्ट्रों के राष्ट्र—क्या इन पैग़म्बरों और

नेताओं की केवल ऐसी भ्रमात्मक कल्पनाओं से इतने दिनों तक धोखे में पड़ सकते थे, उनके चक्कर में पड़े रह सकते थे! शताब्दियों के बाद शताब्दियाँ बीतती जाती हैं और क्या अभी तक इन पागलों की कल्पनाओं का भण्डाफोड़ न हुआ होता!

लोग अपनी विपत्तियों के वास्तविक कारण को न जान कर जो केवल उस 'ईश्वरीय नियम' की धारा से बेसुर हो जाते हैं, अपनी यातना के बाह्य चिह्नों, वर्तमान परिस्थितियों से लड़ना-झगड़ना प्रारम्भ करते हैं। चाहिए तो यह कि हम लोगों की अच्छी या बुरी बातें, उनका अच्छा या बुरा स्वभाव इस प्रकार अपनी चेतना से बाहर निकाल दें, जैसे रात के धुँधले स्वप्न अपने आप विस्मरण होकर लुप्त हो जाते हैं। स्वप्न चाहे भयंकर हों या मीठे, हम कभी उन्हें अपने अनुकूल बनाने अथवा उनसे झगड़ने की चेष्टा नहीं करते। करते हैं तो केवल अपने ही पेट को ठीक करने की चेष्टा करते हैं। इसी प्रकार हमारा अच्छे या बुरे, चाहे जैसे लोगों से मिलना-जुलना हो हमें उनकी कुछ परवाह न करके सदा अपनी आध्यात्मिक दशा को उन्नत करना चाहिए। देख, तेरे और तेरे ईश्वर के बीच में कोई बुरी प्रतीत होने वाली बात अथवा कोई अभाग्य किसी प्रकार बाधा न डाले। महान् से महान् अपमान इतना बड़ा नहीं हो सकता कि हम उसे क्षमा करके आत्मसन्तुष्ट न हो सकें।

ईश्वर की तुलना में कभी किसी चीज़ का मूल्य अधिक नहीं होना चाहिए। ईश्वर के समान और कुछ मूल्यवान् नहीं होना चाहिए। निन्दा और स्तुति, आधि-व्याधि और आमोद प्रमोद एक समान मालूम हो जाते हैं, यदि हम समझते हैं कि उनसे आत्मा आक्रान्त होती है। अपने आपको ईश्वर अनुभव करो और अपने आत्मभाव में आनन्द के गीत गाओ। निन्दा और स्तुतियों को ठीक ऐसे समझो, जैसे राम शारीरिक व्याधियों को उस ईश्वरीय दरबार का चपरासी मानता है, जो

सर्वोच्च अधिकार के साथ हमेंयह आदेश दिया करते हैं, "तुरन्त इस मकान, शरीर-चेतना से बाहर निकल जाओ"। पर जब मैं स्वयं दरबार के राजसिंहासन पर जा विराजता हूँ तो वे झट से मेरे आज्ञानुवर्ती बन जाते हैं। और जब तक मैं इस अन्धगुफा रूपी शरीर-चेतना; देहाध्यास, में घुसा रहता हूँ तब तक वे कोड़े मारते और वार पर वार करते हैं।

वे राज्यसत्तायें भी, जिनके तथाकथित नियम (क़ानून) 'त्रिशूल' के उस ईश्वरीय नियम से मेल नहीं खाते, स्वयं अपनी मृत्यु के लिये गड्ढा खोदती हैं। प्रसिद्ध कंजूस 'शाइलोक' की भांति अपनी व्यक्तिगत सम्पत्तियों पर ज़ोर देना, इस या उस चीज़ को अपनी समझना, सम्पन्नता की भावना रखना, यह कहना कि ऐसा करना क़ानून-सम्मत है, उस वास्तविक नियम का विरोध करना है जिसके अनुसार हमारा एक मात्र हक़, केवल हक़ (ईश्वर) है और दूसरे सब हक़ मिथ्या, ग़लत हैं। यदि और कोई दूसरे इस सिद्धान्त को स्वीकार नहीं करते हैं तो कम से कम संन्यासियों को तो अवश्य इसे अपने जीवन में उतारना चाहिए।

यह ईश्वरीय नियम सर्वव्यापक है, यह प्रत्येक मनुष्य के अस्तित्वमात्र की उच्चतम आत्मा है। इस रूप में वह स्वयं राम है। वही इस व्यक्तिगत आत्मा को ठोकरें मार मार कर प्राणहीन कर देगा! वह निर्दय है किन्तु उसकी निर्दयता ही प्रेम का मूलस्वरूप है क्योंकि इस दिखावटी आत्मा की मृत्यु से ही उस वास्तविक आत्मा और अनन्त, अनादि जीवन का पुनरुत्थान होता है। वह जो इस झूठी आत्मा से चिपटता है, जो इसके लिये परमात्मा—स्वामी आत्मा के विशेषाधिकारों का दावा करता है, एक दिन अवश्य ही मिथ्याहंकार की पहाड़ियों पर गिद्धों द्वारा हड़प किया जायगा। वेदान्त की स्वतन्त्रता का अर्थ यह नहीं है कि इस परिच्छिन्न स्थानीय आत्मा—व्यक्तित्व और शरीर—को उस ईश्वरीय नियम से मुक्ति मिल जाय। यह तो ख़ुद ख़ुदा को शैतान बना देना है। लाखों-करोड़ जीवन प्रतिक्षण इस भूल के कारण नष्ट

हो रहे हैं। हज़ारों मस्तिष्क निराशा के गर्त में डूब रहे हैं और हज़ारों-लाखों हृदय प्रतिक्षण उस 'ईश्वरीय नियम' के अज्ञानजनित विनर्दय से भग्नमनोरथ होते हैं। उस ईश्वरीय नियम से मुक्ति, स्वयं वही नियम बन जाने से ही मिल सकती है। दूसरे शब्दों में, केवल शिवोऽहम् का साक्षात्कार ही हमें वह मुक्ति दिला सकता है।

इन्द्रियों का शिकार, जो उन चीज़ों को गिनता रहता है जिन्हें तथ्य और आंकडे कहते हैं, जो नाम-रूप के आधार पर अवलम्बित है, वह मानों बालू की दीवार पर खड़ा है, एक न एक दिन अवश्य टूट जायगा। और वह सचमुच अटल आधार शिला पर खड़ा हुआ है जिसके हृदय के अन्तरतल में —

ब्रह्म ही सत्य है और जगत् मिथ्या और त्रिशूल का नियम है जीती-जागती अनन्त शक्ति!

* * *

वैदिक युग में किसी किसी अवसर पर क्वांरी लड़कियां हाथ जोड़कर अग्नि के चारों ओर इकट्ठी होती थीं और उस ज्योति की परिक्रमा करती हुई ऐसा गीत गाया करती थीं—हे भगवन्, हम सब उस सुगन्धमय भगवान, उस सर्वद्रष्टा भगवान्, उस पतिदाता भगवान् की सेवा-पूजा में डूब जायें। जैसे बीज भूसी से अलग होता है, वैसे ही हम भी यहां (पितृ-गृह) के बन्धन से मुक्त हों किन्तु वहां (पति-गृह) से कभी भी पृथक् न हों, कभी पृथक् न हों।

वही प्राचीन आर्य कन्याओं की प्रार्थना राम के अन्तस्तल से, हृदय की गम्भीरतम गहराई से निकल रही है और आंसुओ, ! आंसुओ ! तुम क्यों पागलों की भांति बहे जा रहे हो !

हे ईश्वर, हे त्रिशूल, हे सत्य ! यह सिर और यह हृदय तुरन्त उसी क्षण अलग अलग कर देना, यदि तेरे सिवा कोई अन्य सम्बन्ध उनमें निवास करे। ओ, शरीर के रक्त ! तू भी तुरन्त जलकर राख हो जा,

यदि तेरे विचार के अतिरिक्त और कोई विचार मेरी नस-नाड़ियों में चक्कर काटे।

दूसरी श्रुत—

"जैसे स्त्री पुरुष से, वैसे ही मैं तुझसे दीक्षित हूँगा, मैं तुझे और और अपने पास खींचूंगा, मैं तेरे होंठों को चूसूंगा। और तेरे अंग अंगों के गुप्त रसों को पियूंगा। ओ त्रिशूल! ओ नियम! ओ स्वतंत्रते! मैं तुझी से गर्भ धारण करूँगा।"

क्या राम त्रिशूल के साथ नहीं व्याहा गया? क्या सत्य के साथ, नियम के साथ उसका विवाह नहीं हुआ, जो उससे अब भी पति-वंचका की भांति अन्य शंका की जाती है!

"मेरे तो गिरिधर गोपाल दूसरा न कोई!"

—मीरा बाई

* * * *

लोग भगवान् से प्रेम करने में झिझकते हैं, क्योंकि वे सोचते हैं कि उससे हमें कोई वैसा प्रत्युत्तर नहीं मिलता, जैसा कि इन काल्पनिक संसार के प्रेम-पात्रों से मिलता है। यही वेवकूफ़ी, यही अज्ञान उनको भ्रमाये रहता है। ऐ प्यारे! देखो तो, *उसका हृदय* कैसे राम की श्वास-प्रश्वास के स्वर में तुरन्त ही, नहीं साथ ही साथ, प्रत्युत्तर के रूप में बराबर गिरता-उठता है।

अपने दिखावटी मित्रों और शत्रुओं में उनके व्यवहार का कारण ढूंढने की चेष्टा मत करो। वास्तविक कार्य-कारण तो एकमात्र तुम्हारी वास्तविक आत्मा में प्रतिष्ठित है। ध्यान से देखो तो सही!

जैसे, जब चिड़िया का बच्चा उड़ना सीखता है, तो पहले वह एक पत्थर से दूसरे पर, अथवा एक डाली से दूसरी डाली पर सहारा लेता है, किन्तु पृथ्वीतल के इन पदार्थों को छोड़ कर वह नभ-मण्डल में उन्मुक्त हो विचरण नहीं कर सकता, उसी प्रकार ब्रह्म-ज्ञान का शिशु किसी एक

पदार्थ से अपनी हार्दिक आसक्ति हटा कर अथवा किसी व्यक्ति से घृणापूर्वक उदास होकर तुरन्त किसी दूसरे पर अवलम्बित हो जाता है। वह उसी प्रकार के किसी दूसरे भ्रम का पल्ला पकड़ लेता है किन्तु इन तिनकों और नाजुक बेलों का सहारा छोड़ना पसन्द नहीं करता। वह अपने हृदय में एक साथ सम्पूर्ण पृथ्वी का त्याग नहीं कर पाता। किन्तु वह जो अनुभवी तथा ज्ञानी है, एक ही पार्थिक पदार्थ के प्रत्यक्ष विश्वासघात को ब्रह्म में निमग्न होने का साधन बना लेता है। धर्म की कला इसी बात में है कि हम अपने प्रत्येक छोटे से छोटे अनुभव को उस अनन्त में निमग्न होने का साधन बनालें। बाहर दिखाई देने वाली वस्तुएँ सब एक ही साथ जुड़ी हैं. एक वस्तु का वास्तवतः त्याग करते समय ज्ञानी अपने हृदय में उसे अन्य सब कुछको त्यागने का चिह्न और प्रतीक बना लेता है।

घोरतम मूर्ख है वह जो सचमुच इस तीक्ष्णतम सत्य को स्वीकार नहीं करता कि एकमात्र इस स्वार्थपूर्ण व्यक्तित्व की मृत्यु ही जीवन का नियम, अटल विधान है। त्रिशूल हमारे व्यक्तित्वों का नाश करनेवाला है। अपने हृदय से व्यक्तित्व की भावना को झाड़ देना, उस अनादि अनन्त जीवन में जागना, ही वास्तविक पुनरुत्थान का मार्ग है। तू सदा उसी में निवास कर! अलविदा!

ये वे कुछ पत्र हैं, जो उन्होंने भारतवर्ष में पर्यटन करते हुए विभिन्न लोगों को लिखे थे—

मुजफ्फरनगर
१८ अक्टूबर, १९०४.

प्रियतम,

विशाल हृदय !

हाथों में लिपटी हुई राख हमारी चमड़ी को साफ कर देती है।

सो उन शारीरिक रोगों के भाग्य को कितना सराहा जाय, जब वे अपने साथ चर्म-चेतना, देहाध्यास, को भी वहा ले जाते हैं।

स्वागत ! बीमारी और दर्द, स्वागत !

जितनी देर तक प्राणहीन मुर्दा घर में पड़ा हुआ है, तब तक हर एक प्रकार के संक्रामक रोग का डर बना रहता है। जब लाश हट गई, स्वास्थ्य का अटल राज्य हो गया ! ठीक इसी प्रकार जब तक शरीरचेतना का प्यारा बना हुआ है तब तक संसार के हर एक दुख दर्द को आने का लालच रहता है। शरीर और उस के बोझ को उतार फेंको, तुरन्त तुम शाहों के शाह बन जाओगे।

कितना प्रसन्न मैं !
ईर्ष्या द्वेष मिटे सभी, प्रिय का प्रियतम अब मैं—
मिटे पाप—पश्चात्ताप !
भूत और भविष्यत् अब कुछ पास नहीं !
मुझे सब खुश करते, सुख देते हैं,
इतना पवित्र, इतना प्रसन्न
मैं आज बना ! मैं आज बना !

विद्वान् महात्मा, जिनके सिर पर लम्बे बाल खड़े हैं और शोभनीय तोंदें है,

चश्मा धारी प्रोफेसर जो सीधे-सादे विद्यार्थियों को प्रयोगशाला और वेधशाला में चमत्कृत करते हैं,

नंगे सिरवाले व्याख्याता जो मंच या सिंहासन से श्रोताओं को मंत्रमुग्ध करते हैं,

वह दरिद्री श्रीमान् भी जिसे किसी न किसी प्रकार की शिकायत बनी रहती है—

मैं यह सब हूँ,
मैं गगन और मैं हूँ तारे,

हैं दूर निकट के विश्व सभी,
मेरे उस स्वर में बँधे हुये
मैं जिसे गुनगुनाया करता।
कोई प्रतिस्पर्द्धी शत्रु नहीं,
अब हानि कष्ट व्यापते नहीं
नुकसान करेगा क्या कोई ?
वह अमृतात्मा धारा बन कर
मेरी प्रिय आत्मा में मिलती।
ओ, सच्चा स्वास्थ्य यही तो है!
कलकल करने वाले झरने,
खुशियाँ भरने वाले सपने,
रावण हो या हो राम,
मुझे सब खुश करते, सुख देते हैं।
इतना पवित्र, इतना प्रशान्त।
मैं आज बना! मैं आज बना।

राम

ओम्

आनन्द! कल्याण! शान्ति! प्रेम!

परम कल्याणमयी प्रियतम आत्मन्,*

तीन महीने से राम एक पहाड़ की चोटी (लगभग ८००० फुट) पर संसार के सर्वोच्च शिखर माउण्ट ऐवरेस्ट के सामने रहता है! परसों वह नीचे मैदान में उतरेगा। पांच पुस्तकें लिखी गयीं और बीस पुस्तकें पढ़ी गयीं।

राम का हृदय शान्ति और आनन्द से परिपूर्ण है।

मानो मन से संसार ही विदा हो गया!

---

* मिसेज़ हिटमैन के नाम।

ईश्वर, केवल ईश्वर
सर्वत्र, स्थान स्थान पर
भीतर, और बाहर
पास और दूर!
ओ आनन्द!
उत्तेजक शान्ति
हलचल रहित आनन्द
दिव्य स्वर्ग!

शान्ति! आशीर्वाद! प्रेम!

स्वास्थ्य, आध्यात्मिक, मानसिक, शारीरिक और सभी चिरभिलषित कल्याण गिरिजा को, चम्पा को और तुम्हारे सब प्यारों को!

वर्षा की बूँदों में झरती है शान्ति अमर
सुधाधार गिरती है स्वर की वर्षा बन कर
रिमझिम, रिमझिम, रिमझिम!
घन ये गौरवशाली उड़ते आनन्द भरे
विश्व नये, हीरक कण जैसे ये बूँद झरें
रिमझिम, रिमझिम, रिमझिम!
मेरी यह नियम-वायु बहती संगीत भरी
झरती उससे है राष्ट्रों की पत्ती पँखुरी
रिमझिम, रिमझिम, रिमझिम!
मेरी ही साँसें हैं इस जग का नियम-पवन
बहता है जो सुन्दर सुन्दरतर सुन्दरतम
उसमें वस्तुएँ जगत की हिलतीं ज्यों टहनी
और कुछ गिरा करतीं ओस, बूँद बन कर ज्यों
रिमझिम, रिमझिम, रिमझिम!

मेरी गौरवशाली ज्योति श्वेत सागर है
या कि दुग्ध महासिन्धु लेता है हिलकोरें,
उठती ऊर्मियाँ यहाँ लघु-लघु कोमल-कोमल !
फिर करता गर्जन शतधा हो-हो कर गिरता—
बरसाता मैं हूँ तारे जैसे फुलझड़ियाँ
रिमझिम, रिमझिम, रिमझिम।

ओम्! ओम्! ओम्!

शान्ति! कल्याण! प्रेम! आनन्द!

(दार्जिलिंग पार्क)

परम कल्याणमयी परमात्मन्,

शायद तुम्हें यह ज्ञात होगा कि राम मसूरी से लगभग एक हज़ार मील दूर पहाड़ों में निवास करता है। राम एकदम अकेला एक पुराने मकान में रहता है, जो बंगाल के 'जंगल विभाग' का है। ओ कैसा दिव्य स्थान, रेल से दूर, डाकख़ाने से पृथक्, मिलने जुलने वाले आगन्तुकों की पहुंच से बाहर, संसार के सुन्दरतम दृश्यों से घिरा हुआ, पास ही में छोटी-छोटी क्रीड़ाशील जलधारायें और निर्झर, स्वच्छ वायुमण्डल में कुछ दूरी पर संसार के सर्वोच्च शिखर 'माउण्ट ऐवरेस्ट' का पूर्ण दिग्दर्शन! यहां पर भी जंगल के निवासी पहाड़ी राम के लिये ताज़ा-ताज़ा दूध ले आते हैं। जंगलों के विचरण एवं अध्ययन में राम का समय बीतता है।

भला, उस नाम-धाम, इच्छा, यश, धन, और वात्सल्य को लेकर क्या होगा "जब जंगलों में भगवान् का साक्षात् दर्शन होता हो।" क्यों हम करने-धरने के ताप से आक्रान्त हों और उसे प्यार करें?

राम तो ईश्वरमय रहेगा। प्रातः कालीन समीर चलती है, उसे परवाह नहीं, कितने और किस प्रकार के फूल खिलते हैं उससे? वह तो केवल यत्र तत्र स्पन्दन करती है। जो कलियां पल्लवित होती हैं, झट से उनको

आँखें खोल देती हैं। सिंह की माद, जंगलों की ज्वाला, अंधी गुफायें, भूकम्प के धक्के, गिरती हुई चट्टानें, तूफ़ान, युद्ध-क्षेत्र और निगलने वाली कब्रें—यदि उनके साथ ईश्वर चेतना—'ब्रह्म भाव' स्थिर रह सके तो वे उस यश, वैभव, तड़क-भड़क, सिंहासन, आमोद-प्रमोद और अन्य समस्त गौरवों से बढ़कर, कहीं बढ़कर हैं, जिनके साथ मनुष्य अपनी पूर्णता में नहीं रह पाता, अपने हृदय के एकान्त में परमात्मा के साथ, अद्वितीय के साथ नहीं रम पाता। ओ, सारे काम पूरे होने की खुशी, हलके पैरों से पर्यटन, कदम कदम अपनी यात्रा का अन्तिम लक्ष, हर एक रात्रि शारीरिक मृत्यु और हर एक दिन एक नया जन्म!

अलविदा! ऐ साथियो, नमस्कार!
यह सृष्टि-महल है लघु, अति लघु।
मैं ले निज प्यार, दूर इससे जा खेलूंगा
ओ साथ साथ वह जलक्रीड़ा! आनन्द परम!
पर नहीं, साथ क्या?
तैराकों की खुशी सिन्धु लहरों में ही घुल मिल जाती है!
आनन्द! आह्लाद।
ओम्

तुम्हारा अपना आप ओम्

(ये पत्र राय साहब बैजनाथ को लिखे गये थे।)

ॐ

वशिष्ट आश्रम
२७ मार्च १६०६.

परम कल्याणमय भगवन्!

यह आश्रम हिम-रेखा के ऊपर है। एक अत्यंत सुन्दर निर्झर—वशिष्ट नामक गंगा—ठीक राम की गुफा के नीचे बहती है। निर्झर में पांच-छः जल-प्रपात हैं। निर्झर की घाटी में मानो शिव ने स्वयं अपने

हाथों से कठोर चट्टानों को तोड़-फोड़कर प्रायः दो दर्जन सुन्दर तालाबों का निर्माण किया है। पहाड़ियों पर जंगल के वे सीधे सादे, प्रकाश-प्रेमी, विशाल-काय वृक्ष तने खड़े हैं, जिनकी हरियाली उस समय भी कम नहीं होती, जब कि छः छः फुट ऊँची बर्फ की तहें उनके ऊपर जम जाती हैं। वही निस्सन्देह उस महान् वनमाली कृष्ण की दया और प्रेम के सर्वथा योग्य पात्र हैं।

भगवान् महादेव के बच्चे—कोमलहृदय पक्षि और हरितस्कन्ध वृक्ष ही—यहां राम के एकमात्र साथी हैं। नारायण स्वामी नीचे मैदानों में भेज दिया गया है। कम से कम दो वर्ष तक उसे राम से भेंट न करने की आज्ञा हुई है। एक नवयुवक आकर प्रति दिन भोजन बना जाता है और रात्रि किसी समीपवर्ती ग्राम में काटता है। सबसे समीपवर्ती ग्राम भी यहां से तीन मील से कम दूर नहीं।

पहाड़ियों पर केवल आध मील चढ़कर राम इस पर्वत (वशिष्ठ) की चोटी पर पहुंच जाता है, जहां से सभी पवित्र हिमस्रोत—केदार, बदरी, सुमेरु, गंगोत्री, यमुनोत्री और कैलाश, स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लगते हैं।

'केदार खण्ड' में इस स्थान का सविस्तार वर्णन है। 'योग वाशिष्ठ' के निर्माता ने आश्रमपाद के लिये ऐसा ही उपयुक्त स्थान चुना था। बड़ा भाग्य है, कि अभी तक इधर कोई बस्ती अथवा सड़क नहीं निकली है। मस्ती, आनन्द! राम के आनन्द के बारे में मत पूछो! राम की सर्वश्रेष्ठ कृति, कुछ वर्षों के अनन्तर नीचे मैदानों में प्रकाशन के हेतु भेजी जायगी, उसी से राम के हृदय में न समाने वाली आह्लादकारक शान्ति का कुछ अनुमान हो सकेगा! कृपया उस समय तक कोई राम से भेंट करने की बात न सोचे—

ईश्वर परमात्मा ही एक मात्र सत्य है।

रात्रि में यदि प्यारे से भेंट न हुई,
तो फिर आँखों की ज्योति मेरे किस काम की ?

जो पड़ा सो रहा हो निष्प्राण क़ब्र में—
उसे भला क्या मिलेगा—
क़ब्र के ऊपर की हरी-भरी घास से ?
भला या बुरा लोग क्यों कहते हैं,
मेरे बारे में ?
जब शरीर से ऊपर उठ गया मैं—
तब उनकी प्रसन्नता और रोष
सब हो गया बेकार न !
पाप और पुण्य, भलाई अथवा बुराई
हैं सब उसके पास पहुँचने के ज़ीने।
लगा दो, आग उस ज़ीने में
अब मुझे उतरने की इच्छा ही नहीं।
ओ दुनियाँ, तेरा तुझ को दे दिया,
फिर जाती क्यों नहीं तू ?
मुझे तेरी ज़रूरत नहीं।
अब नहीं करूँगा तेरी आवभगत !
लो, नाचूंगा अब तो अपने प्रभु के साथ,
न कोई लाज, और न कोई रोक,
व्यर्थ है जीवन (जहाँ ब्रह्म की श्वास नहीं)
क़ब्र में कीड़े चुन-चुन खा जायेंगे,
और कहाँ है वह क़ब्र, इस शरीर के अतिरिक्त !
यह आत्मा भी धोखा निकली,
ओ हो ! अब तो कृपा करके
भगा दो, उड़ा दो उसे—
सदा के लिये !

आपका प्रत न कुम्भ के अवसर पर दिया व्याख्यान एक दम बढ़िया

रहा। राम ने उसकी एक प्रति टेहरी-महाराज को भेंट की। प्यारे, सुनो, वेदान्त कोई धोखाधड़ी नहीं है और न कहीं कोई इस संसार का अस्तित्व ही है। वह जो इसे सत्य मानता है, अवश्य नष्ट होगा। एक मात्र ब्रह्म ही सत्य है। निश्चय! निश्चय! निश्चय से! ओम्! ओम्!!

राम

ॐ

वशिष्ठ आश्रम
जून का अन्त, १९०६.

ब्रह्मभाव में स्थित होने पर यह सारा संसार ही सौंदर्य का समुद्र, आह्लाद का प्रकाश, आनन्द की वर्षा सा बन जाता है। जब दृष्टि की ससीमता नष्ट हो गयी तब फिर हमारे लिये असुन्दर कुछ भी नहीं रह जाता। सारा संसार ही निर्मल और सुन्दर हो उठता है। प्रकृति की शक्तियाँ सचमुच हमारे हाथ-पैर और अन्य इन्द्रियों की भांति काम करने लगती हैं।

आत्मा ही आनन्द है, वही सब कुछ है। अतः आत्मसाक्षात्कार का अर्थ है कि हम अपनी ही आत्मा को सच्चिदानन्द रूप जानें, जो सम्पूर्ण संसार के परदों में झांकी मार रहा है।

अखिल ब्रह्माण्ड, मेरी ही आत्मा का स्थूल रूप होने के कारण अत्यन्त मीठा, स्वयं साक्षात् माधुर्य है। फिर मैं किसे दोष दूँ? और किसकी आलोचना करूँ?

ओ परम सुख! सब कुछ मैं ही तो हूँ। ओम्!

सफलता और विफलता (अभाव) के विषय में आध्यात्मिक नियम बिल्कुल स्पष्ट है। वेदों ने इसे किस सुन्दर ढंग से वर्णन किया है—जहाँ किसी ने अपने हृदय के अन्तस्तल में छोटी-बड़ी किसी वस्तु का अपना दिल बनाया, उसे सत्य माना, अपने विश्वास के योग्य समझा, बस, अनिवार्यतः या तो वह पदार्थ उसे छोड़ जायगा, या धोखा देगा।

यह नियम गुरुत्वाकर्षण के नियम से भी अधिक ठोस, अधिक सत्य है। एकमात्र सत्य-स्वरूप आत्म रूप भगवान् हमें मार-मार कर संसार की अनित्यता का पाठ पढ़ाया करता है जिससे हम किसी भी वस्तु को सत्य मानकर कभी उसके भ्रम में न पड़ें।

कोई वस्तु, कोई वैचित्र्य —
ज्ञानी को बन्द नहीं कर सकता, भीतर—अज्ञान में
किंतु सर्वोपरि सूर्य की भांति वह तो
दुर्ग पर विजय पाकर निश्चय
चमकेगा भीतर और बाहर।
आकाश की भाँति वह स्थिर रहेगा,
जिस में बादल आते-जाते हैं,
जो अनादि दिवस के साथ रहता है सदा एकरस
उसमें कभी—
क्या कोई अन्तर आता है कभी?

जब तक किसी भी प्रकार की कोई इच्छा या वासना मनुष्य के हृदय में वास करती है तब तक आत्म-साक्षात्कार नहीं हो सकता, नहीं हो सकता! अटल सत्य, ध्रुव नियम!

सत्रहवाँ परिच्छेद

उनके देश की समस्या : भारतवर्ष पर उनके विचार

अमरीका से लौटने पर स्वामी राम भारतवर्ष की सभी प्रकार की समस्याओं पर— धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक सभी विषयों पर निरन्तर अपने महाप्रयाण के अन्तिम दिन तक बराबर कुछ न कुछ लिखते और बोलते रहे। वे अपने देशवासियों में एक नया दृष्टिकोण, एक नयी स्फूर्ति भर देना चाहते थे। वह यह कि किस प्रकार लोगों को भारतीय नागरिक के नाते अपने कर्त्तव्यों का पालन करना चाहिए। इसी हेतु उन्होंने अपने मौलिक व्याख्यान— 'सफलता के रहस्य' को अनेक रूपों, अनेकों पुस्तकों में फैलाया है।

संसार के सभी दार्शनिक सिद्धांतों में से वेदांत का सिद्धांत, जिसे स्वामी राम ने और उनसे पहले स्वामी विवेकानन्द ने प्रचारित किया, ऐसा है कि यदि उसका पूर्ण साक्षात् और अनुभव किया जाय तो वह हमें राष्ट्रीयता की अपेक्षा अन्तर्राष्ट्रीयता की ओर ही ले जायगा। क्योंकि राष्ट्रीयता है क्या ? केवल अपने व्यक्तिगत प्रेम का एक प्रसार-मात्र अथवा जन्म भूमि से एक प्रकार का मोह जिसमें हम रहते हैं। देशभक्ति की भावना मनुष्य के

अन्तस्तल में दबी हुई उस स्वाभाविक भूख से जाग्रत होती है जिसके अनुसार वह एक उत्तम, सच्चाई के साथ क्रियाशील जीवन व्यतीत करने के लिये लालायित रहता है। इसका उस समाधिजन्य आनन्द अथवा अन्य अलौकिक अनुभवों से कोई सम्बन्ध नहीं ! किन्तु यह स्वामी विवेकानन्द और स्वामी राम की विलक्षण बुद्धि थी जिसने अत्यन्त सफलतापूर्वक वेदांत जैसे निर्गुण दर्शन को, व्यावहारिक या प्रयोगात्मक वेदांत में परिणत करके उसे देश-भक्ति का जीता-जागता संदेश बना दिया। और यद्यपि प्राचीन सामग्री के आधार पर देशभक्ति का यह दर्शन-शास्त्र सफलतापूर्वक खड़ा किया गया था, फिर भी स्वप्नशील भारतीय जनता के कानों पर जूं न रेंगी। यद्यपि कुछ लोगों ने सिद्धांत रूप से व्यावहारिक वेदांत की सच्चाई को मान्य किया, फिर भी इस ज्ञान से उन्हें भारत के उत्थान के हेतु कटिबद्ध होने के लिये जैसी स्फूर्ति मिलनी चाहिए थी, वैसी न मिल सकी। इन दोनों विलक्षण महात्माओं की अपेक्षा अधिक सफलता मिली है स्वर्गीय बालगंगाधर तिलक और श्री अरविन्द को जिन्होंने इतने चमत्कारिक ढंग से भगवान् कृष्ण की श्री भगवद्गीता से राष्ट्रीय कर्त्तव्य की शिक्षा का संदेश ढूंढ़ निकाला और उसके द्वारा सचमुच विचारशील भारतीयों को एक ऐसा दार्शनिक आधार मिला, जिसने उनका ध्यान परलोकवाद से हटाकर इह-लोकवाद की ओर प्रेरित किया।

पर सच तो यह है कि देशभक्ति, दूसरे शब्दों में अपने देश को अपनी सम्पत्ति के क्षेत्र में लाकर उसके प्रति प्यार भरी आसक्ति, केवल दार्शनिक वादविवाद से उत्पन्न नहीं की जा सकती। वह अपने आप जाग्रत होती है, वह विचारमात्र से किसी के गले नहीं उतारी जा सकती। किसी-किसी विशेष परिस्थिति में और कुछ प्राचीन परम्पराओं की उत्प्रेरक-शक्ति के अधीन देश-

भक्ति की भावना मनुष्य के वक्षस्थल में उतनी ही स्वाभाविक हो उठती है, जितना कि भाई और बहन का पारस्परिक प्रेम। स्त्री के लिये हृदय में तीव्र इच्छा का होना, स्त्री को और अपने घर को, जो स्त्री और बालबच्चों का ही दूसरा नाम है, प्राणों की आहुति देकर भी बचाने का वीरतापूर्ण भाव; ऐसे घरों के समूहों पर, जिनसे देश बनता है, किसी आततायी का आक्रमण होने पर सहर्ष मृत्यु का सामना करना; गुलामी के जीवन को एकदम और पूरी तरह अस्वीकार कर देना; स्वतंत्रता और प्रेम को न छोड़कर मृत्यु और नाश का स्वागत करना—संक्षेप में, अनन्त रूपों में स्त्री, भूमि और जीवन की पूजा करना, जैसी वे हैं, जैसी मिल सकती हैं और जिस रूप में हम सीधे-सादे, संयत और नग्न पशुओं की भाँति उनका उपभोग करते हैं—यही सब तत्व मिलजुल कर मनुष्य की चेतना में देशभक्ति की स्वास्थ्यकर भावना जाग्रत करते हैं। तब उन साधुओं के लिये जो दिन रात इन्द्रियदमन की शिक्षा दिया करते हैं, जो अपनी भूमि, अपनी गाय और बैल के सुन्दर प्रेम को सदैव ठुकराते रहते हैं—वैदिक ऋषियों ने जिस वैराग्य की प्रशंसा में एक से एक सुंदर मंत्रों का गायन किया है—वे साधु उठें और हमें देशभक्ति का उपदेश दें! जिन्हें स्वयं अपने नन्हें प्यार भरे घर से रत्ती भर मोह नहीं, जिनके हृदय में स्त्री के लिये, न माता के रूप में और न प्रियतमा के रूप में, कोई आसक्ति होती है, जो उसके पीछे, परिश्रम और क्षेम में, शान्ति में और युद्ध में सदैव मरने-खपने को पागल नहीं हो सकते—उन विरागियों द्वारा कैसे किसी के हृदय में स्वस्थ देशानुराग उत्पन्न किया जा सकता है—यह एक शंका हो सकती है।

भारतवर्ष में, सहस्रों वर्षों से भारतीय चेतना के हृदय में स्त्री जाति के प्रति एक घृणा और उपरति का भाव दृढ़ होता आया

है, क्योंकि वह मनुष्य की व्यक्तिगत आध्यात्मिक उन्नति में बाधक मानी जाती है और उससे दूर वन की घाटी में शायद बहुत कुछ बिना समझे बूझे जीवन-यापन करना योग-साधना, एकाग्रता और समाधि में बड़ा सहायक माना जाता है। योगिराज अरविंद को भी अपनी बाल-वयस्का पत्नी को छोड़ देना पड़ा और उसे भारतीय विलक्षण बुद्धि ने 'योग' जैसा गौरवास्पद नाम दिया। पर उसके द्वारा जहां तक हमें मालूम है, हमारे देश को अभी तक कोई लाभ नहीं पहुँचा ! बस, दुख और दीनता के गर्त में डूबे हुए देश से पातंजलि के योग सूत्रों में अंकित योगी का पूर्णतः लोप हो जाना, और योग के अस्वास्थ्यकर अभ्यासों में निरत रहने के फल स्वरूप भारतीय मस्तिष्क के स्वरूप का कुछ विकृत और पतनोन्मुख हो जाना—स्वयं इस बात का सबसे सुन्दर उदाहरण है कि अब देश में पातंजलि के ढांचे के योगियों की आवश्यकता नहीं रह गयी है !

एक सुखी परिवार का जन्म याज्ञवाल्क्य जैसे महान् मस्तिष्कों की कल्पनाओं से भीनहीं हो सकता। जिन्होंने विवाह तो एक नहीं, दो किये किन्तु जो गृहस्थ जीवन के अंतिम समय में गृहस्थ जीवन से पूर्णतः उपराम होकर इसलिये अरण्य-जीवन की शरण में गये जैसे सचमुच ही वह परमात्मा के साक्षात्कार में अधिकाधिक सहायक हो। क्या सचमुच अरण्य जीवन एक सच्चे सुखी ईश्वर-भावपरित मानवी गृह से श्रेष्ठ है, जो परिश्रम और प्रेम की सादगी से सहानुभूति और संवेदना की किरणें चारों ओर फैलाया करता है ? हम भगवान् बुद्ध के महान् त्याग को समझ भी सकते हैं और उनकी पूजा भी कर सकते हैं। किन्तु यदि यह कहा जाय कि उनके महान् त्याग का अर्थ यह है कि पहले अपने व्यक्तिगत प्रेम को अपने छोटे से परिवार में परिणत करना, फिर बढ़ाकर देश

में फैलाना और अन्त में उसे विश्वव्यापी बना देना है तो हमारी समझ में कम से कम यह बात 'बुद्ध' के उदाहरण से सिद्ध नहीं होती। क्या भावनायें—मनुष्य की निजी व्यक्तिगत भावनायें, इतनी लचीली होती हैं कि उनमें केवल विचार की हवा फूंक देने से ही हम पहले अपने परिवार के स्वार्थसाधक प्रेमी बन जायेंगे। फिर कुछ और अधिक प्रयास करने पर देश को ही अपना परिवार मान उससे निस्स्वार्थ प्रेम करने लगेंगे और अन्त में एक कदम आगे बढ़कर समूचे विश्व के निष्काम सेवक बन जायंगे। ऐसे उपदेश अधूरे हैं। जीवन स्वयं अपने पथ पर विकसित होता रहता है और किसी राष्ट्र में सच्ची भावना भरने में अनेक युग लग सकते हैं।

स्वामी राम और स्वामी विवेकानन्द साधु थे किन्तु नासमझ नहीं। उनके लिये सारा विश्व और उससे भी परे सारा ब्रह्माण्ड केवल एक आत्मरूप था। उनकी इस विचार-धारा ने संसार के साधारण से जीवन को एक दिव्य आध्यात्मिक धरातल प्रदान किया था, और उसे बनाया था आत्मा के प्रकृष्ण का साधन। उनके अनुसार मनुष्य अपने झूठे अहंकार के मोह से ऊपर उठकर परिवार-प्रेम, देश-प्रेम, मनुष्य-प्रेम—यथार्थ में विश्वप्रेम में विचरता हुआ सच्ची आत्मा-परमात्मा के साक्षात्कार में अग्रसर होता है।

इस नूतन दृष्टिकोण के सौंदर्य ने, जो इन दो मेधावी महात्माओं ने उपनिषदों के दर्शन को प्रदान किया था, लोगों को अपनी ओर खींचा और कई एक भारतीय मस्तिष्कों को जो जीवन का सदैव और सर्वत्र आध्यात्मिक अर्थ लगाते हैं, उनके संदेश से आगे बढ़ने की उत्प्रेरणा भी मिली।

इस दृष्टि से स्वामी राम के कुछ प्रसिद्ध लेख 'आलोचना और विश्वप्रेम' 'यज्ञ के संतव्य' 'भारत के नवयुवकों से' 'उन्नति का निश्चित विधान' 'नक़द धर्म' और अनेक बड़े लेख आधुनिक

भारत के राष्ट्र निर्मापक साहित्य के एक सर्व-श्रेष्ठ विचार-प्रवीण अंग कहे जा सकते हैं। कुछ भी हो, उनके शब्दों में सर्वत्र एक दिव्यानन्द की पुट भरी हुई है। लो, वे आपको, अपने आप को स्वयं भारतवर्ष-रूप अनुभव करने के लिये आह्वान करते हैं:—

और फिर लिखते हैं—

भारतवर्ष मेरा शरीर है। कोमोरिन मेरे पैर और हिमालय मेरा सिर है। मेरी जटाओं से गंगा वहती है और मेरे सिर से ब्रह्मपुत्र और सिंध निकली हैं। विंध्याचल मेरी ही कमर की पेटी है। कोरोमण्डल मेरी बायीं और मालाबार मेरी दाहिनी टांग है। मैं सम्पूर्ण—समूचा भारतवर्ष हूं। उसका पूर्व और पश्चिम मेरी बाहें हैं जिन्हें मैंने मानव समाज का आलिंगन करने के हेतु फैला रखा है। मेरा प्रेम सार्वभौमिक है। ओ, मेरे शरीर की आकृति कैसी है! मैं खड़े होकर अनन्त आकाश पर दृष्टिपात कर रहा हूँ। मेरी अन्तरात्मा विश्वात्मा है। जब मैं चलता हूँ, मैं सोचता हूँ कि भारत चल रहा है। जब बोलता हूँ तब सोचता हूँ कि भारत बोल रहा है। जब श्वास लेता हूँ तब भारत ही श्वास लेता है। मैं भारतवर्ष हूँ, मैं शंकर हूँ! मैं शिव हूँ! यही देशभक्ति का सर्वोत्तम साक्षात्कार है। यही है व्यावहारिक वेदान्त!

ओ अस्ताचलगामी सूर्य! क्या तू भारतवर्ष में उदय होने जा रहा है? क्या तू दया करके राम का यह संदेश उस पुण्य और प्रताप की भूमि तक न पहुँचा देगा? ओ, मेरे प्रेम के ये अश्रु-बिन्दु मेरे भारत के खेतों में प्रातः कालीन ओस-कण बन जावें! जैसे शैव शिव को पूजता है, वैष्णव विष्णु को, बौद्ध बुद्ध को, ईसाई ईसा को, मुसलमान मुहम्मद को, उसी प्रकार जलते हुए हृदय की लौ के साथ मैं अपने भारतवर्ष को एक शैव, विष्णु, बौद्ध, ईसाई, मुसलमान, पारसी, सिक्ख, संन्यासी, शूद्र अथवा किसी भी भारतवासी की स्थिति से देखना और पूजना चाहता हूं। ऐ भारत माता! मैं तेरे सभी रूपों, सभी प्रादुर्भावों का

उपासक हूँ। तू ही मेरी गंगा, मेरी काली, मेरा इष्टदेव, मेरा शालि-ग्राम है। उपासना के बारे में उपदेश करते हुए वे भगवान्, जिन्हें इस पुण्यभूमि की मिट्टी खाने से बड़ा प्रेम था, कहते हैं "जो अपना दिल उस अव्यक्त परमात्मा में लगाते हैं, उनका मार्ग बड़ा दुष्कर होता है, क्योंकि सचमुच शरीरधारी को निराकार, अव्यक्त के पथ पर चलना बड़ा कठिन है।" ऐ मनमोहन श्री कृष्ण! तुम्हारी आज्ञा शिरोधार्य! मुझे भगवान् के उस साकार रूप की ही पूजा का मार्ग ग्रहण करने दो जिसकी सम्पत्ति के बारे में कहा जाता है कि एक बूढ़े बैल, एक टूटी खाट, एक पुरानी कुल्हाड़ी, धूनी की भस्म, सर्प और नरमुण्डमाला के सिवा उनकी गृहस्थी में कुछ और था ही नहीं!......पर केवल मौखिक अधूरे दिलवाली प्रशंसा अथवा सहानुभूति से काम नहीं चलेगा। राम तो भारतवर्ष के प्रत्येक बच्चे से सक्रिय सहयोग चाहता है कि वह राष्ट्रीयता के इस गतिशील धर्म को फैलाने के लिये कटिबद्ध हो जाय। क्या युवा-वस्था को तब तक प्राप्त नहीं हो सकता, जब तक वह पहले किशोरावस्था पार नहीं कर लेता। कोई व्यक्ति उस समय तक कदापि परमात्मा के साथ, उस अखिल आत्मा के साथ एकता का अनुभव नहीं कर सकता, जब तक संपूर्ण राष्ट्र के साथ एकता का भाव उसकी नस-नस में जोश न मारने लगे। लो, भारतवर्ष का प्रत्येक सुपुत्र सम्पूर्ण भारत की सेवा के लिये सन्नद्ध हो जाय, क्योंकि अखिल भारतवर्ष उसके प्रत्येक पुत्र में मूर्तिमान हो रहा है। हमारे यहाँ प्रत्येक नगर, सरिता, वृक्ष और शिला, यहाँ तक कि पशु भी देवता के रूप में माना और पूजा जाता है। क्या अब का समय नहीं आया कि हम समूची भारतभूमि को भगवती माता के रूप में पूजा के लिये तत्पर हो जायँ और उसका हर एक [illegible] प्रादुर्भाव हममें सम्पूर्ण भारत की भक्ति भर दे। मानस [illegible] के द्वारा हिन्दू दुर्गा की मूर्ति को सजीव बना लेते हैं। [illegible] अरे, क्या वह समय नहीं आया जब हम भारतमाता की [illegible]

२८९

मूर्ति में प्राण और प्रकाश का संचार करें और उसके अप्रकट अन्तः-गौरव को विकसित करने के लिये सन्नद्ध हो जायं। हम पहले अपने हृदय एक करलें, फिर हमारे सिर और हाथ-पैर, सब अंग-प्रत्यंग स्वयं एक होकर काम करने लगेंगे।

*   *   *

ईश्वर का साक्षात्कार करने के लिये, संन्यासी भाव ग्रहण करना होगा। दूसरे शब्दों में स्वार्थ का पूर्ण त्याग करके, अपनी क्षुद्र आत्मा को भारत माता की महान् आत्मा का अनुगत—सच्चा अनुगामी बना देना होगा। सच्चिदानन्द परमात्मा के अनुभव के लिये, हमें ब्राह्मणभाव ग्रहण करना होगा अर्थात् अपने मस्तिष्क को पूर्णतः राष्ट्र की उन्नति के विचारों में लगा देना होगा। सच्चिदानन्द की प्राप्ति के लिये हमें सच्चा क्षत्रियभाव ग्रहण करना होगा जिससे प्रेरित होकर हम प्रति क्षण देश के लिये जीवन उत्सर्ग करने को कटिबद्ध हो जांय। ईश्वर के साक्षात् अनुभव के लिये हमें सच्चा वैश्यभाव सीखना पड़ेगा जिससे हम सदा अपनी सम्पत्ति को राष्ट्र की धरोहरमात्र मानने लगें। किन्तु आज इस लोक या परलोक में आनन्द और राम के अनुभव के लिये हमें अपने मानसिक विचार-प्रधान धर्म को व्यावहारिक स्थूलरूप देना होगा। हमें इस संन्यास-भाव को, इस ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यभाव को क्रिया के रूप में परिणत करना होगा; उसे अपने हाथों-पैरों के द्वारा शारीरिक श्रम के कार्यों में व्यक्त करना होगा; जो *किसी समय* केवल पवित्रहृदय शूद्रों का धर्म माना जाता था। आज सन्यास भाव और अस्पृश्य करों का पाणिग्रहण हो। आज केवल, एक मात्र यही मार्ग है। जागो, जागो !

देखो, संसार के अन्य देश भी अपने व्यवहार के द्वारा हमारी भारत भूमि को, संसार की एकमात्र 'ब्रह्मभूमि' को आज इसी व्यावहारिक धर्म की शिक्षा दे रहे हैं।

जब कि एक जापानी नवयुवक अपनी माता की सेवा में (गृहस्थ धर्म)

व्याघात होने के डर से सेना में भरती नहीं हो पाता तो माता आत्महत्या कर लेती है। निम्न श्रेणी के (गृहस्थ) धर्म को उच्च श्रेणी के (राष्ट्रीय) धर्म की वेदी पर बलिदान कर दिया जाता है।

भला, उन तेजपुञ्ज आदर्श गुरु गोविन्द सिंह के त्याग का उदाहरण संसार में अन्यत्र कहां मिल सकता है, जिन्होंने राष्ट्रीय धर्म के पीछे व्यक्तिगत, गार्हस्थ और सामाजिक धर्मों का पूर्ण परित्याग करके आत्म-बलिदान का महानतम आदर्श उपस्थित किया है ?

लोग शक्ति के पीछे पागल रहते हैं। एक बार अपनी आत्मा को समस्त राष्ट्र की आत्मा के साथ तदात्म तो कर लो और देखो, अनन्त शक्ति तुम्हारे सामने हाथ जोड़े खड़ी रहती है या नहीं ? अन्त में रान इस्लाम धर्म के पैगम्बर के सुन्दर शब्दों में इस भाव को दुहराना चाहता है—

"यदि सूर्य मेरी दाहिनी ओर खड़े हो कर और चन्द्रमा मेरे बायीं ओर खड़े होकर मुझे लौटने का आदेश दें तो मैं कदापि उनकी आज्ञा नहीं मान सकता।"...... ओम्! ओम्!

......बी० ए० और एम० ए० की डिगरियां तो तुम्हें विश्व-विद्यालय से मिलती हैं किन्तु तुम कायर बनते हो या शूरवीर—इन दोनों लक्ष्यों के बीच तुम्हें स्वयं निर्णय करना होगा। बताओ, तुम्हें कौन सा स्थान पसन्द है ? पददलित गुलाम का, अथवा जीवन के स्वामी का ? शक्ति-सम्पन्न शुद्ध जीवन ही सदा इतिहास में निर्णायक सिद्ध होता है। 'न्यूटन' का गति सम्बन्धी द्वितीय नियम शक्ति की परिभाषा भी करता है कि 'जो पदार्थ पर कार्य करके उसकी गति-दिशा में परिवर्तन कर दे, उसे शक्ति कहते हैं।' अनेकानेक शताब्दियों से अस्वाभाविक विरोध और उससे भी भयंकर औदासीन्य हमारे देश को रीति रिवाज और अन्ध विश्वास के पुरातन ढर्रे पर खेये चला जा रहा है। ओ, कुलीन और चरित्रवान् नवयुवको ! अब यह तुम्हारा काम है कि तुम इस मना-

वश्यक अपकारक ढांचे में परिवर्तन लाने के लिये जीती जागती शक्ति बन जाओ। पुरातन तमोगुण पर विजय पाकर आवश्यकतानुसार देश की गति-विधि में दिशा-परिवर्तन करो। जहां चाहो, उसकी चाल तेज करो और जहां उचित हो उसके मूल स्वरूप में परिवर्तन, परिवर्द्धन कर दो। काम करो, दिन रात काम करो। भूत काल को वर्तमान के अनुसार ढालो और अनुकूल बनाओ और फिर वीरता के साथ अपने शुद्ध पवित्र और शक्तिशाली वर्तमान को भविष्य की दौड़ में सबसे आगे बढ़ने दो!

........एक साधारण स्थिति का भारतीय घर हमारे सम्पूर्ण राष्ट्र का दिग्दर्शक है, अत्यन्त स्वल्प साधन और न केवल नित्य खाना खाने वाले मुखों में वृद्धि वरन् विवश होकर अर्थहीन निर्दय उत्सवों में अनावश्यक व्यय का भार ऊपर से! अरे, एक ही अस्तबल में बंधने वाले पशु भी एक दूसरे से लड़ते भिड़ते मर जायँगे, यदि घास केवल दो एक के लिये होगी और उनकी संख्या सैकड़ों तक पहुंचेगी। संघर्ष की जड़ को न मिटाना और लोगों को शान्ति की शिक्षा देना उपदेश का उपहास करना है। मेरे देश-वासी हृदय से शान्त और नम्र हैं। उनका हृदय विद्रोह नहीं चाहता किन्तु जब देश-काल की कठोर परिस्थितियों में इन्द्रियों के वेग उनके सिर पर सवार हों तब बिचारे ईर्ष्या-द्वेष और स्वार्थलिप्सा से कैसे बच सकते हैं? यदि हम जनसंख्या की समस्या को यों ही पड़ा रहने देंगे तो राष्ट्रीय एकता और पारस्परिक सद्भावना की चर्चा आकाश कुसुम समान कल्पना—जल्पनामात्र ही रह जायगी। हमें इस जटिल ग्रन्थि को अवश्यमेव सुलझाना होगा अन्यथा हमारी मृत्यु निश्चित है। प्राण विज्ञानके सिद्धान्तों के अनुसार ऐसे सर्वसामान्य सामाजिक वातावरण में, जहां घोर दुखदायी यातनायें नित्यप्रति उसके सदस्यों को भोगनी पड़ती हों, सहानुभूति और और स्वार्थसाधन साथ साथ कभी नहीं चल सकते! ऐसी भयंकर

बहुसंख्यक दरिद्रता में रहते हुए भी भारतवासी, सहानुभूति और प्रेम का विकास करना आशा के विरुद्ध आशा करना है। भौतिक विज्ञान के विद्यार्थी जानते हैं कि कोई भी किसी प्रकार का भौतिक पदार्थ तभी तक अपना अन्तरंग सामंजस्य स्थिर रख पाता है, जब तक उसके सब-एक कण एक दूसरे से इतनी समान दूरी पर स्थित रहते हैं कि प्रत्येक कण को अपने पड़ोसी की नियमित नृत्यमय गति विधि में कोई बाधा उपस्थित किये बिना ही स्वयं अपनी गतियों को सम्पादन के हेतु यथेष्ट अवकाश मिलता रहे। अब ज़रा भारतवर्ष के विशाल जन समुदाय पर दृष्टि डालिये। क्या उसके व्यक्ति बिना दूसरे से लड़े-भिड़े अपने शान्तिमय क्रिया-कलापों का सम्पादन कर सकते हैं? क्या उन्हें स्वतंत्र एवं प्राकृतिक कार्यों के लिये यथेष्ठ अवकाश मिलता है? यदि एक प्राणी के भरपेट खाने से दस को भूखा मरना पड़ता है तो निस्सन्देह हमें तुरंत ही राष्ट्रीय सामंजस्य को सुस्थिर करने के लिये उद्योग करना चाहिए। अन्यथा भारतवर्ष के लिये एक ही मार्ग बचता है कि सुनसान स्वच्छंद प्रकृति के भयंकर अंक में जा पड़े और उन महा भयानक कष्टों को भोगे जिनको महर्षि वशिष्ट ने अकाल, महामारी, प्रलयंकारी युद्ध और भूकम्प के नाम से याद किया है।

* * *

एक समय था, जब कि भारतवर्ष के आर्य निवासियों में बड़ी संख्या में सन्तान का होना वरदान रूप माना जाता था। किन्तु वे दिन चले गये, देश-काल की परिस्थिति में आकाश-पाताल का अन्तर हो गया। भारतवर्ष की जनसंख्या में बाढ़ आ गयी, अतः बृहत् परिवारों का होना अभिशाप रूप बन गया है......आओ, अब हम उस महा भयंकर और हानिप्रद विचार को, जो इतने दिनों तक हमारे व्यवहार को वश में करता रहा, भारतवर्ष के धरातल से निकाल बाहर करें। कौन सा विचार,

कौन सा सिद्धान्त ? 'विवाह करो, अँधाधुँध सन्तान पैदा करो, जीवन की श्वासें पूरी करो और गुलामी में मर जाओ...'

नवयुवको, इस बन्द करो ! इसे प्रथा को बन्द करो ! ऐ नवयुवको, तुम भारत के भविष्य के लिये उत्तरदायी हो, तुम्हें इसे बन्द करना ही होगा। धर्म के नाम पर, भारतवर्ष के नाम पर, स्वयं अपने हित के लिये और अपनी सन्तानों की भलाई के लिये दया करके देश में अँधाधुँध, असामयिक, विचारहीन विवाह-पद्धति का अन्त कर दो। इससे लोगों के जीवन में पवित्रता आयगी, और किसी अंश में जनसंख्या की गंभीर समस्या भी हल होगी।

* * *

भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास पर ध्यान देने से हमें पता चलता है कि जैसा दूसरे देशों में हुआ, वैसे ही हमारे भारतवर्ष में भी निशाकाल के आगमन का एक मात्र अन्तिम अन्तरंग कारण बनी है हमारी पार्थक्य नीति "ओ हो, हमारे इस कमरे (भारतवर्ष) में सूर्य का कैसा विशाल, उज्ज्वल, गौरवमय प्रकाश है ! ओ, यह मेरा है, केवल मेरा है, मैं किसी को उसमें साझीदार न होने दूंगा।" बस, ऐसा कहकर हमने सचमुच परदे लटका दिये, किवाड़ लगा लिये और खिड़कियां बन्द कर दीं। और परिणाम क्या हुआ ? भारतवर्ष के प्रकाश पर एकछत्र अधिकार करने की लालसा में ही हमने उसमें अन्धकार फैला दिया। न तो भगवान् व्यक्तियों का पक्षपात करने वाला है और न ही सौभाग्य भौगोलिक है।

* * *

संक्षेप में, यज्ञ का अर्थ है कि हम व्यवहार्यतः अपने पड़ोसी को अपनी ही आत्मा मानने लगें, हमें उस का प्रत्यक्ष अभ्यास और अनुभव हो, हम सब के साथ एक या तदात्म हो जायँ, सर्व-आत्मा राम बनने के लिये, हम अपनी क्षुद्र आत्मा का परित्याग कर दें। यज्ञ में स्वार्थ-परता की आहुति दी जाती है और तब सर्वात्मा—परमात्मा का उदय होता है।

इसी भाव को प्रायः एक दृष्टि से भक्ति का नाम दिया जाता है और दूसरी दृष्टि से उसी को यज्ञ कहते हैं।

ओं, अखिलेश्वर (ओ३म्)
मेरे इस जीवन को ले लो मेरे प्रियवर,
मैं इसे समर्पित करता हूँ तुमको सादर,
मैं तुम्हें समर्पित करता, लो ये मेरे कर,
ये रहें तुम्हारे सेवा कामों में तत्पर!
मैं हृदय दे रहा हूँ तुमको अपना प्रियवर!
तुम पूर्ण-रूप से दो इसको अपने से भर,
तुम ले लो मेरे नयन और इनको दो कर—
अपनी छवि की मदिरा से पागल ओ सुन्दर!
ले लो मेरा मस्तिष्क, बना दो इसको फिर
निशि दिन निज प्रतिमा से अपना मन्दिर!

ज्योंही इस आत्म-बलिदान, सर्वस्व त्याग की आहुति पूर्ण होती है, त्योंही साधक उस महावाक्य 'तत्वमसि' का ब्रह्मानन्द अनुभव करने लगता है।

❀ ❀ ❀

आंखों के मेहराबदार द्वार में होकर—
मैं करता हूँ प्रवेश हृदय के स्वर्ग में।
वहां जब ध्यान ने मेरी नयनी मार्ग-प्रदर्शन करती है—
तब फिर कोई मुझसे बिछुड़कर, कहां जा सकता है!
पृथ्वी और स्वर्ग के
आनन्ददायक विवाहों और सम्मेलनों में
रहती है एक धुंधली झलक
मेरे उस सार्वभौमिक प्रेम की!

और जिसमें सम्पूर्ण मानव जाति समा जाती है।
ओ हो, मेरा आलिंगन कितना कठोर, कितना कोमल।

सूर्य की तीक्ष्ण दृष्टि के
स्वर्णिम भालों की भाँति
मैं ही पुष्पों का हृदय वेधता हूँ
और परम प्रसन्न पूर्णचन्द्र
की शुभ्र रजत किरणों के द्वारा

मैं ही बुलाता हूँ सागर को अपने आनन्द कुँजों में।

ओ विद्युत! ओ प्रकाश!
ओ विचार, तेज और चमकदार
आओ, दौड़ो मेर साथ होड़ लगाकर
ओ हो, तुमतो कितने कितने पीछे-पीछे रह गये
मैं निकल गया आगे तुमसे—
वहुत आगे वहुत आगे
तुम नहीं चल सकते कभी मेरे वराबर
ओ पृथ्वी और ओ सागर!
ओ वनस्पति और ओ पुष्प!
तुम हो सब मेरी सन्तान
पुत्र और पुत्रियां

सीमाओं को, देश-काल के परिच्छदों को

उतार फेंको, उतार फेंको
और गाओ मेरे साथ

हरि ओ३म् तत्सत्! ओ३म्! ओ३म्!! ओ३म्!!!

अठारहवां परिच्छेद

उनके देश की समस्या

(पूर्वानुगत)

रिसाला 'अलिफ' के प्रारम्भिक लेखों में भी हमें उनके आत्म-चिन्तन के बीच यत्र-तत्र अपने देश को दासता की मनोवृत्ति से ऊपर उठाने की एक तीव्र इच्छा अप्रकट रूप से काम करती हुई दिखायी देती है। हां, उसकी सिद्धि वे अपने समाधिजन्य ज्ञान की उस श्रेष्ठ आनन्दमय अवस्था के प्रत्यक्ष अनुभव के द्वारा ही करना चाहते थे। कुछ भी हो, ऐसा ज्ञात होता है कि लाहौर में स्वामी विवेकानन्द के साथ निजी संपर्क में आने के कारण यकायक यह इच्छा उनके हृदय में जाग उठी और उसने उनके हृदय को अभिभूत कर लिया। इसके पूर्व, बचपन ही से वे अपने सम्पूर्ण अन्तःकरण को काव्य और पंजाब के संगीत से ओत-प्रोत तीव्र भावनामय काव्य में डुबोकर अलौकिक आनन्द की ओर बढ़ा रहे थे। और इसी आदर्श को उन्होंने अंग्रेजी के कला और विज्ञान विषयक साहित्य के प्रभाव से अपने जीवन का व्यावहारिक धर्म बना लिया था किन्तु अब जब हम उन्हें ठीक अपने आत्म-चिन्तन के बीच में यकायक और यहीं कहीं [illegible]

ही अपनी प्यारी भारतमाता की स्वतंत्रता की बात सोचते देखते हैं तब......! उन्हें मनुष्य की गुलामी से घृणा थी। वे सोचते थे—मनुष्य को नहीं, मनुष्य के भीतर ईश्वर को इस प्रकार पैरों तले रौंदना—ओह! इस आन्तरिक आत्मा-परमात्मा की अवहेला को वे महानतम पाप मानते थे और 'अलिफ़' में उन्होंने अपनी यही शुद्ध और पवित्र भावना व्यक्त की है, जो एक प्रकार से भारतवासियों के लिये अपने आप को ऊपर उठाने का उनका कुछ प्रकट और कुछ अप्रकट प्रस्ताव है।

हम यह पहले देख चुके हैं कि संयुक्त राष्ट्र अमरीका में उन्होंने भारतवर्ष के लिये बड़ा काम किया था। एक ओर उन्होंने 'अमरीकनों से अपील' जैसे अपने भाषणों में ब्रिटिश शासन की लूट-खसोटने वाली नीति की निन्दा की थी और दूसरी ओर अपने अनेक व्याख्यानों में अमरीकनों की सहायता से जाति-व्यवस्था के उन्मूलन के लिये प्रबल अनुरोध किया था। यह एक बड़ी विचित्र बात है कि अमरीका-प्रवास के समय उनके कार्य-क्रम का मुख्य आधार था—'जाति-व्यवस्था का उन्मूलन' और भारतवर्ष में लौटने पर उनका यह विषय ही बदल गया। 'अछूतोद्धार' दूसरे शब्दों में, पददलित जातियों के उत्थान की बात छोड़ कर यहां उन्होंने अपना ध्यान केन्द्रित किया—राष्ट्र-निर्माण और देश-भक्ति की विचार-धारा को परिपक्व करने पर, जिससे राष्ट्र-निर्माण की दिशा में काम करने वाले विविध आन्दोलनों में सहयोग और सामंजस्य स्थापित हो सके। उन्होंने मुझ से कहा था कि पूना के एक बी० जी० जोशी ने राम को अमरीका में भारत के अर्थ काम करने के लिये, साहाय्य प्राप्त करने के हेतु प्रेरित किया था। इसी प्रकार भारतीय जाति-व्यवस्था के विरुद्ध अमरीकन पादरियों की उद्भावना ने स्वामी राम को वहां उसके विरुद्ध बोलने

को उत्साहित किया था। उन्होंने बतलाया कि यह एक ऐसी प्रबल बुराई है जिसने सारे देश को गुलाम बना डाला है। यद्यपि अमरीका और यूरोप में राष्ट्रीयता ही जिनका व्यवसाय है कारखानों के दरवे भी उनको आजकल वैसा ही परेशान और चिन्तित कर रहे हैं। कुछ भी हो, जाति-व्यवस्था के घुन ने कभी भी भारत के इतिहास में इतना क्लेश और संताप पैदा नहीं किया है जितना उन देश के दरवों में देखा जाता है। भारतवर्ष में भी ठीक वही दरवे अब फैक्ट्री-जीवन के बढ़ते हुए अत्याचार के कारण उत्पन्न किये जा रहे हैं। इसीलिए प्रतापचन्द्र मजूमदार जैसे पुरुषों ने अमरीका में जाति-व्यवस्था का पक्ष ग्रहण किया था और भारतवर्ष लौटने पर पुनः अपने देश में उसकी निन्दा भी की है।

भारतवर्ष में वापस आने पर हम देखते हैं कि वह शिक्षित भारतीयों की ओर देख रहे हैं। वे राष्ट्रीय प्रश्नों पर उनके दृष्टिकोण को उपयुक्त दिशा में लगा देना चाहते थे। वे एक ऐसे साहित्य के निर्माण की चेष्टा में थे जिसके द्वारा स्वदेश के प्रेम के आधार पर भारतवर्ष में काम करने वाले विभिन्न मनुष्यों, विभिन्न समाजों, विभिन्न सम्प्रदायों और उनके भेद-भावों के बीच एकता स्थापित हो जाय। विचित्र किन्तु यथार्थ. अमरीका में जहां ब्रह्मचर्य को कोई जानता नहीं, वहां उन्होंने वैवाहिक जीवन की उपयोगिता को ऐसे सुन्दर ढंग से समझाया और भारतवर्ष लौटने पर फिर अपने इसी प्रिय विषय ब्रह्मचर्य की महिमा गाने लगे, जो एक प्रकार से यहां वैवाहिक जीवन में भी न [illegible] माना जाता है। वेदान्त ज्ञान के ग्रन्थ किसी न किसी रूप में अनेक शताब्दियों से निरन्तर आत्मविश्लेषण चर्चा का [illegible] हुआ है कि भारतीय मस्तिष्क के प्रेम, पवित्रता और [illegible]

के सभी स्रोत सूख गये हैं। उन्नत से उन्नत अवस्था में भी दार्शनिक शब्दों और वाक्यों के थोथे और चमत्कृत वाक्जाल के सिवा उस चर्चा का और कोई मूल्य नहीं होता। यदि कभी कभी इस बौद्धिक शुष्कता के विरुद्ध भारतीय हृदय में भावों का उद्रेक हुआ भी तो वह वहीं अपनी भावनाओं में सड़ता-गलता रहा। ठीक एक दिवालिये साहूकार की भाँति भारतीय हृदय बार बार अपनी सूनी वही के पन्ने लौटा करता है और उनकी सूखी खड़-खड़ाहट से अपने कानों को तृप्त करना चाहता है। ऐसे व्यक्ति को अब पुनः धर्म के नाम पर देशभक्ति की शिक्षा दी जा रही थी। किन्तु धर्म, धर्म ही तो इस भारतीय गुलाम के हृदय की सब से बड़ी व्याधि है। न वह उसे समझ सकता है और न उसे छोड़ सकता है। हस्तकला, हस्तकौशल, विधायक परिश्रम; शान्त और एकान्त क्रिया, जीवन के छोटे-मोटे काम उसे नहीं बताये जाते। सुनाये जाते हैं केवल बड़े बड़े व्याख्यान, तर्क-वितर्क और बौद्धिक बारीकियां—परिणाम होता है गुलामी और पतन। लोग पुकार पुकार कर कहते हैं कि विदेशी शासन राष्ट्र के पतन का मूल कारण हुआ किन्तु वे यह नहीं देखते कि यह विदेशी शासन आखिर यहां आया ही क्यों? कौन सी बातें उसे यहां लायीं? वह विदेशी शासन देश की उत्तर-पश्चिमी सीमा से आगे क्यों न बढ़ सका? उसने अफगानिस्तान को क्यों आक्रान्त नहीं किया? साईबेरिया क्यों उससे मुक्त रहा? निस्संदेह, वे लोग भारतवासियों की अपेक्षा बौद्धिक दृष्टि तो कदापि श्रेष्ठ नहीं माने जा सकते। कोमल स्वभाव हरिण भी जीवित पकड़े जाने में आनाकानी करता है। यदि तुम किसी प्रकार उसे पकड़ कर पिंजड़े में बन्द कर दो तो वह मर जायगा। शेर और चीते को पकड़ने के लिये जंगल में जाकर ही उसे गोली मारनी होगी। वह

पालतू कदापि नहीं बनाया जा सकता। इंग्लैण्ड के बुद्धिमान
राजनीति-विशारदों की आंखें जीवन की ठोस वास्तविकताओं पर
जमी रहती हैं। उन्होंने आजकल के शिक्षित भारतीयों के लिये
एक के बाद एक—अनेक व्यवस्थापक सभाओं का निर्माण करके
उन्हें प्रजातांत्रिक शासन का नक्ली ढांचा सौंप दिया है; जहां वे चैन
से पेट भर बौद्धिक व्यायाम कर सकें, खूब बातें करें। इतनी
अधिक कि बकबक करते करते मुंह दुखने लगे। क्योंकि शताब्दियों
से निष्क्रियता की अपनी महिमामय संस्कृतिवश उनका ऐसा
स्वभाव ही पड़ गया है। समाचार पत्र निकालें, सभायें करें—जो
कुछ मन में आवे उल्टा-सीधा बकते-झकते रहें; क्योंकि स्वभावा-
नुसार इसके बिना उन्हें कल ही नहीं पड़ सकती। प्राचीन जैन
और हिन्दू धार्मिक वादविवादों के रंग-मंच से वे अब राजनीति पर
आये हैं और बातें करेंगे। प्राचीन काल ही में इन रूखे धार्मिक
तर्कवितर्कों ने इनसे निर्माणकारी परिश्रम और प्रेम की टेव छुड़ा
दी थी। जीवन के कामों में गम्भीरता से जुट पड़ना वे भूल
गये, जैसे मधुमक्खी चुपचाप निरन्तर अध्यवसाय पूर्वक काम में
जुटी रहती है। परिणाम यह हुआ कि प्राचीन वैदिक आर्य जाति
के उस सजीव ढांचे में शिथिलता आने लगी जिसमें भरा था अपने
घर का, अपने पड़ोसी का, अपने पशुओं का; अपने खेतों का
प्यार और शत्रुओं से तीव्र घृणा। समूची जाति की रीढ़
अस्त व्यस्त हो टूट गयी और आज तक टूटी चली जाती है। गुलाम
भारतीयों का राजनैतिक मन सोचा करता है कि मात्र बातें करने
से स्वतंत्रता मिल जायगी; जैसे कबूतर विचारे की आंखें तो
बिल्ली के मोहिनी प्रभाव से अपने आप बन्द हो जाती हैं और
वह मन ही मन सोचता है कि बिल्ली अब भागी; अब भागी। न तो
प्रार्थनायें और इच्छायें और न ऐसे लोगों के संकल्प ही कभी कुछ

काम दे सकते हैं; यदि वे चुपचाप निरन्तर अध्यवसाय पूर्वक अपने काम में नहीं जुट पड़ते, और कठिन परिश्रम, कला और हस्त-कौशल से जी चुराते हैं। जिसे अपने जीवन में अपना काम मिल गया, वह गुलाम नहीं बनाया सकता। दासता में जकड़े हुए राष्ट्रों को अपने स्वामियों का उपयोग करना होगा—चुपचाप रात-दिन काम करना होगा यहां तक कि वे कछुवे और खरगोश की प्रसिद्ध कहानी की भांति जीवन के व्यावहारिक क्षेत्र में भी उनसे आगे निकल जायँगे। यदि दास काम करते करते कर्म-क्षेत्र में अपने स्वामियों से आगे निकल जाता है तो फिर उनका रंग, उनकी सुविधायें और उनकी वर्तमान श्रेष्ठता उसका क्या बना-बिगाड़ सकती है! जब तक मनुष्य के भीतर और बाहर भौतिक शक्ति का संचय न होगा तब तक एक विशाल जन-समुदाय का स्वतंत्रता का स्वप्न देखना वैसा ही हास्यास्पद है जैसे अपने अपने कमरों में बैठे हुए स्कूली लड़कों की वाद-विवाद-प्रतियोगिता अथवा उन वाचाल और पागल चूहों का बिल्ली के गले में घंटी बाँधने की योजना करना। भारत में किसी प्रकार की निष्क्रिय अथवा सक्रिय क्रान्ति की कल्पनायें करना तो उस असंगठित अराजकता का आह्वान करना होगा, जो भारतवर्ष के लिये सर्वाधिक हानिकारक है। हाँ, यह संभव है कि इस अराजकता के दर्शन से भारतीय मस्तिष्क की कुछ मूलतः भ्रान्त धारणायें मिट जायँ और कुछ स्फूर्तिदायक ठोस तत्व उसके हाथ लगें। कुछ भी हो, गुलाम का भविष्य—उसकी हर एक बात, तब तक अंधकारमय रहेगी, जब तक वह स्वयं निर्माणकारी परिश्रम को नहीं अपनाता। निर्माण करनेवाला सदा सर्वदा स्वतंत्र है। अपने हाथों से एक गज़ कपड़ा बुनना, अपने हाथों से हल तैयार करना, अथवा एक जूता बनाना उन सहस्रों भाषणों से कहीं अधिक गौरवास्पद है,

जो हमें देशभक्ति, हिन्दू-मुस्लिम एकता अथवा जाति व्यवस्था के उन्मूलन और अछूत जातियों के उत्थान की शिक्षा के लिये दिये जाते हैं। उन खाली बातों से क्या होना है! दिन रात निरन्तर निर्माण करो और परिश्रम करो, और तुम देखोगे कि जो विभिन्न दल के लोग अभी एक दूसरे से लड़ने-भिड़ने में लगे रहते थे, वे सब काम पर उतर आयेंगे। उन्हें काम के सिवा कुछ सूझेगा नहीं—यहाँ तक कि उन्हें दूसरों से अपने धर्म पर वादविवाद करने का समय ही न रहेगा। उस समय धर्म सचमुच हमारे लिये जीवित हो उठेगा। आपस के मतभेद, तू-तू, मैं-मैं और जातिभेद मिट सकते हैं मात्र निरन्तर परिश्रम से, जब कि हम प्रसन्नचित हो अपने जीवन के काम में पूर्णतः तल्लीन हो जायँगे।

भारतवर्ष की समस्या का कोई शीघ्रगामी हल आसान नहीं। वह कोई वैसी अखिल भारतीय समस्या नहीं, जैसी कि ये देशभक्त उसे बना रहे हैं। काम यह होना चाहिए कि भारतवर्ष को विभिन्न श्रेणियों, जातियों और प्रान्तों के अनुसार बहुत ही छोटी-छोटी इकाइयों में बाँट दिया जाय और उन्हें काम में जुटाया जाय। परिश्रम की एकता, सम्मिलित निर्माण में सहयोग, इनसे एक पूर्ण राजनैतिक संघ अपने आप बन जायगा। जब तक यह न होगा, जब तक मनुष्यों के विभिन्न समूह अपनी-अपनी धार्मिक और सामाजिक अभिरुचियों के अनुसार उद्योगों में न जुटाये जायँगे तब तक भारत के ब्रिटिश चंगुल से मुक्त होने की आशा नहीं; और काश वह अराजकता के द्वारा कभी स्वतंत्र भी हो जाय तो अफ़ग़ानिस्तान को उसकी गर्दन दबाते देर न लगेगी। बुद्धि-प्रधान और बुद्धि-प्रेमियों का राष्ट्र जिन्होंने अपने दार्शनिक शब्दों और वाक्यों को, अपने धार्मिक विधानों को बरबस गरीब किसान और उसकी स्त्री के अन्तस्तल में पैठा दिया है

और जो आज तक बराबर मनुष्य को जीवन के स्वाभाविक और निश्चित सुखों से वंचित करता आया है, इतना अधिक विघातक कार्य करने के बाद इतने थोड़े समय में स्वतंत्र होने के योग्य भी नहीं।

ये रात-दिन घूमनेवाले साधु जो अपने पुराने गीतों और प्राचीन काल के उतरे हुए संदेशों को गाते फिरते हैं, धर्म की शिक्षा नहीं दे सकते। उनके पास प्राचीन, धुँधले और निर्जीव विचारों के सिवा है क्या? और वह भी दुरूह जीवनहीन ढाँचे में। स्वामी राम ने इनकी त्रुटियाँ दिखायी थीं, उन्हें काम करने की आधुनिक प्रतिक्रियाओं का अनुभव कराया था।

यूरोप में भी धर्म-प्रचार के लिये पाठशाला के ढंग की शिक्षा का उपयोग किया जाता है किन्तु वहाँ सबसे अधिक वृद्धि है, उत्पादक परिश्रम की, वैज्ञानिक और कलात्मक कार्यों की, जिनसे मनुष्य को अपने जीवन में प्रत्यक्ष सुख मिलता है। जहाँ एक बार खरपात का उगना प्रारम्भ हो जाता है—जैसा कि भारतवर्ष में और जहाँ द्रुतवेग से खरपात के बीज बराबर बोये जाते हैं, धर्म साक्षात् विष रूप बन जाता है। अत्यधिक जानना भी पाप का रूप धारण कर लेता है, क्योंकि तब अज्ञान के सौंदर्य का मजा जाता रहता है जो भौतिक मनुष्य को अपने क्रियाशील सहानुभूतिपूर्ण जीवन में अपने आप मिलता है।

भारतीय जन-समाज आज खेतों में काम करता हुआ, घोर दरिद्रता के चंगुल में फंसा हुआ, राज्य की सहायता से हीन, अपने भाइयों से अपरिचित उसी दशा में है जैसा कि छठी शताब्दी में था। और वे दो-चार प्रतिशत शिक्षित भारतीय! बीसवीं शताब्दी से भी आगे बढ़कर उन्तीसवीं शताब्दी में पहुंच गये हैं, जहां तक उनके काल्पनिक आदर्शों का सम्बन्ध है! एक ओर

पूँजी का अत्यधिक संचय है तो दूसरी ओर उसी प्रकार का विशाल बौद्धिक बल है किन्तु उनका मिलाप नहीं होता—बीच में एक चौड़ी खाड़ी फैली हुई है। तब उन प्रयासों को देखकर सहसा हंसी आने लगती है जो केवल प्रस्ताव स्वीकृत करके और विदेशी शासन की निन्दा से पेट भर कर इस विशाल, महान् और अचल जीवन-समुदाय को उसकी प्राचीन परम्पराओं, स्वभावों, विचारों और राग-द्वेषों से हटाकर दूसरी ओर लगाना चाहते हैं। एक उदाहरण, जैसा जापान का, उनके सामने है, जिसने इतने अल्प काल में चमत्कार करके दिखा दिया। किन्तु जापान की वायु में श्वास लेने वाला एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं, जो निरन्तर उत्पादक परिश्रम के अयोग्य हो या कभी रहा हो। वहां शताब्दियों से कलात्मक परिश्रम की पूजाई गरिमा के आगे धार्मिक संघर्षों का कोई महत्व नहीं। वहां जीवन के उस मधुर सामंजस्य में मस्तिष्क की हलचल शान्त हो जाती है, जो केवल अनेक शताब्दियों के शान्त परिश्रम से ही निर्मित हुआ है। हां, एक बड़ा अन्तर जो जापान और भारत की परिस्थिति में है, वह है उसके समुद्र का। भूमि पर आश्रित बच्चे केवल कीड़े-मकोड़ों की भांति अपनी वृद्धि करना जानते हैं, और समुद्र का आश्रय लेने वाले बच्चे देवता बन जाते हैं। क्योंकि उन्हें अनन्त सागर के वक्षस्थल पर खेलने का अवसर मिलता है, वे अज्ञात से अज्ञात जोखिम के सामने कुण्ठित नहीं होते।

भारतवर्ष में भी एक कूक उठी है और वह कूक है महात्मा गांधी की। उन्होंने हमें जनता के समीप जाने का, आधुनिक शिक्षा के फलों को त्यागने का और पुनः अपने सीधे-सादे परिश्रम और प्रेम के प्राचीन परम्परागत मार्ग पर चलने का संदेश सुनाया है। किन्तु देश की दार्शनिक मनोवृत्ति उनके इस संदेश को

भी सामाजिक पृष्ठभूमि पर लगाने के स्थान में राजनैतिक रूप-रेखा में परिणत कर रही है और फलतः कुड़कने वाले कांच की भांति उसके भी टुकड़े-टुकड़े होने प्रारम्भ हो गये हैं। क्योंकि हम जनता तक तो पहुँचे नहीं और भारत का जीवनशून्य 'शिक्षित' वर्ग ही उस संदेश को अपने अधिकार में करना चाहता है। अव वे उस पर यहां तक लड़ते-झगड़ते रहेंगे कि अन्त में उसकी सचाई का सारा दुग्ध विखर कर मिट्टी में मिल जायगा। जैसा मैं पहले कह चुका हूं कि खरपात में कोई पौधा उगाना बड़ा कठिन है, वहां तो खरपात ही आसानी से उग सकता है। फिर भी कम से कम यह एक अकेला पुरुप तो सच्चा है और यह हमारा सौभाग्य है। उसके हृदय में सत्य अपनी पूर्ण सादगी और शक्ति के साथ चमक रहा है। उनका 'असहयोग' का संदेश प्राचीन भिक्षु धर्म है, जिसे उन्होंने राजनैतिक क्षेत्र में प्रयुक्त किया है। किन्तु यह तो कुछ इने-गिने उन्हीं ही के समान साधु-हृदय और श्रेष्ठतम व्यक्तियों का धर्म हो सकता था, हो सकता है और होगा। यह युद्ध नहीं, यह तो अनन्त रूपों से अपने आपको वलिदान करना है। सम्पूर्ण विश्व के पददलित गुलामों की दासता के विरुद्ध उनके हृदय में घोरतम असन्तोष है, ऐसी अनन्त बेचैनी है कि वे उस समग्र दस्यु समाज के उत्थान को एक ही दिन में पूर्ण करने के लिये व्यग्र हो उठे हैं। किन्तु उनकी दृष्टि मनुष्य के पूर्ण स्वतंत्र पारिवारिक जीवन की उस अन्तिम सादगी पर जमी हुई है, जहां पूर्ण शांति और समानाधिकार के साथ साथ सब अपने अपने राजा होते हैं। वे चाहते हैं कि समस्त मानव समाज की आन्तरिक स्वतंत्रता में काले-गोरे के समस्त भेद-भाव सदा के लिये स्वाहा हो जाँय।

दिन में एक गज कपड़ा बुनो, तलवार पर धार धरो, चित्र

बनाओ या मिट्टी का घड़ा बनाओ, चाहे कच्चे चमड़े के टुकड़े को पकाओ और चाहे अपने खेत को जोतो-बोओ, चाहे गायें चराओ या और भी कोई काम करो, सब ठीक है। केवल सभा-समाजों से, सदा के लिये अपना मुंह मोड़ लो और सरकार का बहिष्कार करो। फिर वह जैसा चाहे तुम्हारे ऊपर शासन करती रहे। भारतवर्ष भर की बात न सोचो, सोचो अपने को और अपने परिवार को, अपने कठिन परिश्रम के बल पर उसे पालन-पोषण करने की बात। फ़ेक्टरियों और मिलों की बात मत सोचो, क्योंकि एक दिन पाश्चात्य जगत् से भी उनकी जड़ उखड़ जायगी। क्योंकि वे तो स्वशासित देशों में भी किसी विदेशी शासन की सत्ता से कम नहीं। जिस बात को यूरोप देख-सुन चुका है और खाली हाथ घर लौट रहा है; उसे दुहराने की क्या आवश्यकता? मनुष्य की बात सोचो, मशीन की नहीं और आराम के साथ अपने प्यार-भरे घर में अपनी स्त्री और बाल-बच्चों को प्यार करते हुए जीवन व्यतीत करो। दिन-प्रति-दिन उन्हें अधिकाधिक जानोगे, अधिकाधिक प्यार करोगे, उससे कहीं अधिक जितना किसी दार्शनिक आत्मा या परमात्मा को कर सकते हो। तुम्हारा अल्ला, मोहम्मद के लिये चाहे जितना सच्चा रहा हो तुम्हारे लिये तो एक कल्पना-जल्पना से बढ़ कर नहीं। इस लिए अपना सारा ध्यान चुपचाप, शान्ति के साथ, अपने मन को अपने ही प वित्र कार्यों की प्रसन्नता से भर कर अपने पारिवारिक जीवन को मधुर से मधुरतम बनाने में ही केन्द्रित करो। यही तो वास्तव में प्राचीन ग्राम्य जीवन की ओर लौट चलना है। इसका सीधा-सादा अर्थ है, अपने हाथ में हल पकड़ो और राज-सिंहासनों पर बैठने की इच्छा को नमस्कार करके स्वतंत्र वायु में श्वास लो।

मैं सोचा करता हूँ कि इस भग्नहृदय संसार के लिये ईश्वर

का कुछ ऐसा ही संदेश हो सकता है। किन्तु जब तक हम उसे अपनाते नहीं, तब तक केवल शासन के परिवर्तन से किसी भी जाति को सच्चा स्वराज्य नहीं मिल सकता—जो एक दिव्य सहयोगपूर्ण जीवन का नाम है, जहां छोटे से छोटे से लेकर बड़े से बड़े तक एक समान शक्तिसम्पन्न और अपने प्यारे घरों में राजाओं जैसी स्वतंत्रता का उपभोग करते हों, जहां एक समान शक्ति-सम्पन्न राजाओं जैसी स्वतंत्रता से हम अपनी भूमि को जोत-बो सकते हों, और जहां एक समान शक्तिशाली और राजाओं जैसी स्वतंत्रता के साथ हम सच्चे नागरिक की भांति निर्भय वायुमण्डल में अपने बाल-बच्चों को पालपोस सकते हों। किन्तु ऐसे चतुर्दिक नैतिक विकास के लिये आवश्यकता होती है एक सैनिक शक्ति के सबल संरक्षण की, अन्यथा वह उस परिस्थिति में अधिक दिन नहीं टिक सकता, जिसे इन नैतिक संगठनों के नष्ट-भ्रष्ट करने में मजा मिलता है और जो उन्हें बदल कर केवल पशुबल के आधार पर स्थापित अनैतिक संगठनों का निर्माण करना चाहती है। भूतकाल में भी कोई धर्म बिना कृपाण हाथ में लिये आराम की सांस नहीं ले सका। और यह विचारधारा भी एक ऐसा नूतन धर्म है, जिसे अपनी एक कृपाण चाहिए अन्यथा, हवायें उसे तितर-बितर कर देंगी और फलने-फूलने से पहले उसके अंकुर मुरझा जायंगे।

अब मैं नीचे स्वामी राम के लेखों में से इस विषय के कुछ उद्धरण पाठकों की भेंट करता हूँ—

एक अमरीकन विद्वान का कथन है—

"मैंने मनुष्यों पर और संसार की वस्तुओं पर विचार किया है, खूब ही विचार किया है—

और जैसा मेरे काका कहा करते थे—

राम के एक पत्र की प्रतिलिपि

ॐ नमो नारायणाय।

मया हतांस्त्वं जहि मा व्यथिष्ठा
युध्यस्व जेतासि रणे सपत्नान्॥

काम तो भगवान ने पहले
ही किया हुवा है,
यह हम तुम व्यक्तियों तो
बहाना है॥

भगवन्,
नयपाल को भेजा
हुवा आप का प्रेम पत्र मिला
प्रभो, आप का आरंभ किया
हुवा कार्य तो अवश्य प्रेम
फले फूलेगा और फैलेगा॥

राम आप के साथ है।

शनैः शनैः सारे भारत की सहायता आप के साथ हो जाती है॥

राम का यहां वनों में कुछ काल व्यतीत करना बड़ा आवश्यक था॥

जैसे भूखे को रोटी न मिले तो मरता है वैसे यह राम एकान्त सेवन, प्रेम में रुदन, मस्ती में झूमना, यदि न पाए तो जी नहीं सकता॥ जिन को मौज हो इस बात पर पड़े हंसें॥

॥ तं त्वा भग प्रविशानि स्वाहा। स मा भग प्रविश स्वाहा।
॥ तस्मिन् सहस्रशाखे। निभगाऽहं त्वयि मृजे स्वाहा॥॥
व्यशेम देव हितं यदायुः॥॥ आप का अपना आप राम तीर्थ ॐ॥

कि यदि प्रार्थना के साथ साथ, हाथ में हाथ मिलाकर लोग काम नहीं करते, तो फिर उनकी प्रार्थना से लाभ ?

यदि तुम किसी को चाहते हो और उस पर अपना दिल लगाया है तो क्या अपनी दोनों आँखें भिगोकर उसके लिये रोते-धोते ही रहोगे ?

आंसू बहाने से काम न चलेगा, उसके लिये बहाना होगा पसीना—श्रमजनित स्वेद !

यही शिक्षा तो मेरे काका मुझे दिया करते थे। ”

वाह्य परिस्थिति के अनुरूप निर्भीक एवं यथार्थ क्रियाशक्ति का होना बुद्धिमानी का यथार्थ लक्षण है। आवश्यकतानुसार काम करने की योग्यता का न होना पागलपन की निशानी है। प्रकृति का कठोर नियम सब के सिर पर है—'बदलो या मर मिटो'। आगे बढ़ते हुये समय के साथ हाथ में हाथ मिलाकर चलो और मात्र इसी उपाय से तुम जीवन संग्राम में विजयी हो सकते हो। (भारतवर्ष ! प्रकृति के इस आदेश को नोट कर लो।)

भारतवर्ष

कोई मनुष्य उस समय तक परमात्मा के स्वरूप के साथ अपनी अभेदता कदापि अनुभव नहीं कर सकता, जब तक कि समस्त राष्ट्र के साथ अभेदता उसके शरीर के रोम-रोम में जोश न मारने लगे।

अपने हाथ से जलायी हुई अग्नि के मुख में उस बहुमूल्य घी को व्यर्थ नष्ट करने के स्थान पर आप सूखी रोटी के छिलके उस जठराग्नि के अर्पण क्यों नहीं करते, जो कि भूखे मरते किन्तु जीवित लाखों नारायणों के हाड-मांस को खाये जा रही है ?

सर्वोपरि श्रेष्ठ दान जो आप किसी मनुष्य को दे सकते हैं, वह विद्या या ज्ञान का दान है। आप किसी मनुष्य को आज भोजन खिला

दें, कल वह फिर उतना ही भूखा हो जायगा। आप उसको कोई कला सिखला दें तो वह जीवन पर्यन्त अपनी जीविका प्राप्त करने के योग्य हो जाता है।

देश की आधी जनता तो भूखों मर रही है और शेष आधी स्पष्टतः फ़िज़ूलख़र्ची, आवश्यकता से अधिक सामान, सुगन्ध की बोतलों, मिथ्या गौरव, ऊपरी चमक-दमक, और सभी प्रकार के बहुमूल्य आमोद-प्रमोद, गन्दे धन और रोगी दिखावटों के तले दबी पड़ी है।

भारतीय राजा और भारतीय अमीर अपने सारे बहुमूल्य रत्नों और शक्तियों को खोकर खाली लम्बी चौड़ी उपाधियों, और बेमतलब की पदवियों से युक्त 'ग़लीचे के शेर' जैसे रह गये हैं।

कुछ लोग ऐसे हैं जिनके लिये देशभक्ति का अर्थ है भूतकाल के लुप्त गौरव पर निरन्तर सोच-विचार में डूबे रहना। ये दिवालिये साहूकार अपने उन बही खातों की गहरी देखभाल किया करते हैं, जो वस्तुतः बेकार हो गये हैं।

ऐ नवयुवक भावी सुधारक! तू भारतवर्ष की प्राचीन रीतियों और परमार्थनिष्ठा की निन्दा मत कर। निरन्तर विरोध के नये नये बीज बोने से भारतवर्ष के मनुष्य एकता प्राप्त नहीं कर सकते।

क्षुद्र अहंकार को त्याग कर और इस प्रकार देश के साथ तदात्म होकर आप जो ध्यान करेंगे, देश आपके उस ध्यान में आप का साथ देगा। आप आगे बढ़ो, तो आपका देश आपके पीछे-पीछे चलेगा।

उन्नति के लिये वायुमण्डल तैयार होता है सेवा और प्रेम से, न कि विधिनिषेधात्मक आज्ञाओं और आदेशों से।

जो मनुष्य लोगों का नेता बनने के योग्य होता है, वह अपने सहायकों की मूर्खता, अपने अनुगामियों की विश्वासघातकता, मानव

जाति की कृतघ्नता और जनता की गुण-ग्राहक-हीनता की कभी शिकायत नहीं करता।

किसी देश की शक्ति छोटे विचारों के बड़े आदमियों से नहीं, किन्तु बड़े विचारों के छोटे आदमियों से बढ़ती है।

पूर्ण प्रजातंत्र शासन, समता, बाहरी सत्ता का भार उतार फेंकना, धन एकत्र करने के व्यर्थ भाव को दूर रखना, समस्त असाधारण अधिकार को परे फेंकना, बड़प्पन की शान को ठुकरा देना, और छुटपन की घबराहट को उतार डालना—यही भौतिक क्षेत्र में वेदांत है।

प्रत्येक मनुष्य को अपना स्थान स्वयं निर्धारित करने के लिये एक समान स्वतंत्रता दो। हमारा सिर चाहे जितना ऊँचा रहे, परंतु पाँव सदा सबके साथ पृथ्वी पर ही जमे रहें। वह कभी किसी मनुष्य के कन्धे अथवा गर्दन पर न पड़ें, चाहे वह निर्बल और स्वयं राजी ही क्यों न हो।

झूठे राजनीतिज्ञ शक्ति के भावों को जाग्रत किये बिना ही, अर्थात् स्वतंत्रता और प्रेम के भाव को लाये बिना ही राष्ट्र को उन्नत करने की बात सोचा करते हैं।

अमरिका और यूरप का उत्थान ईसा के व्यक्तित्व के कारण से नहीं हुआ है। उन्नति का असली कारण तो अज्ञात रूप से वेदांत का आचरण हुआ है। भारतवर्ष का पतन भी आचरण में वेदांत के अभाव से ही हुआ है।

विदेशी राजनीति से बचने का एकमात्र उपाय है आध्यात्मिक स्वास्थ्य के विधान को अपनाना अर्थात् अपने पड़ोसी से प्रेम करने के नियम को जीवन में उतारना।

हिन्दुओं में हमको नुक्ताचीनी का भाव जाग्रत नहीं करना है, किंतु

जाग्रत करना है गुण-ग्राहकता, भ्रातृत्व की भावना, समन्वय की बुद्धि, कार्यों और श्रम के गौरव में सहयोग।

अपने व्यक्तित्व का सम्पूर्ण समाज, सम्पूर्ण राष्ट्र और प्रत्येक वस्तु के समक्ष दृढ़ता पूर्वक प्रतिपादन करो।

जब कि जाति पाँति के भावों का कांच जैसा जल्द टूटने वाला पर्दा हृदयों का मिलाप नहीं होने देता, उस समय यदि अपनी समस्यायें विवेक और न्याय द्वारा निपटाना चाहें तो उसका और भयंकर उल्टा परिणाम होता है।

मत-मतान्तरों की साम्प्रादायिकता ने मनुष्य के मनुष्यत्व को मेघाच्छादित कर डाला है और उनके सर्व-सामान्य स्वदेशाभिमान को ग्रहण लगा कर ग्रस लिया है।

जिन्हें भूल से तुम 'पतित' कहते हो, वे अभी "उठे नहीं" हैं। वे अभी उसी प्रकार के विश्वविद्यालय के आगन्तुक विद्यार्थी हैं, जिस प्रकार किसी समय तुम भी थे।

भारतवर्ष के प्यारे पुराणप्रिय शास्त्रपरायण भाइयो! शास्त्रों का उचित प्रयोग करो। देश का धर्म तुम से जातिपांति के कठोर बंधनों को ढीला करने और तीक्ष्ण जाति-भेद-भाव की कटुता को राष्ट्रीय सहानुभूति से दबा देने का आदेश देता है।

यदि आप नई रोशनी को आत्मसात् करने को सहर्ष तैयार नहीं हैं, उस नये प्रकाश को जो आप ही के देश की प्राचीन रोशनी है, तो जाओ और पितृलोक में पूर्व पुरुषों के साथ निवास करो। यहां क्यों ठहरे हो? प्रणाम!

आज की न पूछो, भारतवर्ष के स्वामी और पंडित लोग तो

अपनी जाति की तमोगुणी निद्रा को बनाये रखने के लिये लोरियां गा रहे हैं।

स्वतंत्र विचार भारतवर्ष में पाखंड नहीं, घोर पाप समझा जाता है। केवल वही, जो कुछ संस्कृत भाषामें पाया जाता है, पवित्र माना जाता है।

यदि कोई बालक ईसाई हो जाता है तो वह अपने हिन्दू पिता का हाड-मांस होते हुए भी गली के कुत्ते से अधिक 'गया बीता', अपरिचित हो जाता है।

सभ्य समाज में स्त्री को निर्जीव पदार्थ का दर्जा दिया जाता है। पुरुष अपने कामों में सर्वथा स्वतंत्र है, स्त्री के हाथ पाँव कसकर जकड़े हुए हैं। वह आज एक पुरुष की सम्पत्ति है, तो कल दूसरे पुरुष की बन जाती है।

सभ्य समाज के मुख पर यह बड़ा भारी कलंक है कि 'स्त्री' व्यापार की चीज़ बनी हुई है। और जिस प्रकार पेड़, घर, या धन-धाम मनुष्य की सम्पत्ति होती है, उसी प्रकार स्त्री भी मनुष्य की सम्पत्ति और उसके अधिकार में मानी जाती है।

स्त्रियों, बालकों और श्रमजीवी जातियों की शिक्षा पर ध्यान न देना उन्हीं शाखाओं को काट गिराना है, जिनके आश्रय पर हम खड़े हुए हैं। नहीं, यह तो राष्ट्रीयता के वृक्ष की जड़ पर ही घातक कुठाराघात करना है।

सिर में दर्द कौन पैदा करता है? कमर क्यों झुक जाती है? छाती में धड़कन कैसे पैदा होती है? पैरों के बदले सिर के बल चलने से। देखो, तुम्हारे पैर सदा पृथ्वी पर जमे रहें और तुम्हारा सिर वायु (परमानन्द) में लहराता रहे। अन्यथा उस दैवी विधान की अवज्ञा होगी। अपने सिर पर पृथ्वी का भार उठाना और उसे बुद्धिमानी का जीवन

कहना ? उस दिव्यात्मा, परमात्मा की अपेक्षा नाम-रूप दृश्य जगत् को कदापि अधिक महत्व मत दो।

प्रचलित रीतियों के अनुसार हवन-कार्य यज्ञोत्सव का एक महत्वपूर्ण एवं आवश्यक अंग है। उसके कुछ वर्तमान भक्तों के ओंठों पर एक बड़ा मामूली सा तर्क यह रहता है कि हवन के द्वारा वायु शुद्ध होता है और सुगंध की लपटें चारों ओर बिखरती हैं। वास्तव में यह बड़ा टेढ़ा-मेढ़ा तर्क है। नासिका को सुखदायक सुगंध की ये लपटें सभी अन्य उत्तेजकों की भांति घड़ी भर के लिये स्फूर्ति देती हैं किन्तु प्रतिघात-रूप उनके अनन्तर अवसाद का होना भी अविनार्य है। उत्तेजक वस्तुयें भले ही हमें अपने भावी शक्तिभाण्डार से कुछ उधार लेने में सहायक हों किन्तु वे सदा चक्रवृद्धि व्याज की दर पर ही हमें उधार दिलाती हैं और ऋण को चुकाने का नाम नहीं लेतीं।

राम तुम्हें यह बतलाना चाहता है कि तुम्हारे धर्म-ग्रन्थों में यज्ञोत्सव के अवसर पर जो देवताओं के प्रकट होने की बात लिखी है—वह अक्षरशः सत्य है। किन्तु वह तो केवल सामूहिक एकाग्रता की शक्ति का महत्व है। मनोविज्ञान के आधुनिकतम शोधों ने यह सिद्ध कर दिखाया है कि एकाग्रता का प्रभाव एक ही अवसर पर उपस्थित एक-हृदय मनुष्यों की संख्या के वर्ग के अनुपात में बढ़ता है। इसीलिए हमारे यहां सत्संग की इतनी महिमा गायी गई है।

जन साधारण में और विशेष कर स्त्री और बच्चों में (इसीलिए आगामी पीढ़ियों में) प्रेम और ऐक्य पैदा करने का एक प्रभावशाली उपाय नगर-कीर्तन भी हो सकता है, जिसमें सम्मिलित होकर लोग निर्भयता से गाते-बजाते और नाचते हुए अपने नगर के कोने कोने में सत्य की घोषणा कर दें।

उन्नीसवां परिच्छेद

कवि के रूप में स्वामी राम

[उनकी कविताओं का छोटा सा संग्रह]

स्वामी राम के लेखों और व्याख्यानों के संग्रह की भूमिका में मिस्टर सी० एफ० एण्ड्रूज़ इस प्रकार लिखते हैं—

उन्होंने निस्संदेह बहुत कुछ बदला होता, और संभवतः उसे बहुत कुछ संक्षेप भी किया होता; साथ ही उन्होंने अपनी कविताओं में छन्दः-शास्त्र के नियमों के अनुसार संशोधन भी किया होता किन्तु ऐसा मालूम होता है कि ज्योंही कोई अन्तः प्रेरणा हुई त्योंही उन्होंने अपने भावों को बिना किसी सचेष्ट संशोधन के अपने तात्कालिक शब्दों में कागज़ पर अंकित कर दिया। किन्तु इस प्रकार जहां उनके पाठकों को कुछ हानि हुई है, वहां उतना लाभ भी है, क्योंकि सजावट और संशोधन की कमी उनके चिरनावीन्य और सजीवता के द्वारा आशा से अधिक पूरी हो गई······अतः पाठकों को पुनरुक्ति दोष तथा चमक-दमक का अभाव उतना नहीं खटकना चाहिए, जब कि इन गाण्डुलिपियों में स्वामी राम का व्यक्तित्व हमारी आंखों के सामने इतना सजीव हो उठता है।

* * * *

उनकी कविताओं के इस वर्णन से मैं उनके जीवन एवं उपदेशों के

उस अन्तिम पहलू पर पहुंचता हूँ जिसका मैं यहां उल्लेख करना चाहता हूँ और जिसमें मैं यथेष्ट संकोच एवं आत्मविश्वास की कमी का भी अनुभव करता हूँ, क्योंकि यह बहुत संभव है कि बहुत से लोग मेरी राय से सहमत न हों। फिर भी जो बात मैं यहां कहने का साहस करता हूँ, वह संक्षेप में यह है कि मुझे स्वामी राम की कविताओं में ही, उनके साहित्य का सबसे अधिक मूल्य दिखायी देता है, क्योंकि उनके दर्शनशास्त्र के पीछे उनका कवित्वशील हृदय बराबर झलक मारता रहता है। प्रकृति के प्रति उनका अद्‌भुत प्रेम—जीवन भर और मृत्यु में भी एक समान प्रबल, त्याग और संन्यास की उत्कट इच्छा, अन्तिम तथ्य के लिये अतिशय जिज्ञासा, सत्य की खोज में आत्म-बलिदान और इस प्रकार स्वार्जित आत्मविश्वास का आनन्द और अट्टहास—ये और ऐसे ही अनेक सद्‌गुण उनमें थे, जिनके वशीभूत होकर कविता उनके हृदय से अनायास फूट पड़ती थी, और दार्शनिक के पीछे सच्चे कवि के दर्शन हमें यत्र-तत्र-सर्वत्र मिल जाते हैं।

मिस्टर एण्ड्रूज ने और भी लिखा है—

······मेरा सारा हृदय स्वामी राम के प्रति खिंचने लगता है, जब मैं त्याग और बलिदान पर उनके उन सुन्दर विचारों को पढ़ता हूँ जिसे उन्होंने 'अनादि जीवन का नियम' माना है, अथवा जब मैं नैसर्गिक सौंदर्य के प्रति उनकी उत्कट लालसा और सजीव अनुराग का दर्शन करता हूँ, अथवा जब मैं, केवल उदाहरण के लिये, वैवाहिक जीवन विषयक उनके आदर्श पर मनन करता हूँ। तब मुझे ऐसा अनुभव होता है, मेरे हृदय में वही सहानुभूति जाग्रत होती है, जो उपनिषदों की कविता पढ़ने से अथवा हिन्दू धर्म के उस सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ श्रीमद्‌भगवद्-गीता के कुछ विचारों का अनुशीलन करते समय होती है। स्वामी राम के उपदेशों में स्थान स्थान पर एक ही ध्वनि निकलती है कि केवल अन्तः करण के निर्विकल्प मौन में ही हम ब्रह्माण्ड के उस दिव्य, शान्त और सामंजस्यपूर्ण संगीत को सुन और समझ सकते हैं!

जिस प्रकार पाश्चात्य जगत् के 'वर्ड्सवर्थ', 'कोलरिज', 'शैली', 'कीट्स' आदि कवियों में अज्ञाततः पौर्वात्य जगत् की भावनाओं का स्पर्श हुआ है, उसी प्रकार स्वामी विवेकानन्द, स्वामी राम आदि सच्चे पौर्वात्य प्रतिनिधियों में और मिसेज सरोजिनी नायडू आदि अनेक कवियों में पाश्चात्य जगत् की भावनाओं का प्रादुर्भाव हुआ है। इस विषय की चर्चा करते हुए वे उसे इस प्रकार समाप्त करते हैं—

पूर्व की ओर से स्वामी विवेकानन्द और स्वामी रामतीर्थ—इन दोनों ने अपने उन सिद्धान्तों द्वारा जिन्हें इन्होंने 'व्यावहारिक वेदान्त' का नाम दिया था, पश्चिम से मिलने की चेष्टा की है। इन्होंने अद्वैत वेदान्त की आधुनिक ढंग से व्याख्या करके ईसाई धर्म के सेवा और परोपकार भाव-जनित सामाजिक और राष्ट्रीय प्रयोगों के साथ सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास किया है। किन्तु ध्यान देने की बात केवल इतनी है कि इस सम्मिलन की एक सीमा है। क्योंकि इनकी इस नूतन हिन्दू-उद्भावना के अन्तर्गत पूर्व का सामाजिक और राष्ट्रीय विकास फिर भी २००० वर्षों से ईसाई धर्म की शिक्षा-दीक्षा के अन्तर्गत चलने वाले यूरोप के विकास से स्वरूप और गति, दोनों में कुछ भिन्न ही रहेगा।

पूर्व और पश्चिम की इस सम्मिलन-योजना को आगे बढ़ाने के लिये स्वामी रामतीर्थ में कुछ अद्भुत और अपूर्व क्षमता थी। इनमें भारतीय विचारधारा को पश्चिम के हृदय में पैठाने की योग्यता थी। इसी लिए मैं उनकी इस व्याख्यान माला को अपने देशवासियों के लिये मूल्यवान् समझता हूं।

स्वामी राम की कविताओं के विषय में मिस्टर सी० एफ० एण्ड्रूज इस प्रकार लिखते हैं—

उनके भीतर का उल्लास ही वह चीज़ है जो उनकी कविताओं में यत्र-तत्र-सर्वत्र लहराता दिखायी देती है। इतना ही नहीं, उसके द्वारा

हमारे हृदयों में भी उनके उसी अट्टहास की एक सूक्ष्म प्रतिध्वनि जाग उठती है और जैसा मैं पहले कह चुका हूं कि उनकी कविताओं की वाह्य रूप-रेखा चाहे कहीं कहीं कुछ ऊबड़-खाबड़ और विचित्र सी भले दिखायी दे, इसमें सन्देह नहीं कि सहृदय पाठक शब्दों के इस अपर्याप्त और अपूर्ण प्रवाह में भी उनकी अन्तरात्मा को सहज ही देख सकते हैं।

भारतवर्ष में वे उर्दू में कविता करते थे। अमरीका से लौटने पर उन्होंने फिर उर्दू में 'वाल्ट ह्विटमैन' के मुक्त छन्द की शैली में कविता प्रारम्भ की। अमरीका में रहते समय ही शायद उनको अपनी भावनाओं को अँग्रेजी में व्यक्त करना पड़ा। मिस्टर एण्ड्रूज तो कहते हैं कि उनकी कविताओं की पृष्ठभूमि खुरदरी और विचित्र सी है। किन्तु, जब मैं नवयुवक और नये नये साधु वेष में था और जब मैंने टोकियो में सर्व प्रथम उनकी कविता सुनी थी तो उनकी कविताओं की रूप-रेखा में कोई दोष देखना तो दूर मैं उनके भावों को शब्दशः पीने लगा था जैसे हम सूर्य-ताप को ग्रहण करते हैं। क्योंकि उस समय उनकी भीतरी आत्मा मेरे सारे हृदय में ओत-प्रोत हो रही थी, जिसके तारों को उनके शब्द आते, छूते और झनझना देते थे। इन कविताओं के भीतर बहने वाला भाव अभी 'निर्माण में' है। वह एक सुनिश्चित रूप-रेखा में बिखर कर हमारे सामने प्रकट नहीं हुआ है। उनकी कुछ कवितायें संगीत पर भी गायी गई थीं, और प्रायः उनके भाषणों के पहले श्रोतृमण्डली के सामने गायी भी जाती थीं।

जैसा मैं पहले किसी जगह बता चुका हूं, वे कलाकारों की कृतियों को अपनी कृतियों के साथ एक में मिला कर गड़बड़ सड़बड़ कर देते थे और कभी दूसरे लोगों की कविताओं को ऐसे गाते थे, जैसे उन्हीं की बनायी हो। उनमें वास्तविक निर्माता का नाम ही न देते थे। किन्तु उनकी कविता का मौलिकपन तो हमें उनके

अपने आनन्द, उनके हृदय के गाम्भीर्य में दिखायी देता है, न कि उसकी वाह्य रूप-रेखा में। वे मानो जिस किसी की वीणा को उठा लेते और अपने स्वर से उसके तार झंकृत करने लगते।

उनके काव्य की आत्मा सब से अधिक उनके पत्रों में व्यक्त होती है, जो इस पुस्तक में अनेक स्थलों पर दिये गये हैं और फिर उन "वीणाओं" में जो दूसरों की उठाकर उन्होंने बजायी हैं; थोड़ा सा संग्रह उनका भी इस पुस्तक में दिया गया है और फिर उनकी अपनी कविताओं में, जिनमें से कुछ नीचे दी जाती हैं। व्यापक रूप से हृदय के मधु संगीत की भांति उनकी आत्मा उनके अमरीकन सम्भाषणों में भी यत्र-तत्र बिखरी दिखायी देती थी, जो उन्होंने हृदय के उद्गारों के रूप में ही सुनाये थे, और प्रेस में जाने से पहले पुनः जिन पर वे अपनी क़लम नहीं चला सके थे। उनके इस गद्य से जो उन्होंने लिखा नहीं, बोला था, उस आत्मा को ढूंढ निकालना कुछ कठिन सा है; पर, जैसा मिस्टर एण्ड्रूज़ कहते हैं, उनका सर्वश्रेष्ठ महत्व उनके भीतर बहने वाली इसी काव्यधारा में है। उनकी यह काव्यधारा उनके भारतीय विषयों पर—राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक विषयों पर—लिखे हुए निबन्धों में कुछ संस्कृत, कुछ बौद्धिक और कुछ भारी भारी सी हो उठी है। जो हो, कम से कम मुझे तो इन पिछली कृतियों में उनके प्रारम्भिक उद्गारों और संगीतों का वह प्रकाश, वह उफान नहीं मिलता, जो 'अलिफ़' में था और जो उनके अमरीकन व्याख्यानों और कविताओं में तैरता-सा फिरता है।

निम्न कवितायें अमरीका में संगीत पर गायी गयी थी :—

मेरा यह हृदय देव-मन्दिर, इसके भीतर—
जल रहा प्यार का दीप, रहा निज वैभव बिखेर।

तीखे काँटों से घिरा भले ही प्यार-सुमन,
पर मुक्त भाव से लुटा रहा निज सौरभ-धन।
आनन्द तरंगित अमर ज्योति का यह निर्झर,
हो रहा प्रवाहित निज प्रकाश-वैभव लेकर।
स्वर्णिम पंखों वाले स्वतंत्र ये विहग सुघर!
हैं सुना रहे आनन्द-प्रशंसा के गायन।
रंगीन बनी मधुऋतु के ये लघु शिशु सुन्दर,
कर रहे मधुर कण्ठों से गाकर अभिनन्दन।
ऊषा फैला कर रंग गुलाबी मनभावन,
पर्वत-सर मैदानों को सजा रही शोभन।
करुणा का यह प्रकाश परिवेश अनन्त सघन,
कर रहा अमृत शीतल धारा का मृदु वर्षण।
सतरंगा इन्द्रधनुष नभ का ले आकर्षण,
रंग रहा क्षितिज विस्तार बिखर, मुस्कान किरण!

दुनिया

मैंने जग को देखा, जाना, अध्ययन किया,
इस बालबोध पुस्तक ने कितना सिखलाया!
ये चित्र-खिलौनों से चित्रित—इसके अक्षर
यों विविध भांति से इसने सब कुछ बतलाया।
तब ये इतने आश्चर्यजनक जो चित्राक्षर,
मैं त्याज्य समझ अब इन्हें फेंक देता भूपर।
पुस्तक के पन्ने फाड़ फाड़ अब दुनिया की,
हूँ जला रहा अपना हुक्का मैं एकाकी।
कश खींच उड़ाता धूयें का बादल मुख से,
लखता फिर चक्करदार उसे उड़ता सुख से।

सभ्यता के प्रति

सभ्यता एक उद्देश्य हीन है सपना भर
ऊपर से ऊँचे नाम-रूप, पर क्या भीतर ?
तुम उठा रहे रजमय आँधी कृत्रिमता की,
तम में अपना ही ज्ञान नहीं तुम में बाक़ी।
तुम शैल शिखर पर बैठ केश-विन्यास निरत,
चिन्ताओं के हित आत्मा की हत्या में रत।
करने को जग को खुश, पाने को व्यर्थ मान,
अपवित्र बनाते हो तुम निज आत्मा महान्।

* * *

तुम नीच गुलामों की सी लम्पटता में रत,
तुम फ़ैशन के हो दास, धूर्त तुम बाइज़्ज़त !
अनुकरण कर रहे तुम कपि से पर-धर्म रीति,
तुम तो निर्मित करते कृत्रिम आचार नीति।
'होगा तो इससे लाभ' ? प्रश्न यह पग पग पर,
'जाने क्या लोग कहेंगे' ? तुमको प्रति पल डर।
तुम कितने कातर, क्षुद्र, वेत्रवत् निर्बल तन,
हर एक मोड़ पर जीवन के तुम पीत वदन !

* * *

तथाकथित सभ्यों से--

ओ सभ्यो ! आलस के प्रति इतना आकर्षण !
तुम ओ निर्बलता और कपट के सम्मिश्रण !
तुम सूक्ष्मदृष्टि भावुक, होते झट तप्त अरुण,
जैसे हो शोथ युक्त कोई भारी सा व्रण !

* * *

कैसी घबराई भीड़! मूढ़ लाखों जन-गण!
औरों के मति-अनुसार तुम्हारा है जीवन।
निज आत्मा ही सम्राट् उसे क्यों ठुकराते?
बहुमूल्य वस्तु से क्या सच तुम गौरव पाते?

* * *

तुम घड़ी-पेण्डुलम् सदृश झूलते इधर-उधर,
विस्तार किया करते लघु बातों को नश्वर।

* * *

ले रहे प्रेम की जगह नीच व्यापारिक हित,
आत्मा का हंस बँधा जाता लक्ष्मी से नित।
जन-गण न रहा अब हँसने रोने को स्वतंत्र,
करने को मुक्त न प्यार, न सोने को स्वतंत्र!

* * *

छद्म ही बना आच्छादन, लज्जा, अवगुंठन,
यश और नाम की चिन्ता सता रही प्रतिक्षण।
अस्वास्थ्य तुम्हारा स्वास्थ, बुरा ही तुम्हें भला,
अनुचित धन संचय तुमको है नित रहा जला।

* * *

हैं वस्त्र तुम्हारे कफ़न, क़ब्र से और भवन,
आत्मा को दफ़ना कर करते प्रलाप-क्रन्दन।
तन की रक्षा हित करते आत्मा को कलुषित,
खो रहे समूचा एक भाग की रक्षा-हित।

* * *

तत्व अधीनस्त ही सभी तुम्हारे हैं स्वामी,
निज कटु पीड़क इच्छाओं के तुम अनुगामी!

तव तन है जड़ विस्तारमात्र, जीवन विहीन,
कुण्ठा तनाव से भरा और भावनाहीन।

* * *

जागो, जागो, तुम बन जाओ जगकर चेतन,
अब दूर करो तन्द्रा, फेंको निज अवगुण्ठन।
हो तुम्हीं विश्व के स्वामी, जन जन के ईश्वर,
फिर क्यों यह नर्तन प्रेतों के सम्मुख झुककर?

* * *

अभिलाषा की छायाओं को तुम दूर करो,
रवि तारक अग्नि सभी से बढ़कर ज्योति भरो।
चिन्ता ममता सब दूर करो, मृत वस्तु मान,
लो, सुनो देवदूतों का यह आनन्द गान।

* * *

मुझ में न रहा अब भौतिक वैभव हित आदर,
सब भेद भाव से शून्य बना मेरा अन्तर।
रह गयी न ईर्ष्या, भय, चिन्ता मेरे भीतर,
अब मैं हूँ प्रिय का स्नेहपात्र सबसे बढ़कर।

* * *

सारे रहस्य-गोपन मेरे हित आज प्रकट,
मेरे हित दोनों एक दूर हो या कि निकट।
मैं पहुँच गया हूँ अब असीम की सीमा पर,
निस्संग हुआ, मैं उठ सम्बन्धों से ऊपर।
मैं हूँ जीवन, मैं अनादिक वैभव महान;

ओ त्राहि माम्! ओ त्राहि माम्!!

* * *

तारों को जैसे मन्द बना देता दिनकर,
ज्यों डूब नगाड़े-स्वर में जाता वीणास्वर।
जैसे सरितायें सागर में होतीं विलीन,
जागरण क्षणों में लुटते त्योंही स्वप्नहीन।

* * *

हे सत्य, प्रेम-अग्नि में सभी भय जाता जल,
धो धो कर निज को बना रहा मैं भी निर्मल।
मैं मिटा रहा हूँ दुख, ईर्ष्या, निर्बलता अब,
निज मृत्यु, अहं भावना, दीनता सब की सब।
धरती मां! ओ रवि, चन्द्र, देव! तुमको प्रणाम,
ओ त्राहि माम्! ओ त्राहि माम्!!

* * *

ओ पृथ्वी! सातों सागर ओ,
तुम मेरी पुत्र पुत्रियां हो!
ओ सभी वनस्पति! पशु-पक्षी!
टूटे सब सीमा बन्धन लो!
गाओ अजस्र स्वर में गाओ!
ओ त्राहि माम्! ओ त्राहि माम्!!

सर्वान्विति

मेहराबदार ये नयन द्वार,
इनसे बहता बन अश्रुधार।
या बैठा रहता हृदय-स्वर्ग में मैं सुखकर,
मैं वहाँ बैठकर गौरवमय।
पथ का सबको देता परिचय,
कोई न वहाँ से जाता कभी मुझे तज कर।

* * *

इस जग के सारे नारी नर,
सोते इन बाँहों में आकर।
मुझमें ही वे श्रम खोते या चलते फिरते।
छूता उनके उर तार मृदुल,
वे वद उठते वन ध्वनि छलछल।
मुझमें मेरे ही स्वर से वे बातें करते।

* * *

सुखमय परिणय या मिलन मधुर,
स्वर्ग में या कि इस धरती पर,
ये तो हैं वस धुंधले प्रतीकवत् माया से।
मौलिक मेरा सम्पूर्ण मिलन,
सारे मनुजों से आलिंगन,
इस क्षिप्र और दृढ बन्धन की वे छाया से।

* * *

जैसे मैं स्वर्ण किरण वनकर,
निकला रवि की सी दृष्टि प्रखर,
सुमनों के कोमल उर का हूँ करता भेदन।
फिर मैं प्रसन्न ज्यों रजत किरण,
पूरन मासी के शशि का वन,
निज शून्य भवन में सागर का करता कर्षण।

* * *

सुन्दर प्रभात का मैं मनहर,
ज्यों सुरभित मलयानिल वनकर,
चिटकाता चुम्बन से गुलाब को जगा सरल।

देखता स्वप्न उद्दाम प्रखर,
जैसे टेढ़ा मेढ़ा निर्झर,
ज्यों उदर बीच धारण करता ब्रह्माण्ड सकल।

* * *

ओ विद्युत्! ओ प्रकाश गतिमय!
मन के विचार! ओ ज्योतिर्मय!
आओ, तुम गति में मेरे हो अब प्रतियोगी।
पूरी गति से तुम बढ़ो, बढ़ो,
चाहे तुम कितना तेज उड़ो,
पर व्यर्थ तुम्हारी होड़, विजय मेरी होगी।

* * *

भौतिक तत्वो! ओ तूफ़ानो!
ओ वज्र, दिग्गजो, बलवानो!
आलिंगन हित फैलाता मैं अपनी बाहें।
तुम अश्व जुते मेरे रथ में,
ले चलो दूर अति तुम पथ में,
आगे पीछे, सब ओर, जहाँ तक हों राहें।

* * *

चाँदनी

ऊँची चोटी से पर्वत की,
देखती, खोज मेरी करती,
मेरे एकान्त कक्ष का पता लगाती तुम!
लज्जित युवती सी चकित-नयन,
सब ओर देखती शंकितमन,
आगे बढ़ती भय से पीली हो जाती तुम!

यद्यपि तुम शरमीली शीतल,
फिर भी भर मन में साहस बल,
छिप-छिप आती लज्जा से किये कपोल अरुण !
खिड़की दरवाज़े से घुसकर,
तुम दरी, फ़र्श पर मृदु पद धर,
धीरे से आ जाती करता मैं जहाँ शयन !
फिर चुप-चुप झुक मेरे मुख पर,
लेती भौंहों का चुम्बन कर,
जिससे जागूं, करती फिर नयनों का चुम्बन !
तव ज्योति परस, स्वरमय चितवन,
स्वन-हीन सुरभिमय साँस पवन,
सब मिल ये कर लेते, फिर मेरी नींद हरण !
सुन्दरि, फिर मेरे बिस्तर पर,
तुम साथ लेट जाती आकर,
कुछ देर के लिये साथ-साथ हम सो जाते !
जाती तुम मुझसे लिपट ललक,
मैं पीता तव मदिरा छक-छक,
फिर एक दूसरे में हम दोनों खो जाते !

तब रुक न हँसी मेरी पाती !

(१)

आघात लगा भीषण कटुतर,
बेसुध, भयभीत हुआ जीवन,
जिसने आघात किया निष्ठुर,
वह झिलमिल कम्पित छाया तन,

जब भ्रम की ही छाया से व्याकुल हो जाता तन का स्वामी,
तब रुक न हँसी मेरी पाती !

(२)

छीनने चला जब श्वान मांस,
सर में लख विम्बित निज छाया ।
जो था भी उसको खो बैठा,
सच सुख को खो, धोखा खाया ।
जब जब घटती जग में ऐसी कटु हास भरी अघटन घटना,
तब रुक न हँसी मेरी पाती !

(३)

अब सफ़र ख़तम, आई मंज़िल,
पथ के कटु श्रम का हुआ अंत ।
था सृष्टि-लक्ष्य इतना ही, अब
स्वागत-रत रवि तारक अनन्त ।
लखता इनको फैला चरागाहों में ज्यों मेघों का दल,
तब रुक न हँसी मेरी पाती !

(४)

मैं महाशक्ति अब अमर प्रेम,
मुझमें असीम में क्या अन्तर ?
मिल सर्वात्मा से हुआ एक,
मुझमें विलीन अब स्वर्गिक स्वर ।
हो ऊँच, नीच, समकक्ष, सभी से शान्ति भरी ममता अथोर !
ऊपर नीचे मैं सभी ओर !

(५)

यह ख़ुशी, शान्ति आनन्द परम !
रस लेता सकल प्रकृति में रम !

मैं सृष्टि गीत गाता, देता,
तारों के संग नर्तन फेरी।
सिन्धु में कूद करता घनरव,
है तुमुल युद्ध क्रीड़ा मेरी।
कितना आनन्द, अहा! मेरी गति तीव्र, तीव्रतर है कितनी!
अब रुक न हँसी मेरी पाती!

(६)

उगते रवि क्यों लज्जा, कम्पन,
दूँगा न चपत गाल पर अरुण,
आ, प्रकृति, अरी नन्हीं चिड़िया!
मम रक्त-मांस से निर्मित तन,
मेरी गोदी में आ चपले, मेरा उर जग में कोमलतम!
अब रुक न हँसी मेरी पाती!

(७)

क्या प्यार करूँ? मैं स्वयं प्यार,
कामना नहीं कुछ जीवन में,
जन-जन कण-कण का उर मैं ही,
इच्छा की जगह ख़ुशी मन में,
निज सा ही मैं रमता सब में,
जीवन प्रकाश भरता सब में,
जन-जन जीवन-नौका का मैं, अब एक मात्र हूं कर्णधार!
अब रुक न हँसी मेरी पाती!

अतीन्द्रियता

बाला के खिलते जब गुलाब से गाल सुघर,
मँडराने लगते आसपास तब रसिक भ्रमर!

लेने को मधुर सुधा-रस बनते वे पागल,
इन सब में है मेरे ही आकर्षण का बल !
हिम हीरक बन जाता जगमग मैं ही जमकर,
मेरे संग ही ज्योतित वह ज्वलित हृदय सुन्दर ।
कहता मैं तुमसे तनिक न तुम होना चिंतित,
लखकर यह प्रकृति रहस्यमयी बहुविधि गोपित ।
सब प्रकट मुझे तब प्रकृति, पहेली का आशय !
मुझसे करलो परिणय, मुझमें हो जाओ लय ।
मत ऐसी बात कहो, प्रभु महामहिम ! क्षणभर,
तुम स्वयं सभी स्वामी तुम हो ईश्वर !
प्रत्येक और सबकी सब स्थितियों में स्वामी,
हैं सभी सृष्टि शक्तियाँ तुम्हारी अनुगामी !
तुम स्वयं प्रकृति हो, स्वयं सृष्टि हो, स्वयं नियम !
फिर भी हो विश्व, विचार, सभी से परे परम !
ओ ! तुम नाना सन्देहों से हो पीड़ित,
ओ ! तुम जो नाना जर्जर रूढ़ि-विधान ग्रसित ।
ओ ! तुम जो दुःख वेदनाओं से हो ताड़ित,
ओ ! तुम जो कल की झूठी आशा से वंचित ।
ओ ! तुम जो प्रिय परिजन का लेकर मोह विकल,
ओ ! तुम जिसकी है अब तक हुई न बुद्धि विमल ।
हो रहे दुखी तुम व्यर्थ आज होकर निराश,
ओ मत्स्य ! सिन्धु में भी न तुम्हारी बुझी प्यास ?
है परम स्वर्ग का धाम तुम्हारे ही भीतर,
है बाह्य जगत् में बुद्धि तुम्हारी भ्रमती, पर ।
तुम अन्तर्मुख हो आत्म ब्रह्म को पहिचानो,
भ्रम के भय होंगे दूर सभी, तुम सच मानो ।

आत्मस्थ राम का बोध करो अपने भीतर,
ओ ! है कितना यह सुखद गंध रस लेर सुघर !
भ्रम-प्रेत-भाव को दूर भगाने वाला सब—
कितना विचित्र, रुकती न हँसी है मेरी अब !
कैसी मरीचिका ! सिन्धु फेन को भूमि मान,
दलदल में फँस मानव दे देता व्यर्थ प्राण !
भ्रम सत्य मान आत्मा को अपमानित करता,
वैसे ही दुख भागी मानव भ्रम में मरता !
वेदना, भावना, अभिलाषा, उत्कट साधें,
चाहें घेरें मुझको निज बन्धन में बाँधें !
चाहे आ काम लिपट जाये लिपटन फल बन,
पर ज्यों ही सत्यात्मा का करता हूँ दर्शन—
भागते दूर मुझ से वे जैसे रवि से तम,
मुझसे वे होते अलग फुहारों के ज्यों कण !
पंछी के चिकने पंखों से गिरते तत्क्षण !
है पहले या कि बाद में कलुषहीन हर दम ।

है रुक न हँसी पाती । मेरी यह निस्संभ्रम !

साक्षी स्वरूप होता न प्रभावित जो प्रकाश,
रस भाव न उसमें करते हैं क्षण भर निवास ।
उनके सम्मुख ज्योंही मैं दृष्टि पात करता,
क्षण में विचित्र इन बेचारों का दल मरता ।
स्थानिक आत्मायें भिन्न स्वरूपों में जो स्थित,
जो प्राण-नसों में आत्मायें बहु भांति ग्रथित ।
सब भेद, अहं आवर्त हो गया अब विनष्ट,
मेरे ही हैं अब सभी रूप आकार स्पष्ट ।

मूर्खता भरी यह चालाकी, दुख भाव भरित,
जो आत्माओं का कर लेती है आच्छादन।
वह शत्रु-मित्र के रूप-भाव का कर पूजन,
उरझाती, चुभती, दुख देती चालाकी यह।
रह गयी न मुझमें भेद वृत्ति अब बाकी यह,
करता न राम व्यक्तिगत कभी आक्षेप अतः।
जग में तन जितने हों, आत्मा है एक मगर,
आत्मा महान् वह और कौन मुझको तज कर।
मैं कर्ता, साक्षी, और स्वयं मैं निर्णायक,
मैं स्वयं प्रशंसक और स्वयं मैं आलोचक।
स्वाधीन सभी, सब हैं स्वतंत्र मेरे हित अब,
बन्धन, सीमा, अपराध मिटे मेरे हित सब।
मैं हूँ स्वतंत्र, जग के स्वतंत्र नारी नर,
मैं हूँ ईश्वर, तुम हो ईश्वर, वह है ईश्वर!
रह गये न ऋण-कर्तव्य, मिटे सब धोखा-भय,
मैं ही परमात्मा, दिशा काल मैं निस्संशय।
हूँ अन्तिम स्रोत सभी आवेगों का मैं ही,
उत्थान-पतन भावों का होता मुझसे ही।
मैं हृदय प्यार का, सुन्दरता का मैं हूँ घर,
मैं स्वर्ग विहग की, हंस मोर की, आत्मा वर।
मैं अन्तःकेन्द्र सभी मन की इच्छाओं का,
मैं हूँ प्रेरक उर-उर के सक्रिय भावों का।
मैं प्रबल शक्ति हूं, इस पृथ्वी का आकर्षण,
मैं सत्य स्रोत उसका, जो है सब का कारण।
प्रत्येक वस्तु में मैं अपनी साँसें पाता,
रवि, शशि, पृथ्वी, सब में मैं ही चक्कर खाता।

मैं पवन बीच बहता, बढ़ता पौधे बन कर,
सरि में बहता, फेंका जाता बन वस्तु निकर।
मैं स्वयं उपस्थित, अनुपस्थित, मैं दूर पास,
मैं भूत भविष्यत् स्वयं, कुसुम तारक साहस।
मोहक आँखें, बेसुध करने वाले गायन,
आवेगपूर्ण, आकर्षक मन के अभिव्यंजन।
अति मधुर रजत के ढले शब्द मधुसिक्त अधर,
रेशमी अलक, आलिंगन प्रेमभरा खुलकर।
ये मुझसे औ मेरे ही अति सुखदायक सब,
आनन्द परम यह, मैं कितना आनन्दित अब।
मम राज्य विचारों की सीमा के भी बाहर,
कितना खुश मैं, रुक रहा न मेरा हास प्रखर!

ओम्! ओम्!! ओम्!!!

अति प्रसन्न, अति प्रसन्न, अति प्रसन्न राम!
शान्तिमय, अचंचल, स्थिर, नित्य, पूर्णकाम!
मेरा आनन्द अनवरुद्ध अनश्वर!
बाधायें टिक न सकेंगी इस पथ पर!
मेरे अनुचर हैं सुर-नर, पंछीगन!
महानन्द मेरा है अनिर्वच सघन!
रमता यह राम यहाँ वहाँ सभी ओर,
वहाँ, जहाँ, कहाँ, शब्द को न मिला ठौर!
अब, तब, आगे, सदैव मैं हूँ सब काल,
मैं तब, जब, 'कब' का उठता नहीं सवाल!

'यह','वह','किसका','क्या', ये शब्द जहाँ अन्ध,
मैं हूँ वह जो 'क्या' के प्रश्न से अवन्ध!
पहला, अन्तिम, मध्यम, उर्ध्वंग में ही,
'एक' वह जिसे छूता कौन है नहीं!
एक, पाँच, सौ, सब से मैं सदा गृहीत,
एक और सब मैं, फिर भी संख्यातीत!
मैं कर्ता, कर्म, दृष्टि, ज्ञान, मैं सभी,
परिभाषा किन्तु यह अपूर्ण है अभी!
था, हूँ, मैं सदा रहूँगा—अविनश्वर,
पर है 'स्थिति' की भी सीमा के वाहर!
'मैं' हूँ प्रियतम आत्मा, 'मैं' अहं महान,
मैं न 'मैं', न तुम 'मैं', वह 'मैं' न, यही ज्ञान!

असीमता

हम देख रहे जो कुछ, यह, वह, सभी अनन्त!
सम्मुख वह, उससे भी आगे सभी अनन्त!
निकला अनन्त में से ही जा रहा अनन्त!
पर अविकारी सा ज्यों का त्यों बचा अनन्त!

* * *

यह वाह्य हानि से धोखा खा रहा अनन्त!
फिर वाह्य लाभ भी कुछ दिखला रहा अनन्त!
यह आगमन-गमन, घटना-बढ़ना उसका,
सब वाह्य रूप, पर अव्यय सत्य वह अनन्त!

* * *

ओ ! फैला कितना सौन्दर्य चमत्कार !
हर एक पहाड़ी पर, घाटी में, उस पार !
आश्चर्यजनक मेरा है मृदुल बिछौना,
यह लाल हरा नील पीत रंग का प्रसार !

* * *

है यह अनन्त फैलाता तेजमय,
सब ओर घोर आँधी औ उपल वृष्टि-धार !
सुन्दर, कितना सुन्दर यह विश्व है अनन्त !
सुनता हूं स्वर्गिक मैं वरदानमय पुकार !

खुशी का प्याला

भर गया ख़ुशी से मेरे मन का प्याला,
परिपूर्ण हुई मेरी इच्छाय सारी !
मेरा अनुचर प्रातः समीर मतवाला,
सुमनों के चुम्बन पर मैं हूं बलिहारी !

मेरे हैं इन्द्रधनुष के रंग वसन वर,
सन्देश-दूत विद्युत, प्रकाश, वैश्वानर !
मैं व्याप्त स्वयं सब ओर, सर्व प्रियतम में,
मैं स्वयं कामना, स्वयं भावना-क्रम में !

मुसकान गुलाबी मोती ओस कणों के,
ये तार नये ताजे स्वर्णिम-किरणों के !
जो रवि-प्रकाश में तिरते मधु भीगे वन,
यह रजत-चन्द्र, स्वच्छता भरे मधुकण कण !

खेलती लहरियाँ और झूमते तरुवर,
लिपटी लतिकायें, भ्रमरों का गुंजन-स्वर!
ये सब मेरी अभिव्यक्ति, साँस ज्यों तन में,
ये प्राण-वायु ज्यों जीवन और मरण में!

जो कुछ है जग में, भला-बुरा, कटु-मधु-कण,
मैं व्याप्त सभी में बन नस नस की धड़कन!
मैं भला करूँ क्या, और कहाँ, क्यों जाऊँ?
मैं सभी जगह भर रहा, जगह कहां पाऊँ?

सन्देह करूँ क्यों? करूँ कामना मन में?
मैं काल-पुरुष, मैं ज्वाल शक्ति, कण-कण में!
मैं द्वन्द्वशील हूँ नहीं, न दुख का मारा,
मैं कारण, जग होता मेरे ही द्वारा।

इस क्षण में सारा काल, यहीं सब दूरी,
सब हुईं समस्यायें हल, बातें पूरी!
सब स्वार्थ-हीन मैं, रहे न नाता-बन्धन,
मेरे परिचारक जग के जन-जन, कण-कण!

हूं तटस्थ प्रभु सभी दोस्त दुश्मन का!
मुझको प्रणाम मिलता जग के कण-कण का!

महत् अहं

बिखरो! बिखरो! बिखरो!
शिलाखण्ड! चरणों पर ओ सागर!
बिखरो! बिखरो! बिखरो!

अरे अनागत जग इन चरणों पर !
ओ सूर्यो-तूफ़ानो ! ओ भूकम्पो ! युद्धो !
स्वागत अभिनन्दन, तुम करो यत्न,
मुझ पर दो अपनी सब शक्ति लगा।
भड़को, ओ टारपिडो सुन्दर, ओ मधुर खिलौनो फूटो !
टूटते हुये तारो ! मेरे तुम तीर, उड़ो !

ओ जलते अग्नि ! जला सकते तुम क्या मुझको,
तड़पती बिजलियो, मुझसे ही तुम ज्वलित हुई।
तुम ओ अङ्गार धार, खड्ग, तोप के गोलो !
मेरी यह शक्ति तुम्हें करती है भू लुण्ठित !

मेरा तन मिटकर बन धूलि पवन में उड़ता,
पर असीम-आवरण मुझे वेष्टित कर लेता,
फिर सबके श्रवण, श्रवण मेरे ही !
सबकी आँखें मेरी ही आँखें !

सबके कर ही मेरे कर, सबका मानस मेरा मानस,
मैंने मृत्यु का किया भक्षण, पी डाली सब भेद वृत्ति !
कितना बलदायक, सुमधुर है मेरा भोजन
अब न भय, न वेदना, मुझे न कष्ट है कोई !
अब सब आनन्द यहाँ धूप हो कि हो वर्षा।
सिहरा अज्ञान अन्धकार !

कांपा, दहला, फिर हो गया सदा को विनष्ट,
मेरी तीव्रतम ज्योति ने उसे जला डाला,
मेरा आनन्द अनिर्वच, कितना मैं प्रसन्न !
नाचो ओ सूर्य-तारको, नाचो,
तीव्रतम प्रकाशों के ओ प्रकाश !

ओ सूर्यों के सूरज, नाचो मेरे भीतर!
ओ खगोल-पिण्डो, तुम मात्र भँवर और लहर!
पर मेरे भीतर लहराते विस्तृत सागर,
थर थर उठते, गिरते लहरें ले, नर्तनिरत।
घूमो तुम लोको!
धुरी लग्न ओ ग्रह पिण्डो!
नाचो, मेरे जीवन के प्रकाश में आकर,
मुझको सब निज अणु-अणु अँग-अँग दिखलादो।

लोरी

सो जा, ओ मेरे शिशु, सो जा ,
सिसकी क्रन्दन कर बन्द सभी।
नयनों से अश्रु न यों बिखरा!

बाधा-विहीन, विश्राम-निरत निश्चिन्त सभी विधि तू अब बन!
सब देवदूत नभ में करते हैं, तेरा ही तो गुण-गायन!
जो सभी विभव, सौन्दर्य, सुखों का प्रभु दाता औ निर्णायक!
वह निष्कलंक है तेरी ही आत्मा जो शासक उन्नायक!

(२)

कोमल गुलाब, ये चाँदी के से ओस बिन्दु सुन्दर सुन्दर,
यह मधु सौरभ, यह प्रात-पवन, अति सुखदायक यह धूप सुघर!
पंछीगन का यह कल कूजन, कितना प्रिय यह उनका गायन,
वे वस्तु सकल जिनके कारण आप्यायित होते श्रवण-नयन!
वे सभी वहाँ से आते, जो तेरा स्वर्गिक सुखपूर्ण धाम,
तू है विशुद्ध निष्कलुष परम, तू निर्विकार है 'ओम्' नाम!
सो जा ओ, मेरे शिशु, सो जा!

(३)

तू शत्रु मित्र से परे सदा, तुझसे हैं दूर सदा ख़तरे,
वे छू न कभी सकते तुझ को, तू ही है शाश्वत एक अरे!
रत्नों से जड़ित चँदोवा ज्यों, यह तारों वाला नील व्योम!
तूने ही तो निर्माण किया इसका, ओ मेरे 'प्राण' 'ओम्'!
सो जा, ओ मेरे शिशु, सो जा!

(४)

तेरी क्रीड़ा के कन्दुक से ये दोनों चन्द्र और दिनकर,
तेरे महलों की मेहरावों जैसे ये इन्द्रधनुष मनहर!
तेरे ही आने जाने को ज्यों नभ गंगा का पथ उज्ज्वल,
तेरी यश-चर्चा होती जब, मिलते नभ में उड़ते बादल!
तेरी गुड़िया ग्रह तारक ये, भ्रमते, गाते, नर्तन करते,
'जय ओम् ओम् तत्सत्' कह कर वे तेरा ही कीर्तन करते!
सो जा, ओ मेरे शिशु, सो जा!

(५)

इन रंग-बिरंगे फूलों में सर में औ निर्झर में सुन्दर,
तेरी ही निद्रारत निर्मल छवि का दर्शन होता प्रियवर!
लिपटा सोया है, तू प्यारे दिक्काल उष्ण कम्बल लेकर,
दे इन्हें हटा मुख से, सोते ही बाहों से झटका देकर!
जैसा सोये शिशु करते हैं तू भी तो देख ज़रा नीर्यक,
प्रिय नटखट शिशु, अधखुले किन्तु सोये निज नयनों से अपलक!
सो जा, ओ मेरे शिशु, सो जा!

(६)

कोकिल की तीखी कूक जो कि नभ में होती प्रतिध्वनित प्रखर,
वह है तेरी ही किलकारी, तीखी सीटी की ध्वनि मनहर!

ये गौरैये, यह पवन और नभ में जगमग करते तारे,
ये सभी खिलौने और खेल की गाड़ी हैं तेरी प्यारे!
यह दुनिया तो है बस, तेरा ही हँसी-खुशी का सपना भर,
वह तो है तेरे भीतर ही, भ्रम है यह जग जो है बाहर!
सो जाओ, ओ मेरे शिशु, सो जा!

(७)

प्यारे शिशु, ओ विश्राम और मधुनिद्रा के चिर जाग्रत घर,
प्यारे शिशु, ओ गम्भीर बुद्धि के क्रियाशील उद्गम सुन्दर!
तू है जीवन औ कर्मों का अति शान्ति पूर्ण सुन्दर निर्झर,
संघर्षों और विरोधों का तू ही तो है कारण मनहर!
तू सीमाओं से घिरे हुए घन तम को कर चिर नमस्कार!
अलविदा, अलविदा, राम राम, अंतिम प्रणाम ओ! अंधकार!
सो जा, ओ मेरे शिशु, सो जा!

(८)

इस जग में हैं जितने सुंदर पदार्थ जितनी वस्तुएँ सुघर,
हैं सब तेरी उड़ती पाँखों की ध्वनि प्रीतिकर और मनहर!
ओ देवलोक का पंछीवर, ओ महाभाग सम्राट विमल,
ये सब तेरी ही पाँखों की भागती हुई छाया चंचल!
जादू से भरा हुआ तेरा सौन्दर्य प्रखर यह अर्द्ध प्रकट,
है जिसको आधा छिपा रहा तेरे मुख का यह घूंघट-पट!
इस घूंघट को धारण करने वाला भी तो है मधुर ओम्,
है वही सत्य अपना स्वरूप आत्मा निज तत्सत् ओम् ओम्!
सो जा, ओ मेरे शिशु, सो जा!

प्रियतम की छवि

(१)

निज प्रियतम की छवि को बांधूं किस उपमा-बन्धन में ?
क्या उसका उपमेय कभी भी समा सकेगा मन में ?
कौन केमरा ग्रहण कर सकेगा उस छवि का दर्शन ?
चित्रकार की तूली क्या कर सकती उसका अंकन ?
रंगों से आकृति में उसका होगा क्या आलेखन ?
भौतिकता का यंत्र केमरा गल कर गया तरल बन—
इतनी थी तीव्रता अलौकिक उस प्रकाश-वर्षण में,
निज प्रियतम की छवि को बांधूं किस उपमा बन्धन में।

(२)

निज मन को केन्द्रित कर करना चाहा प्रिय का चित्रण,
नयनों को साधा कि करूँ मैं बिम्ब ग्रहण, छवि अंकन!
पर मेरा यह हृदय केमरा बिम्ब ग्रहण का साधन—
ये सब भौतिक यंत्र बह चले गल कर बस दो क्षण में!
इतनी थी तीव्रतम ज्योति की धारा प्रिय दर्शन में।
निज प्रियतम की छवि को बाँधूँ किस उपमा बन्धन में?
क्यों न उसे फिर निरुपमेय मैं मानूं अपने मन में?

(३)

जग कहता है, वह रवि ही है उसका चित्र मनोहर!
जग कहता है, मानव भी तो है उसकी छाया भर!
जग कहता है, वह चमका करता है तारा गण में!
जग कहता है, वही सदा मुसकाता सुरभि-सुमन में।
सुनता हूं, बुलबुल का गायन ही है उसका मधु-स्वर,
सुनता हूं, है पवन गगन में उसकी सांस निरन्तर।

नुनता, वन से भरता उसके ही नयनों का पानी,
नुनता, जाड़ों की रातें ही उसकी नींद सुहानी!
नुनता, कल-कल निर्भर है उसका ही गतिमय धावन!
इन्द्रधनुष के झूले पर वह झूल रहा मन-भावन!

शान्ति

मुझमें आ मिलती शान्ति सरित धारा बन कर,
मुझमें हिलकोरें लेता शान्ति-महासागर।
है शान्ति वह रही मुझमें ज्यों गंगा निर्मल,
प्रति रोम, उँगलियों से झरती है शान्ति धवल।
ओ, लाओ मेरे परिणय के सब चुने वसन,
वे ज्योति-विनिर्मित, स्वर्ण किरण से बुने वसन!
गिर गया सदा को खिसक अरे घूँघट-चंचल,
तुम बहो, बहो, ओ अश्रु-माल निर्भय, निर्मल!
तुम बहो अरे आनन्द अश्रु धारा खुलकर,
कितना गौरवमय ज्योति-ताज, मुद्रिका सुघर!
यह जीवन-सुधा और जादू की यह मदिरा,
इन से पूरित इस तन-मन के सब छिद्र-शिरा!
मछलियाँ और कुत्ते, जो चाहें सब खायें,
सब प्रकृति शक्तियाँ, पशु-पंछी, जिनको भाये,
आ पियो रक्त-मधु मेरा, मांस सभी खा लो,
आओ, मेरे विवाह-उत्सव में हँस गा लो!
मैं नाच रहा, मैं नाच रहा, हँस नाच रहा!
तारों में, रवि में, महा सिन्धु में मुक्त अहा!

शशि में, घन बीच, प्रभंजन में मैं नर्तन-रत,
कामना-भावना बुद्धि बीच मैं नृत्य-निरत।
मैं गाता हूँ औ मैं ही हूँ संगीत अमर,
सम्पूर्ण समन्वय का असीम मैं हूँ सागर!

कर्ता, वह पुरुष कि जो करता है बिम्ब ग्रहण,
औ कर्म, जगत् यह जो बनता अनुभूति गहन!
यों दोनों सिन्धु तरंगों से मेरे भीतर!
लगता जग मुझको केवल एक बुलबुला भर!

प्यार

ओ प्यारे नन्हें कुसुम! सुनो!
निज ओस कणों से भरे नयन से देखो तो—
मुझ से सच सच यह बतलाओ,
जब कोई और न पास तुम्हारे होता है—
उस समय तुम्हारा सत्य रूप क्या होता है?

* * *

उत्तर में भरकर कोमल 'आह' कुसुम बोला—
एकाकी मैं क्या होता हूँ?
यदि मुझको बतलाना ही हो—
दुख से स्वीकार करूंगा मैं—
मैं क्या हूँ, इसे न जान कभी भी तुम सकते!
जब मैं एकाकी होता हूँ,
तब भी सब भाई-बहन मुझे घेरे रहते,
बन सुरभि पवन में या झड़कर हो भू-लुण्ठित।

बीसवां परिच्छेद

निष्कर्ष : कुछ मेरे विचार

१—उनका संन्यास

स्वामी राम ने बलात् अपने हृदय को दबाकर संन्यासी के भगवा वस्त्र नहीं धारण किये थे। उनकी संकल्प-शक्ति अजेय थी और उन्होंने ऐसा ही संकल्प किया था। किन्तु उनका हृदय इतना कवित्वशील, इतना भावुक था कि वह इस भेष से ठीक ठीक मेल नहीं खाता था। हरिद्वार में, जब वे रुग्ण हो गये, मैं उनकी परिचर्या करता था। वे मुझे चाहते थे, क्योंकि उनके लिये मेरी आंखों में आंसू थे—मैं उनकी रुग्ण शैया के चारों ओर मधुर वायु के झोंकों की भांति चक्कर लगाता था। मैं उन्हें प्यार करता था; सचमुच थे वे ऐसे सुन्दर, ऐसे आकर्षक, ऐसे व्यक्तिगत हृदय-सम्पन्न ! जैसा वे चाहते, वैसा ही मैं करता। मैंने कभी उनसे 'न' नहीं कहा। 'जो आज्ञा' 'जो आज्ञा'—शब्द ही सदैव उनके आदेश पर मेरे मुंह से निकलते थे। अपने आधे खुले हुए मुख और आंसू भरे नेत्रों से ही उनके प्रेम और सम्मान के वशीभूत होकर मैंने उनके महान् जीवन के कुछ पाठ अचेतन रूप में ही

अपने हृदय में उतार लिये थे। रोग-शैया पर पड़े-पड़े उन्हें लगभग एक मास हो गया था। वे दिन रात हृदय के पूर्ण बल से ईश्वर के निजानन्द को बटोरने की चेष्टा करते थे और ज्वर से प्रपीड़ित होने की दशा में भी बराबर हरिद्वार की पहाड़ियों को अपने अट्टहास से गुंजाया करते थे।

एक दिन उनकी धर्मपत्नी, उनकी विमाता और उनका छोटा पुत्र जो ६ वर्ष का भी न होगा, पंजाब से बहुत सा रुपया व्यय करके उनके दर्शन के लिये आये। अमरीका से लौटने पर उन्होंने राम को न देखा था! समूचे परिवार की दशा बहुत अच्छी न थी; क्योंकि उसके सर्वश्रेष्ठ कमाने वाले ने उससे अपना संबंध विच्छेद कर लिया था। और वह क्यों न कर लेता? उसके हृदय में तो स्वयं उसकी अप्रतिम प्रभा समाती न थी! वे लोग भारतीय परिवार की साधारण औसत दरिद्रता में जीवन के दिन बिता रहे थे। कमाने वाले के चले जाने पर ऐसे परिवारों की दशा और भी दयनीय हो उठती है। राम के अमरीका-प्रवास के वियोग से उनका हृदय संतप्त हो रहा था। उसी संताप को कुछ हलका करने के अभिप्राय से उन्होंने हरिद्वार आने में अपना सारा बचा-खुचा रुपया व्यय कर डाला था। मैं भीतर गया और शीघ्र ही स्वामी जी को उनके आने की सूचना दी। वे उस समय भी चारपाई पर पड़े रहते थे—निर्बल और शिथिल होने के कारण; यद्यपि वे रोग से पूर्णतः मुक्त हो चुके थे और उनके कपोलों ने धीरे धीरे सेब की सुर्खी की भांति अपनी स्वाभाविक आभा में चमकना प्रारम्भ किया था। उनके गंभीर, निर्मल, काले काले नेत्र ऐसे मालूम होते थे जैसे विकसित गुलाब पुष्पों पर दो भ्रमर बैठे हों। उन्होंने अपना चश्मा मांगा और मैंने उन्हें उठा कर दे दिया। वे उसे अपने भगवा वस्त्र से साफ़ करने लगे और उसे फिर पहन भी लिया। इसी

बीच में, मैं समझता हूँ, वे सोच रहे थे—मुझे क्या उत्तर दिया जाय, क्योंकि मैंने उन्हें उनकी स्त्री, मां और छोटे लड़के के आने की सूचना दी थी।

"पूरनजी" वे मुझे इसी नाम से पुकारते थे, "क्या तुम्हारे पास कुछ रुपया है?" "जी, स्वामीजी, मेरे पास हैं और कितनों की आवश्यकता होगी? मैं और ला सकता हूँ।" मेरा संक्षिप्त उत्तर था। "अच्छा, तो उन्हें रेलवे स्टेशन ले जाओ और पंजाब का वापिसी टिकिट मोल ले दो। वे गंगा जी में स्नान कर लें और लौट जायँ। वे मुझे नहीं देख सकेंगे!" मुझे उनके पास रहते रहते एक मास होने वाला था। मेरे हृदय में उनके प्रति प्रेम था, उतना ही अगाध, उतना ही मूक जैसे छोटे छोटे पालतू पशुओं में अपने स्वामी के लिये होता है किन्तु उनके इस उत्तर की चिनगारी ने मेरे क्रोध की ज्वाला भड़का दी ऐसी कि शांति न जाने कहां उड़ गई! "नमस्कार! स्वामी जी; मैं भी उनके साथ जा रहा हूं और फिर कभी आपको देखने भी न आऊंगा। आप का दर्शन? आपको तो परिवार की रक्षा और भरण-पोषण का भार अपने ऊपर लेना चाहिए था। आप वरवश भाग खड़े हुए। वे अपना बचा-खुचा रुपया लगा कर यहां तक आये हैं। अब वे आपके कोई न हुए। हम बच्चे और मूर्ख आदमी जो आपको घेरकर खेलते और आपको भी कुछ गुदगुदाते रहते हैं— क्या हमीं आपके सब कुछ हैं? वे तो तीर्थयात्री हैं और अपने संन्यासी के दर्शन करना चाहते हैं। वे आपसे कोई मांग करने नहीं आये हैं और न आपको वापस घर लौटने के लिये ही कहते हैं। यदि आप उन्हें देख भी नहीं सकते तो यह आपका अत्याचार, सरासर अत्याचार है! मैं ऐसे व्यक्ति के साथ नहीं रह सकता, जो अपने व्यक्तिगत सम्बन्धों को ऐसी निर्दयता से कुचलता हो।

सोचिये, वे तो आपके दर्शन, आपकी एक झलक देखने, केवल मुस्कराहट मात्र के इच्छुक हैं और वह भी उन्हें नहीं मिल सकती !" यह कह कर मैं कमरे से बाहर जाने लगा और चला भी गया होता कि ज्योंही मैंने बाहर जाने के लिये किवाड़ खोला तभी स्वामी जी दिल खोल खिलखिला कर हँस पड़े। उन्होंने मुझे वापस बुलाकर कहा—अच्छी बात ! उन्हें भीतर बुलाओ।

उनके सामने बिना मतलब अपनी इस असाधारण उत्तेजना के कारण मैं कुछ लज्जित सा हो उठा और इसी बीच में वे लोग भी भीतर आगये। वे केवल दिल भर कर हंसे और अपनी सहज मुस्कराहट के साथ उन्होंने उन लोगों का स्वागत किया। तब उनमें साधुओं योग्य गम्भीरता आगयी थी। छोटे बच्चे ने पूछा—स्वामी जी ! मैं अपना पाठ आपको सुनाऊं ? "हां, हां, क्या तुमने पढ़ना शुरू कर दिया है ? बहुत बढ़िया !" स्वामी जी ने उत्तर दिया और उसका कविता-पाठ सुनने लगे। "पूरन जी, इसे अँगूरों का गुच्छा दीजिये।" स्वामी जी ने फिर कहा और मैंने ताक पर से उठाकर एक गुच्छा उस बच्चे के दोनों फैले हुए हाथों पर धर दिया। कह नहीं सकते कि उन अंगूरों से बच्चे को कहां तक परितोष हुआ, वह तो उस चीज़ का इच्छुक था, जो उसे अब नहीं मिल सकती थी। उनकी स्त्री बराबर इकटक खड़ी खड़ी उनकी ओर ताकती रही किन्तु बिल्कुल चुपचाप ! परस्पर एक शब्द का भी आदान-प्रदान न हो सका। हां, विमाता के साथ बेशक प्यारभरी छोटी सी बातचीत चलती रही; जिसे वे बीच बीच में अपनी सहज हंसी से गुंजा दिया करते थे। स्वामी जी ने अपने परिवार के प्रत्येक व्यक्ति के विषय में पछताछ की और थोड़ी ही देर में भेंट समाप्त हो गयी। बस, ये तीर्थयात्री कमरे से बाहर निकल गये। मैं सोचने लगा—बड़े मस्तिष्कों के साथ छोटों का साहचर्य

कितना भयानक, कितना कारुणिक हो सकता है ! दोनों एक ही वायु में श्वास लेते हैं, दोनों एक ही सूर्य के दर्शन करते हैं किंतु किस करुणाजनक परिस्थिति में वे एक दूसरे से पृथक् रहते हैं। वे लोग वापस भेज दिये गये। पूरे एक वर्ष के बाद जब मैं स्वामी जी से फिर 'वसन या वशिष्ट आश्रम' में मिला तब एक दिन उन्होंने मुझे छोटी-मोटी बहुत सी मीठी बातें सुनायीं। हम दोनों हिमालय के शस्यश्यामल फर्श पर बैठे हुए थे। मुझे स्पष्ट स्मरण है। उन्होंने कहा था—

"पूरन जी ! राम को यह न मालूम था कि अब यह भगवा वस्त्र स्वतंत्रता का चिह्न नहीं। गुलामों ने भी इसे पहनना प्रारम्भ कर दिया है, और उसे इतना कठोर, नियमित और रूढ़िवादी बना दिया है कि राम को उसमें बेचैनी सी होने लगी है। अब जब वह पहाड़ों से नीचे उतरेगा तो देखना, वह भरी सभा में सब के सामने उसकी धज्जियां उड़ा कर घोषणा करेगा कि सन्यासी के भगवा बाने को स्वतंत्रता का, मुक्ति का साधन मानना भूल, एक भयंकर भूल है।

"तुम्हें याद होगा कि राम ने हरिद्वार में तुम से राम के घर-वालों को वापस भेजने के लिये कहा था और तुम इतने क्रुद्ध हुए थे। राम के भी हृदय है किंतु उस समय राम अपने वेष के नियमों का पालन करना चाहता था। घर वालों से भेंट न करना सन्यास आश्रम का साधारण नियम है। फिर भी तब तक मनुष्य अपने व्यक्तिगत सम्बन्धों को कैसे भूल सकता है, जब तक प्रेम की धड़कन—वह चाहे ईश्वर के लिये हो, चाहे मनुष्य के प्रति, उसके हृदय में उठती रहती है। कवि जड़ पत्थर नहीं बनाये जा सकते। आध्यात्मिक उन्नति का अर्थ जड़ता, या भावहीनता नहीं है। बिचारा 'कीट्स' कड़े शब्दों से ही मर गया। विकास जितना उच्च होता है, भावप्रवणता भी उतनी ही श्रेष्ठ और गंभीर ! ब्रह्म-

नन्द की मां का चेहरा कितना दिव्य था उस दिन—बिल्कुल देवी-जैसा ! क्या तुम्हें नहीं लगा वैसा ?

"राम तुम्हारे विवाह से प्रसन्न है। कुछ भी हो, वैवाहिक जीवन में एक प्रकार की स्थिरता होती है। तुम दोनों यहां आकर यहीं हिमालय की चोटियों पर रह सकते हो।"

* * *

एक नम्रहृदय, शुद्ध-पवित्र, धनहीन विद्यार्थी की स्थिति से ऊंचे उठ कर वे एक पूरे डील-डौल के वयस्क पुरुष हो गये और विश्वानुभूति के प्रातः-कालीन सद्य प्रकाश से उनका मुखमण्डल देदीप्यमान हो उठा। उनमें गम्भीर एकाग्रता, विचित्र प्रफुल्लता, दुर्दमनीय अट्टहास्य, क्रीड़ाशील आह्लाद, उच्चतम आदर्श और उज्ज्वल ज्ञान द्रुत गति से आ-आकर एकत्र सिमटने लगे। अन्त में, एक दिन आया, वे भगवान् की प्रेमसुरा पीकर बिल्कुल मस्त, पागल जैसे हो गये। उनका मुख प्रभु की दिव्य ज्योति से जगमगा उठा, नेत्र बन्द हो गये। उनके ओठ खुले और 'रावी' के किनारे एक उच्च क्रन्दन हवा को चीरने लगा, वे भावावेश में उन्मत्त से हो उठे, बाहें फैल गयीं, वक्षस्थल उद्वेलित हुआ और अश्रुधार बह चली। आस-पास के वृक्ष भी उनके साथ साथ कांपने लगे, हवा उनसे अठखेलियां करती और वे मूक जड़ पत्थरों से बातें करते। उस समय भी वे प्रायः इसी अर्द्ध अचेतन अवस्था में गणित के आचार्य बनकर 'ओरियन्टल कालेज' में जाते थे किन्तु उन्हें पता न था—उनका शरीर क्या करता है और क्या नहीं करता है ! 'मिशन कालेज' में वे अपनी श्रेणी के प्रत्येक विद्यार्थी को यों पुकारते—प्यारे कृष्ण ! तू तो सब कुछ जानता है, फिर मैं तुझे क्या सिखाऊं ? यदि कोई लड़का न समझने का आग्रह करता तो फिर वे वही बात दुहरा देते—ओ प्यारे कृष्ण ! तू तो सब

कुछ जानता है ! और लो, उनकी इस प्रकार की प्रेरणा से वालक के हृदय में प्रश्न का हल अपने आप चमक उठता। वह उठता और बड़ी आसानी से काले तख्ते पर उसे हल कर देता। मिशन कालेज से लाहौर का यह आत्म-विभोर नवयुवक पढ़ाने के निमित्त ओरियंटल कालेज में पहुँचा था। किन्तु उसकी मस्ती दिन-प्रति दिन उत्तरोतर बढ़ती जाती थी और उस रोग के ठीक होने के कोई लक्षण दृष्टिगोचर न होते थे।

एक दिन वे उठे और लाहौर के मिशिन कालेज के प्रिंसिपल डा० इविंग के सामने जा खड़े हुए। उन्होंने कहा—तुम ! तुम ईसा की पूजा करते हो ! क्या तुमने कभी उसे अपनी आंखों से भी देखा है ? नहीं, तुमने कभी नहीं देखा ! लो, देखो, इविंग ! ईसा मसीह तुम्हारे सामने खड़ा है ! उनकी मस्ती का पागलपन चरम सीमा पर पहुँच चुका था !

उन दिनों जिनकी लाहौर की सड़कों पर उनसे भेंट हो जाती, व उन पर मोहित हुए बिना न रह सकते। आत्मनिष्ठ, अपने आप में डूबे हुए और ओम्-ओम् की मधुर ध्वनि गुनगुनाते हुए जब वे सड़कों पर टहलने निकलते तो उनके पाद-चाप से पत्थर का फर्श भी विह्वल हो उठता। "कहो, हम ईश्वर हैं, मकान की चोटी पर चढ़ ठीक अर्द्ध रात्रि के समय पुकार उठो, शिवोहम् ! भोले भाले मनुष्य ! जल्दी उठ और पुकार—मैं ईश्वर हूं !"—बस, वे ऐसा ही उपदेश दिया करते थे। हृदय को भेदनेवाली ॐ की गंभीर ध्वनि ऐसी बात थी, जिस पर यह अभ्युदयशील नूतन पुरुष सब से अधिक जोर देता था और अपने प्रशंसकों से बराबर आग्रह किया करता था कि अपने आपको 'शिव' क्यों नहीं कहते ? कोई अच्छी चीज, कोई सुन्दर वस्तु, कोई वीरता का कार्य जो उनके कान में पड़ता, कोई साहसपर्ण वार्ता और विचार जो उन्हें ज्ञात होता तो

वे झट से कहते—ओह ! यही तो वेदान्त है ! वेदान्त उनके लिये एक ऐसा शब्द था जिसे वे मानव जाति के इतिहास में प्रत्येक श्रेष्ठ, सुन्दर, गौरवान्वित और आध्यात्मिक वस्तु के लिये प्रयुक्त करते थे। वेदान्त उनके लिये निरा दर्शन-शास्त्र ही न था। वह था उनके काव्य की पूर्णता।

लाहौर निवासी डाक्टर मुहम्मद इकबाल ने मुझ से कहा था—एक दिन उन्हें पेट में शूल उठा था, मैं उनसे भेंट करने उनके घर गया हुआ था। मरोड़ के बाद मरोड़ उनके पेट में उठती और उनके दुबले पतले हड्डियों के ढांचे में बार बार चक्कर काट रही थीं। पीड़ा ऐसी भयानक थी कि देखने वाले सिहर उठते थे किन्तु मैंने उस समय भी उनके मुख से हंसी का फव्वारा छूटते सुना। उसकी लहरें उनके कमरे भर में फैल रही थीं। 'ओ ! इकबाल! राम क्यों रोये, गाये ! यदि उसके लाखों-करोड़ों शरीरों में से एक शरीर रोगी हो गया, तो क्या ! मैं हंसता हूँ और हसूंगा। रोना तो इस शरीर के भाग्य में आया है और मेरी आत्मा हंसने के लिये बनी है।"

"उनका हृदय ठीक उसी ढंग से विकसित हो रहा था, जैसा मैंने सोचा था।" इकबाल की धारणा थी कि इतना महान त्याग होने पर भी एक दिन ऐसा हो सकता है, जब वे पुनः वापस लौटें और एक साधारण गृहस्थ की भाँति जीवन-यापन करने लगें।

बातचीत के इस क्रम में मैंने जब इकबाल को वे बातें सुनायीं, जो स्वामी जी ने मुझे 'वसून' में सुनायी थीं, तो उन्हें बड़ी उत्सुकता हुई। स्वामीजी के हृदय था, सच्चा जीता जागता हृदय और उन्नतिशील व्यक्तित्व। वे सभी प्रकार की निर्जीव मानसिक कल्पनाओं और प्रतिज्ञाओं की कोटि से कोसों दूर थे !

क्या व सच मुच कभी लौटकर पुनः साधारण गृहस्थ हो सकते थे ? इस विषय में न कुछ कहा जा सकता है और सोचना भी है अप्रयोजनीय ! किन्तु एक वात मैं कह सकता हूँ कि अमरीका में और वहाँ से लौटकर यहाँ भी वे यथाकथित संन्यास की उतनी अधिक प्रशंसा करते नहीं देखे गये। कारण कुछ हो, वे वैवाहिक जीवन की प्रशंसा करते थे। कमलानंद, उनकी अमरीकन महिला शिष्या मेरे साथ लगभग ६ मास तक देहरादून में एक ही मकान में ठहरी थीं। उन्होंने मुझे वताया था कि अमरीका में स्वामी राम कई वार कह उठते थे कि अमरीका जैसे देश में यदि राम का घर होता तो राम के अधिक उपयुक्त होता ! वहाँ उन्होंने जाति-व्यवस्था की निन्दा की और वैवाहिक जीवन के भी गुण गाये। किन्तु भारतवर्ष में लौटते ही उन्होंने फिर उसका नाम नहीं लिया और ब्रह्मचर्य का वही पुरातन राग दुहराने लगे। मैं समझता हूँ कि अमरीका के वन्धनहीन स्त्री-समाज के निकट अवाधित सम्पर्क में आने से राम के हृदय में ऐसे भाव जागृत हुए होंगे। अमरीका में उन्होंने स्त्री की निन्दा नहीं की। स्वभाव से तो वे कवि थे ही—सौंदर्य का प्रेम उनके लिये उपयोगी हो सकता था। किंतु इसके साथ मैं इस वात को भी अस्वीकार नहीं कर सकता कि संभव है—स्वामी राम की धारणा हो कि इस समय पाश्चात्य जगत् को ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है और इसीलिए उन्होंने गृहस्थ जीवन की पवित्रता का गुणगान किया हो। मुझे अपनी दृष्टि से यह करुणाजनक प्रतीत होता है कि वे स्त्री सम्पर्क की मधुरता से वंचित हो गये अन्यथा स्यात् उनकी जीवन-गाथा इतनी वैराग्यशील न होकर उससे कहीं अधिक काव्यमय होती !

डाक्टर इकवाल ने मुझे यह भी सुनाया था कि जब स्वामी

राम ने अपने प्रोफ़ेसर के पद से त्याग-पत्र दिया था तब लोगों ने उनकी बड़ी भद्दी भद्दी आलोचनायें की थीं। मस्ती भरे तेजपूर्ण शब्दों में उन्होंने लिखा था—राम बादशाह अब किसी का नौकर नहीं रह सकता, केवल उस परमात्मा के सिवा। मूर्ख सीनेटर (विश्वविद्यालय के उच्चाधिकारी) कहने लगे—यह पागल हो गया है, परन्तु इकबाल ने जो उस समय एक छोटे प्रोफेसर थे, तुर्की ब-तुर्की उत्तर दिया था—तीरथराम यदि पागल माना जाय तब तो फिर समझदारी नाम की चीज संसार में कहीं रह नहीं जाती। वह पागलपन था तो पागलपन था 'स्पीनोज़ा' का। वह मस्ती थी तो मस्ती थी एक पैगम्बर की !

२—उनकी देशभक्ति

जब वे मुझे जापान में मिले थे, तब उनका व्यक्तित्व संक्रामक था। भक्त जैसे उनको अपने अंतर में पीना चाहे तो पी सकता था। यदि कोई सच्चा जिज्ञासु पूर्ण श्रद्धा से उनकी शरण में आता तो वे उसे अपनी दिव्य ज्ञानानुभूति की लोकोत्तर प्रतिभा प्रदान कर सकते थे। ठीक यही बात मेरे विषय में हुई भी थी। मैंने वेदांत और हिन्दू दर्शन का कभी अध्ययन नहीं किया था। और न, जो कुछ उन्होंने कहा, मैंने कभी उस पर ध्यान दिया अथवा मनन-निदिध्यासन ही किया। मेरी धारणा तो यहां तक है कि उनसे भेंट होने के असाधारण आह्लाद के मारे मैं उनकी वाणी को भी उतनी अच्छी तरह नहीं सुन सका जैसा कि जापान में अन्य लोगों ने सुना था। किन्तु ज्योंही मेरी चेतना सीधे उनकी चेतना के सम्पर्क में आयी त्योंही उनका सम्पूर्ण आनन्द और ज्ञान मुझ में समा सा गया। वह एक प्रकार की दृष्टा-

त्मक, द्रष्टा की द्रष्टा के प्रति, शिक्षा थी, जो एक क्षण में पूरी हो गयी। वह शिष्य को नहीं, जैसे अपने आप को दी जाती है।

ऐसी ही विलक्षण कृपा कम से कम एक व्यक्ति के विषय में और हुई थी। यह बात अमरीका की मिसेज़ वैलमैन ने स्वयं मुझे सुनायी थी। उनके प्रकाश की चिनगारियां चारों ओर दौड़ती थीं और कई हृदयों में तो अज्ञात रूप से ही उनकी जाज्वल्यमान आत्मा की लौ प्रवेश कर जाती थी। किन्तु जब उनके पुनः भारत लौटने पर मैंने उन्हें मथुरा, पुष्कर, हरिद्वार, वशिष्ठाश्रम में देखा तो मुझे ऐसा लगा कि जैसे उनके आत्मनिष्ठ व्यक्तित्व की वह सूक्ष्म आह्लादमय धारा सूख रही हो। स्वामी राम ने अपने आप को और संसार को अपने सुसंयत मस्तिष्क की महान् शक्तियों से समझना-बूझना प्रारम्भ कर दिया था। जैसे वे इस ज्ञान-साधना में कहीं ऊंचे चढ़ना चाहते हों। वह दिव्य प्रेरणा-जन्य आह्लाद की पूर्ण अवस्था, वह स्फूर्तिमय आवेश लुप्त-सा हो उसके स्थान में ज्ञान की अप्रतिम प्रभा चमकने लगी थी। मुझे तब नहीं, अब ऐसा लगता है कि जैसे उसका अभाव उन्हें खटकता हो और उसे प्राप्त करने के लिये वे बार-बार एकान्त वास करते हों। संभव है, यह उसी तरह की घटना हो, जैसा कि बाईबिल का बारीकी से अध्ययन करने पर उनके विचार में स्वयं ईसा मसीह के जीवन में कुछ दिनों के लिये घटित हुई थी। वशिष्ठ आश्रम में उन्होंने अपने शिष्य स्वामी नारायण को अपने से पृथक् कर दिया था और पूर्ण एकान्त में निवास करते थे—यहां तक कि उनकी भिक्षा वहां से दो मील दूर से आती थी। जिन साधनाओं पर वे जोर दिया करते थे, वे सब उन्होंने की थीं। पर ऐसा लगता था जैसे कुछ महत्तम कार्य के प्रयास

में वे अपने सहज आह्लाद से बेसुध हो गये हों। तिलक संस्थान के लोगों ने उन्हें राजनीति की ओर झुकाया था और उनके सहज आह्लाद की धारा सूखती जाती थी। दार्जिलिंग के जंगलों में भी वे इसी उद्देश से गये थे क्योंकि वहाँ से लौटने पर जब वे मुझे मिले तो उन्होंने मुझ से कहा था—राम ने गंभीर और श्रेष्ठतम निर्विकल्प योग-समाधि लगायी थी और समाधि के अनंतर एक संकल्प प्रकट हुआ—"भारत को स्वतंत्र करो, अब भारत स्वतंत्र होगा। सभी राजनैतिक कार्यकर्ता राम के औजारों की भांति काम करेंगे। वे तो राम के हाथ-पैर होंगे, और राम उनकी रीढ़ बनेगा।" स्वामी राम का यह संकल्प कैसा दिव्य था! हाँ, उससे एक बात प्रकट होती है। अमरीका जाने से पहले वे ऐसी बातें न करते थे और अमरीका से लौटने पर ही भारत ने उनका ध्यान आकृष्ट किया था। अब समाधि में भी वे भारत की बात सोचते थे। जापान में मैंने उन में यह बात न देखी थी। परिस्थिति के अध्ययन की सहज शक्ति उनमें थी—उसी के द्वारा वे आत्मनिष्ठ की स्थिति से एक आध्यात्मिक ज्ञानपुंज देशभक्त के रूप में परिणत हो गये। स्वयं आह्लादमय जीवन के स्थान पर उन्होंने उस आह्लाद के प्रचार का विचार किया और उस आह्लाद में ही संसार को भारत की राजनीति का पाठ पढ़ाया। स्वभाव ही से वे संसारविरत थे। अतः अपनी शुद्ध प्रेरणा के कारण वे कभी देश-सेवा के सर्वोच्च नैष्कर्म्य धरातल से नीचे उतरकर किसी क्षुद्र राजनैतिक लक्ष्य की पूर्ति के लिये साधन नहीं बनाये जा सकते थे।

एक बार उन्होंने मुझ से कहा था--राम दूसरे विषयों में पड़ना पसंद नहीं करता, वे राम के क्षेत्र में नहीं। किंतु श्री वी. जी. जोशी, जिन्होंने सनफ्रान्सिसको में उनका मंत्रित्व किया था, राम

से कुछ दिनों तक भारतवर्ष के कार्य के लिये कहते-सुनते रहे। बस, यही एक छोटी सी बात उन्होंने अपने मन की मुझे सुनायी थी और मैं सोचता हूँ कि शायद तिलक संस्थान के विचारों का उन पर प्रभाव पड़ा हो। उन्होंने एक व्याख्यान दिया था—'भारत की ओर से अमरीकनों से अपील'। इस प्रकार अमरीका में ही उन्होंने इस कार्य का श्री-गणेश किया था, यद्यपि वे न इस उद्देश से अमरीका गये थे और न यह उनका क्षेत्र था। (चाहे कोई अलौकिक प्रेरणा हो, चाहे मन की मौज) उन्होंने इस ओर ध्यान दिया किंतु अपने केन्द्र में स्थित रह कर। जब अमरीकनों ने यह चाहा कि वे स्वयं भारतीय विद्यार्थियों की सहायता के लिये किसी संगठन का सूत्रपात करें तो झट से उन्होंने अपने हाथ सिकोड़ लिये और कहा—राम रुपया-पैसा नहीं छूता, वह किसी आर्थिक देन-लेन में नहीं पड़ सकता। और उनकी वह योजना आगे न बढ़ सकी। उनके बिना अमरीकनों के लिये भी यह संभव न था कि बहुत दिनों तक वे उस योजना में कोई सजीव अनुराग दिखाते।

❀ ❀ ❀

वैसे तो स्वामी राम कहा करते थे कि जिसका हृदय दिव्य ज्ञान के आनन्द से खिल उठा है, उसे केवल आत्म-निष्ठ होकर बैठना चाहिए। उसकी उपस्थिति-मात्र से संसार का कल्याण होता है, उन्हें करने धरने की आवश्यकता नहीं। ऐसे केवल जीवित रहें और अपने अन्तर में ज्ञान की लौ जलाते रहें। उन्हें करना नहीं होता है, उन्हें तो केवल ईश्वर की श्वास में अपनी श्वास मिलाना है। यदि वे उसी स्थिति में कुछ करने का संकल्प करते हैं तो वह पूर्ण हुए बिना नहीं रह सकता। पर जो किसी रोगी की

चिकित्सा करना चाहता है, वह उसका रोग अपने ऊपर लिये बिना कैसे उसकी चिकित्सा कर सकता है ?

२—उनका आदर्श

सम्पूर्ण शिक्षित भारतवर्ष में स्वामी राम ही एक ऐसे व्यक्ति दिखायी देते हैं, जिन्होंने ईश्वर को प्राप्त करने का ऐसा अपूर्व साहस किया और उसे प्राप्त भी किया। जिन्होंने जीवन में इस भांति प्रवेश किया, जैसे कोई बादशाह अपने जीते हुए शहर में प्रवेश करता है, जिन्होंने अपने तुच्छ अहंकार को अपने पैरों तले रौंद डाला और परमात्मा से एक हो गये, जिन्होंने अपने ही जीवन में यह सिद्ध करके दिखा दिया कि ब्रह्म का साक्षात् होने पर कोई बन्धन नहीं रहता, जिन्होंने हमें बतलाया कि संसार की सभी समस्याओं का एक मात्र हल यही है कि हम में से प्रत्येक आत्म-ज्ञान के उच्च शिखर पर चढ़ने का प्रयास करे। पंजाब के इस छोटे से दुबले-पतले ब्राह्मण बालक ने आजकल के समय में भी हमारी आँखों के सामने अपने व्यक्तित्व में उन महान् आत्माओं के उच्चादर्श को दिखा दिया, जिन्होंने किसी समय उपनिषदों के संवाद सुनाये थे और वेदों की ऋचायें गायी थीं। यह एक सचमुच जीता-जागता करश्मा, लोकोत्तर विचित्रता हुई, जो उन्होंने अपनी भक्ति, अपने संयम, अपने त्याग एवं भावनाओं की गम्भीरता तथा कठोर मानसिक परिश्रम द्वारा पोषित अटल संकल्पशक्ति के बल पर सिद्ध कर दिखा दी।

उनका जीवन अनेक शिक्षाओं से भरा हुआ है। विद्यार्थियों के लिये वे एक आदर्श अनुकरणीय विद्यार्थी हैं—पुस्तकों के लिये अथवा अपने अर्द्ध रात्रि के दीपक के लिये तैल मोल लेना अच्छा, उसके बदले भोजन में एक रोटी की कमी करना पड़े, तो क्या !

अथवा पहनने की क़मीज़ से वंचित होना पड़े, तो क्या ! सफलता स्वयं उतनी हर्षदायक नहीं होती जितना कि सफलता प्राप्त करने का संघर्ष ! परीक्षायें पास कर लेना सच्चा उद्देश नहीं है। विद्यार्थी का सच्चा उद्देश तो यह है कि वह अपने मस्तिष्क के उद्यान को भली भांति हरा-भरा रखने में कठोर से कठोर परिश्रम करे। उसका परिश्रम किसान के परिश्रम से, खनिक के परिश्रम से अथवा एक साधारण श्रमिक के परिश्रम कहीं अधिक कठोर होता है। सच्चे विद्यार्थी का यही जीवन है। उन्होंने कभी इन्द्रिय-सुखों को जाना ही नहीं, रात-रात भर गणित के प्रश्नों पर कठिन परिश्रम करने के वाद जो सामने आया, उसी से संतुष्ट रहे। परिश्रम से कभी उनकी तृप्ति नहीं हुई। नींद भी उनके मार्ग में वाधक जैसी रही। उन्हें समय कभी पूरा पड़ा नहीं और कार्य उनका कभी समाप्त हुआ नहीं।

आज्ञाकारी पुत्र के सामने वे आज्ञाकारी पुत्र के रूप में आते हैं। अपनी सुविधाओं को छोड़ दो और सवकी सव अपने माता-पिता को भेंट करो—वे फिर भला कैसे असन्तुष्ट रहेंगे ? माता-पिता भी तुमसे पूर्ण आत्म-समर्पण चाहते हैं। जो कुछ उनसे पाया, वह उन्हें सौंपो और जो कुछ ईश्वर से पाया, उसे ईश्वर को भेंट करो।

शिष्य के लिये वे आदर्श शिष्य थे। विद्यार्थी-जीवन में उन के लिखे हुए पत्रों में शिष्य के अनुरूप आत्म-समर्पण का एक ऐसा उज्ज्वल धारा-प्रवाह है जिसके वल पर वे इतने सुसंस्कृत हुए थे। इस आत्म-समर्पण के साथ उनमें दया की भी प्रचुरता थी। स्यालकोट में एक वार उन्हें किसी व्यक्ति से दस रुपया उधार लेने का अवसर आया। यह उन्हें ऐसा लगा कि जैसे वे इस उपकार का वदला चुका ही नहीं सकते। पूर्णतः उस उपकार का

बदला चुकाने में असमर्थता का अनुभव करके ही उन्होंने कई बार उसे दस दस रुपयों की क़िस्तें भेंट कीं।

विद्यार्थी के सामने वे अपने विद्यार्थी के श्रम से ओत-प्रोत शिक्षक के रूप में प्रकट होते हैं। वे अपने शिष्य को भी भगवान् कृष्ण के रूप में स्वीकार करते हैं। वे उसे सिखाते हैं बड़ी श्रद्धा के साथ, बड़ी क्षमा-याचना के साथ। वे समझते हैं कि उनका ईश्वर तो सब कुछ जानता है। वह तो उसकी मौज है, जो उसने उनसे कोई बात पूछी है। मनुष्य के बच्चे के प्रति उनकी श्रद्धा अपरिमित थी। वे उसे ईश्वर कहते हैं—तत्त्वमसि, तू तो है वही, वही, शिवोहम्।

नागरिकों को वे एक सच्चे नागरिक थे। उनसे कहने के लिये उनके पास एक ही बात थी—अपने आप को उठाओ, अपने आप को ऊँचा करो और अपने अन्तर की मनुष्यता को प्राप्त कर स्वतंत्र हो जाओ। अज्ञान और दीनता भरे दासता के भाव को तिलांजलि दे दो और स्वयं अपने स्वामी बनो। अपने अनन्त आत्मसम्मान के बल पर सीधे खड़े हो, निर्भय बनो और करो प्रेम सबसे—

सच्चा भक्त, प्यार करता है संसार भर को—
उसकी छोटी-बड़ी सभी वस्तुओं को!

उन्होंने मनुष्यमात्र के सामने नागरिक कर्त्तव्य की एक लोकोत्तर भावना उपस्थित की है। 'सफलता का रहस्य' उनका एक ऐसा भाषण था, जिसे अनेक रूपों में वे सर्वत्र संसार में अच्छे नागरिक बनाने की अपनी योजना में बार बार दुहराया करते थे। अस्तु, दासता के बन्धन में जकड़े भारतीयों के लिये तो वे—अपने अनुपम आत्मचिन्तन और भगवद्-निष्ठा के अतिरिक्त भी—सब भांति आदर्श रूप थे। किस प्रकार एक निर्धन

विद्यार्थी ने बाहरी और भीतरी अनेक विघ्न-बाधाओं के होते हुए अपने आप को शिक्षित बनाया, कैसे अपने निरहंकार चरित्र की प्रभा से संसार को चकाचौंध करके संसार की दृष्टि में अपने देश का मस्तक ऊंचा किया और कैसे अपनी अलौकिक शक्ति और अपूर्व आत्मबल के प्रभाव से, सब को अपने अंक में भरने वाले विशाल प्रेम के मधुर सौरभ से उन्होंने मनुष्य मात्र को अपना भाई, अपनी आत्मा जैसा बना लिया और फिर स्वयं कैसे बन गये सबके उपास्यदेव ! घर-घर के इष्ट देव !!

ॐ ! ॐ !! ॐ !!!